इदम्

(महाभारत के पूर्वार्द्ध पर आधारित उपन्यास)

इल्म

डॉ. राजानन्द

प्रकाशक कविता प्रकाशन, तेलीवाडा, बीकानेर
मूल्य अस्सी रुपये मात्र
आवरण अमित भारती
संस्करण प्रथम 1990
मुद्रक सविता प्रिंटर्स नवीन शाहदरा दिल्ली 32

Iddum (Novel) by Dr RajaNand Rs 80 00

बस इतना ही

(दृष्टि)

वतमान हमेशा अतीत को टटोलता है। यह अपनी मनोदशा या अपने मानस के अनुकूल एक काल-खण्ड को छाटना चाहता है जिसमे आंशिक सादृश्यता आदर्श तथा अपनी पूर्णता की झलक पा सके। इस प्रवत्ति का एक कारण यह है कि वतमान अपूर्णता की मनोव्यथा का झेलता होता है। वह सहारे के लिये प्रेरणा के लिये, सांस्कृतिक-साहित्यिक कोषागार की तरफ उन्मुख होता है। क्योंकि वही, महद् सजना के रूप म इसकी संजीवनी सुरक्षित होती है।

ऐसा क्या इसलिए होता है क्योंकि अतीत श्रेष्ठ होता है? इस से तो यह निष्कर्ष निकलता है कि वतमान अधोगतिक होता है। यदि ऐसा मान लिया जाए तो सांस्कृतिक विकासगामिता तथा मनुष्य की जययात्रा की निरंतरता को बट्टे-खाते टूकना होगा।

तथ्य स्थिति यह नहीं है। वास्तव म हर 'वतमान' अपने चित्त चक्षु से अनुभवों व अनुभूतियों के जरिए अतीत को आकता है क्योंकि वह स्वप्नवत भविष्य को रेखांकित करना चाहता है। यह भविष्य ही तो है जो उसके परिताप की औषधि है तथा जीवनी शक्ति का अमृत-तत्त्व। इसका अनुसंधान या आविष्कार सजनात्मक ऊर्जा तथा कल्पनात्मक क्षमता के द्वारा सम्पन्न होता है।

यह विचारणीय प्रश्न है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की अवधि म महात्मा गांधी ने भारतीय मानस के सामने 'रामराज्य' की सकल्पना क्या रखी? इसी आदश की प्रतिछायाए साहित्य म मिलती है। गांधी ने गीता की तुलना मे अपने संघर्ष के लिए बौद्धदशन के शालीन, शिष्ट, कोमल, परिष्कृत शस्त्र अहिंसा सत्य व व्रत से उद्भूत निवध करुणा तथा प्रेम चुने। लोकमान्य तिलक ने गीता का कर्म प्रधान जुझारू दर्शन राष्ट्रीय मानस को प्रस्तुत करना चाहा परन्तु वह कालान्तर में मात खा गया। वह दर्शन राष्ट्रीय मानस को स्वीकार नहीं हुआ। हुआ तो क्रांतिकारियों का जिनके महत्त्व को उपेक्षित किया गया।

पिछले दशकों म हमारी राष्ट्रीय मानसिकता तथा सजनात्मक चेतना

'महाभारत' जैसे महद आख्यानमूलक, दर्शन सम्पन्न, महाकाव्य की तरफ तरह तरह से क्या जा रही है ? हम उस मानवीय जीवन के सम विषम रूपो की छटा को अभिव्यक्त करने वाले नाटयात्मक महद काव्य को क्या व्याख्यायित करना चाह रहे है ? हमे क्यो लगता है कि महाभारत के चरित्रो मे हमारा ही विकल अत, लाभ शाप तथा दिग्भ्रातता भुगत रहा है ? हम कुछ पाना चाह रहे हैं, पर मिलते हुए भी मिल नही पा रहा है।

स्वतत्रता के बाद क्रमश महत्वाकाक्षा सत्ताकाक्षा, भोगेच्छा ने राजनीति को कलुषित तथा सिद्धातहीन बना दिया। इसके सार्वत्रिक प्रभाव ने मान्यताओ तथा मल्यो को उच्छेदित कर राष्ट्र के आचरण को तार-तार कर दिया। जीवनादर्श, समाज सापेक्ष, जन-मगल केन्द्रित न होकर, भोग केन्द्रित, स्वार्थ-केन्द्रित तथा वैयक्तिक और ईर्ष्या-उदभूत प्रतियोगात्मक हो गये। नतीजा यह हुआ कि व्यक्ति कर्म चक्र की तीव्रगति की लपेट मे तो हो गया पर उसका अतर, विकल, असतुष्ट भ्रमित जिजीविषा चालित लेकिन भयातुर हो गया। भोगेच्छा की अनन्त तृष्णा ने उसे आत्म सयम तथा समरस सतुलन से दूर कर दिया। यानी, वह अपने से ही दूर हो गया। क्षण सयमी को परिस्थितियो मे भय लगने लगा। उसमे इच्छा तथा अस्तित्व के खोजाने का आत्म-क्लेशी भय स्थायी हो गया। जैसे उसने अपने वस्त्रो मे स्वय आग लगा ली हो, फिर बौराया हुआ भाग रहा हो जीवनेच्छा को लिए हुए।

स्वतत्राप्राप्ति के बाद मोहभग से गुजरा, अवशता तथा दिग्भ्रातता को झेलता भारतीय मनस, ठीक उस स्थिति को है, जसी स्थिति महाभारत के व्यक्ति चरित्रो की है। आदर्श, दर्शन धर्म तथा सास्कृतिक मूल्य-पुष्ट आचरण की रूप रेखा होते हुए भी महाभारत का हर चरित्र अपने अस्तित्व की लडाई, अपने अह, अपनी प्यास अपनी दिग्भ्रातता को लिये हुए लडता है। भीष्म हो या स्वय द्वैपायन सत्यवती हो या अम्बा अम्बिका अम्बालिका गाधारी, कुन्ती या माद्री धतराष्ट्र हो पाडु हो, या विदुर, सब युग परिस्थिति के सघर्ष मे हैं तथा आत्म-सघर्ष मे। कोई आश्वस्त ही नही है कि उसकी जीवन विधि सही है। और अध्ययन के बीच हम यह भी स्पष्ट महसूस होता है कि एक ही व्यक्ति चरित्र कही निर्णय मे सगत है, कही उलझ गया है। बल्कि बडा दयनीय प्रतीत होता है।

इसको सक्रान्ति या सक्रमण काल कहकर सुरक्षित रास्ता नही अपनाया जा सकता। महाभारत काल हमे 'महाभारत के महदग्रथ मे जीवन्त मिलता है। वह हमारा अतीत होते हुए भी मानवीय जीवन के स्तरो आयामो तथा रूपो को, इतनी रगतो और सम्भावना तथा गहराइयो मे प्रस्तुत करता है कि अत मे वह नितात नसर्गिक, मानव जीवन की शाश्वत लडाई लगता है। काल से बध होकर, कालातीत सघर्ष की निरतरता। यदि इस आभ्यातरिक तथा बाह्य सघर्ष

के रूप में देखा जाय तो हम हमारे युग में प्रासंगिक लगेगा। और जैसा मैंने पहले इंगित किया, भविष्य इसी के माध्यम से पारदर्शी हो सकता है। लेकिन फलक दीख जाना, क्या मूल सांस्कृतिक धारा के अनुकूल विकसित हो जाना है? अक्षर और क्षर को पहिचान कर प्रासंगिक जीवन दर्शन व जीवन दृष्टि को पाना इतना सहज नहीं है। यह हुई विश्लेषण की बात—शायद इसमें मेरी खोज की दृष्टि भी स्पष्ट हो जाय। यद्यपि मैं महाभारत से प्रभावित हुआ, पर मैंने पूर्वार्ध कथा को इस उपन्यास 'इदम' में लिया है। व्यास इस हिस्से में संक्षिप्त तथा सांकेतिक हैं। वह उदाहरण स्वरूप उपकथाओं या अन्य छोटी छोटी लघु आख्यानिकाएं प्रयोग में लेते हैं परन्तु संवादों में वह भी तर्क की शक्ल में चरित्रों की बात चीत की पुष्टि के लिये। मूल चरित्रों के चरित्र इन्हीं से सांकेतिक होते हैं। पर यह चरित्र स्पष्ट आकृति तथा व्यक्तित्व नहीं पाते हैं। इनको समर्थन व जोड़न के लिये ममज्ञ तथा कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। जैसे अम्बा अम्बिका अम्बालिका का हरण प्रसंग। धृतराष्ट्र व पांडु की शिक्षा-दीक्षा उनका विवाह। पांडु जिसके चरित्र व व्यक्तित्व ने मुझे विशेषत प्रभावित किया, इतना संक्षिप्त है कि नगण्य पात्र लगता है। गांधारी व कुन्ती का चरित्र कौरवों पाडवों के बड़े होने पर जरूर गहरा होता है परन्तु उनके विवाह के बाद पुत्रों के जन्म तक के व्यक्तित्व की रूप रेखा बिल्कुल खाके की तरह एकल रेखीय है। माद्री तो छितरे प्रसंग में पूर्ण चरित्र ही नहीं ले पाती। अम्बिका तथा अम्बालिका व विदुर की दासी मां का चरित्र नियोग जाना के आना पालन के प्रसंग में दब गया है। ऐसा लगता है कि महाभारत का रचनाकार कौरवों-पांडवों की कथा कहने के लिये त्वरागति से उस हिस्से तक पहुंचना चाहता है।

मैंने 'इदम' उपन्यास को इसीलिये पूर्वार्ध कथा तक सीमित रखा है। पांडु पर केंद्रित होकर उसकी मृत्यु पर उपन्यास समाप्त होता है।

इस उपन्यास के चरित्र जटिल स्थिति में बार-बार अपने अंतर में उतरते हैं दूसरे चरित्रों से टकराते हैं उसी से उनका व्यक्तित्व स्वरूप लेता है तथा जीवन दृष्टि परिपक्वता लेती है। द्वैपायन (व्यास) इस उपन्यास में स्वयं चरित्र के रूप में स्वीकार किये गये है। महाभारत के पूर्वार्द्ध में वह लगभग केन्द्र में है। (बाद में समय-समय पर प्रकट होते हैं पर मात्र उपदेशक की हैसियत से) अतः मुझे उन्हें पात्र बनाना संगत लगा। जब पात्र बने, तो अन्य पात्रों से संबंध सूत्र भी स्थापित होते ही थे।

भैरप्पा के 'पर्व' उपन्यास की मूल दृष्टि से मैं सहमत नहीं हो सका। वह अपने 'महाभारत' को इतिहास तथा तत्कालीन सभ्यता के अध्ययन का प्रामाणिक दस्तावेज अवश्य बना पाते हैं पर प्रश्न यह रहता है कि आर्य संस्कृति की मूल अंतर्धारा आत्म संयम, आश्रमों की प्रधानता ऋषियों का वर्चस्व राजा प्रजा संबंध यज्ञों की प्रधानता, मंत्र शक्ति व उनसे परिचालित अभिमंत्रित

अस्त्र स्वयं गीता का दर्शन, क्या इनकी उपेक्षा की जा सकती है? इस जीवन प्रणाली का अवदान ही हमारी सांस्कृतिक दृष्टि की निरन्तरता है। आकस्मिकता ही कहिये कि 'इदम्' उपन्यास समाप्त करने के बाद भूमिका लिखते समय, मुझे दुर्गा भागवत का 'व्यास पर्व' पढ़ने को मिल गया। उसके अध्ययन विश्लेषण और चरित्रों की व्याख्या ने मुझे चकित किया तथा आश्वस्त भी किया कि 'इदम्' के चरित्र उनकी व्याख्या के रंग रेशे लिए हुए हैं। कदाचित यह उसी सर्जनात्मक विश्लेषणात्मक दृष्टि का प्रतिफलन हो जो सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में महाभारत को व्यक्ति चरित्रों तथा उस समय के प्रभावादी दर्शन को समझना चाहती हो।

चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से यदि 'मोक्ष' को हम अपना विश्वास नहीं दे सकें—क्योंकि वह जन्म-जन्मान्तर के गड़बड़ झाले में फँसाता है—तब भी धर्म, अर्थ, काम से तो मनुष्य नहीं बच सकता। जब उसकी प्रकृति में सत्व, रजस तथा तमस नैसर्गिक है। और शायद इसी वजह से मानवीय जीवन यात्रा सांसारिक मरटा के बीच अपूर्णताओं से होकर पूर्णताओं की प्राप्ति की ओर संघर्ष करती हुई चलती है। अर्थ अपूर्णता है इति पूर्णता पर इति प्राप्त होती ही नहीं उसका अंश प्राप्त होता है कि आयु का पटाक्षेप हो जाता है। अर्थ और काम को सम्भालने वाला धर्म है। यह व्यक्ति-व्यक्ति का भी होता है पर समाज तथा युग का भी। कैसा हो? यह समस्या हर काल की शाश्वत समस्या है। क्या आज की नहीं है? शायद दोहरे स्तर पर इसकी झलक आपको 'इदम्' में मिले। अंतिम बात मैं इस उपन्यास में विश्लेषणात्मक-सृजनात्मक तथा काल्पनिक रहा हूँ पर श्रद्धा के साथ। महाभारत के पात्र पूर्व परिचित हैं। मैं मानकर चला हूँ कि द्वैपायन महर्षि हैं भीष्म पितामह हैं। इसलिये भीष्म की जगह मैं भीष्म पितामह ही कहता हूँ राजमाता सत्यवती भी यही सम्बोधन प्रयोग में लेती हैं। इसी में मेरी दृष्टि पता लग सकती है।

शेष, उपन्यास आपके समक्ष है। अगर आप इसमें महाभारत के पात्रों के साथ स्वयं को भी पाने लगते हैं तथा वर्तमान को भी तो मैं अपने को सफल मानूँगा, क्योंकि मेरी भी स्थिति यही रही है। आप ही में से तो मैं भी हूँ—आपसा। कला के क्षेत्र में दावे करना अहम्मन्यता है अतः मैं नम्रता पूर्वक आपको 'इदम्' प्रस्तुत कर रहा हूँ। 'इदम्' की व्याख्या मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी हुई है सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में भी इसीलिये उपन्यास का नाम 'इदम्' संगत लगा।

22 मई 1989

धन्यवाद

राजानन्द

(१)

काफी बहस और धार्मिक जिरह के बाद भीष्म अपनी दूसरी मा और राज माता सत्यवती को इतना समझाने म सफल हो सके कि वह समस्या पर अन्य तरह स सोचें।

सत्यवती मा थी, जिन्हें वह पूर्ण श्रद्धा व आदर देते थे। सत्यवती उसी घनत्व म उनकी योग्यता, वीरता एव न्याय-बुद्धि पर विश्वास करती थी। कुरुवश का प्रशासनिक सचालन विस्तार, उनके हाथों मे रहा। रहा तो यश, कीर्ति, प्रसार निरन्तर बढता गया। धर्म और राजनीति के वह साक्षात नवनीत थे जो अनुभव व मन्थन का परिणाम था।

छोटे भाई विचित्रवीय की क्षय रोग से असामयिक मत्यु ने अत पुर को हिला दिया। पहले चित्रागद की मत्यु हुई थी। उस आघात से कुरुवश नहीं उबरा कि विचित्रवीय कालकवलित हो गये।

भीष्म कसी विडबना है यह। क्या कुरुवश हमेशा उत्तराधिकार की समस्या स दुखी रहेगा? सत्यवती ने भारीमन स पूछा।

एसा नियम, या विधाता का लेख नही हो सकता, पर हम मानवीय अतीत से भविष्य का अनुमान लगाने के आदी हैं। मत्यु कब आये? कसे आये? यही रहस्य तो मनुष्य का पराजय बिन्दु है। सिंहासननुमा चौकी पर बठे भीष्म ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

धर्मन भीष्म क्या कुरुवश की सुहागिनो का यौवनावस्था म विधवा हो जाना भी किसी रहस्य तथ्य के आधीन है?

भीष्म सत्यवती के मुख को देखने लगे। प्रौढता से आगे के चरण ने उनके चेहरे को धारियां और भृकुटनें दे दी हैं। पर उन्हें आश्चय है कि मा निष्कर्षमूलक धारणायें प्रश्न के रूप म क्या रख रही हैं।

आप जसी विदुषी एसे प्रश्न क्या कर रही है आज? मैं जानता हू विचित्रवीय की मृत्यु से आप विचलित हैं—मैं भी हू पर व्यक्तिगत हानि से उभरकर हम राज्य के सबध म सोचना चाहिए। विषाद को तितर बितर करके

हम अत को सगठित रखना होगा।

जानती हू भीष्म। तुम्हार लिए जो स्वभावगत है, मुझे उसको प्राप्त करने म कभी अपने को जगाना पडता है, कभी सम्बल की आवश्यक्ता पडती है। वह सम्बल तुम्ही रहे हो मेरे लिए।

वह सम्बल आपके साथ आज भी है फिर इतनी क्तव्यविमूढ कसे हो रही हैं? भीष्म कारण जानते थे, पर जस सत्यवती क वदना बिदु को टटोल रहे थे।

सत्यवती न दृष्टि उठाई और भीष्म को एकटक देखती रही—स्तब्ध। भीष्म ने कभी दीप्त और अन्दर तक मथन करने वाली दृष्टि कभी नही देखी। उनका जसा सयमी तथा निर्लिप्त भावोद्वेलन महसूस कर रहा था। धर्मानुकूल समाधान तलाशने के प्रयास म तक वितक करने वाली मा, यकायक भावना और सम्मोहन की गिरफ्त म क्या आन लगी?

राजमाता आप इतनी एकाग्र होकर मुझे क्या देख रही है? क्या मेरे उत्तर से आपको आघात पहुचा है? अगर ऐसा कुछ हुआ है तो मैं क्षमा मागता हू। भीष्म ने नम्रता से कहा।

सत्यवती का ध्यान टूटा। वह आसन छोडकर खडी हो गई हैं। हल्की-सी पीठ का कोण लेकर एक दो कदम यू ही चली, फिर कक्ष की वस्तुओ को बिना प्रयोजन देखने लगी। यह प्रयास था अपने को छिपान का।

मैं क्या समझू मा?

मुझे मत समझो परिस्थिति को समझो। जैसा उचित समझत हो, वह कहो। सत्यवती के शब्दो म कठोरता थी, मा हताशा आदेश था या उलझन स उपजा निवेदन भीष्म नही पहचान सके।

सत्यवती क्षण-क्षण ऐस कस बदल रही है। भीष्म क लिय भी उनका व्यवहार अगाध हो रहा है जो अपना अथ नही जानन दे रहा।

भीष्म चुप हो गय। वातावरण भारी होता जा रहा था।

पलभर बाद, शाति को स्वय न बर्दाश्त कर पाने क कारण, सत्यवती पुन भीष्म को देखत हुए बोली—तुमन तो फिर मझधार म पहुचा दिया हमारी नाव को।

आप तो दक्ष हैं नाव का खे ले जान म। दासराज की पुत्री का सम्बन्ध जल, नाव और मझधार पार करने स रहा है।

वह अतीत, आयु क साथ गया। समय बीत कर क्षय हो जाता है। उसकी निरन्तरता भ्रम है। मैं तुम से भी यही कहना चाहती थी। लकिन तुम उसको आधार बनाये हुए हो। उसी का हवाला देकर तुमने मेरी कामना का अनुचित ठहरा दिया। यह तुम्हारी जिद है या

मा आग क अभिप्राय को मुह से मत निकालिये मुझे कष्ट पहुचेगा। मुझे

जो कष्ट पहुचता रहा है, उस ओर कभी ध्यान गया ? मेरे पिता की, मेरे लिए सुरक्षा देखना, मुझे कितने क्रूर अपराध का उत्स बना गई इस पर चिंतन किया कभी तुमने ? भीष्म मैं मा रही मा हू। तुम इस कुरुवंश के सरक्षक होकर कर्तव्य के सवदनहीन काठ हो गये, तुम्हे इसकी चेतना हुई कभी ?

भीष्म को मा से इस तरह के व्यक्तित्व केंद्रित हमले की अपेक्षा नही थी। ऐसा कभी हुआ भी नही। श्रद्धा और विश्वास के इस परस्पर सम्बन्ध मे कैसे अजीब प्रश्न कर रही है राजमाता।

आप शायद स्वस्थ्य नही है। मेरी सलाह है आप विचित्रवीय की हानि को दैवी निणय मानें। इतने साहस स जब अन्तिम काय पूर्ण कर दिये, फिर अब उसके प्रभाव को रखे रहना उचित नही। यह गम्भीर समस्या है हम इस पर अन्य निपुणो की राय ले सकते है। मुझे आज्ञा है ? भीष्म लगभग खडे हो गये।

मैं अस्वस्थ्य नही हू चिंतित हू। मेरी चिंता मुझे केन्द्र बना रही है इससे मुक्त होना चाहती हू। लेकिन पुत्र तुम भी बहुत कुछ जानते हुए अनजान बन रह कर अपनी मनवाना चाहते हो। क्या यह चातुय नही है ? यदि आज तुम विचार को स्थगित करना चाहते हो तो कर दो पर कल भी मेरी ओर से विषय इसी बिंदु से शुरू होगा, जहा कडी रुकी है। सत्यवती ने धैय दर्शाते हुए कहा। थोडी देर पहले का भाव अतिरेक सयम मे आ चुका था। उन्होने फिर पूछा—क्या तुम्हें बुलवाना होगा, या स्वय आ जाओगे ?

मैं आ जाऊगा। भीष्म ने उत्तर दिया।

हा। विचित्रवीय की मृत्यु से राजनीतिक स्थितियो के प्रति भी सतर्क होना होगा। खाली सिंहासन की कल्पना अधीनस्थ राजाओ को दु साहसी बना सकती है। सत्यवती राजमाता की तरह उसी भूमिका म हो गई थी।

भीष्म के शौय को ललकारने का परिणाम राजा उप राजा, जानते हैं। भीष्म ने कहा।

मुझे विश्वास है तुम्हारी आध्यात्मिकता योग चिंतन, नीति तथा वीरता पर विश्वास है, इसीलिए तुम पुत्र से अधिक हो मेरे लिए—आरम्भ से रहे हो। विचार और मत्रणा इसी बिन्दु स शुरू होगी कल।

भीष्म ने उचित अभिवादन किया और अतरग कक्ष से चले आए। सत्यवती उन्हे जाता हुआ देखती रही। फिर वह उदास-सी हुई। पर जब मुडकर चली तो हल्की-सी अथभरी मुस्कान प्रकट होकर गुप्त हो गई।

(२)

सत्यवती जितना अपने को सभालने का यत्न करती उतना मन अन्दर से टूटता। दो पुत्रो की जननी होने के नाते उन्हे गर्व अनुभव होता था। पति शान्तनु

की इच्छा के अनुसार वह योग्य साबित हुई थी। उन्होंने विवाह का प्रयोजन एक ही तो बताया था—पुत्र प्राप्त हो, ताकि कुरुवंश को उत्तराधिकारी का टोटा नहीं पड़े। भीष्म थे, पर क्षत्रीय कुल में एक पुत्र का होना पर्याप्त नहीं। युद्धों के बीच रहने वाले क्षत्रीय कुमारों का क्या विश्वास, किस समय विपक्षी के घात का शिकार हो जाये? भीष्म के बाद शान्तनु किस को राज्य सौंपते!

परन्तु संतान का होना तो विवाह का परिणाम होता। शान्तनु आकर्षित हुए थे उसके सौंदर्य पर।

वह चकित रह गई थी जब शंख-ग्रीवा, सुन्दर, पराक्रमी राजा शान्तनु, उसके सामने खड़े थे। वह पूछ रहे थे—तुम कौन हो? किसकी बेटी हो? इस वन में अकेली क्या कर रही हो?

राजसी बानक और आभूषण से सज्जित कामरूप भूपों में श्रेष्ठ भूप को सामने पाकर वह ठिठकी थी। उत्तर बनत-बनत भी नहीं बन पड़ा था।

यमुना किनारे, नाव के पास होने से, तुम्हारे मच्छ कन्या होने का भ्रम होता है। पर तुम्हारा रूप तुम्हें राजकन्या की अधिकारिणी घोषित करता है। क्या मेरा अनुमान गलत है?

गलत नहीं है। मैं दासराज की बेटी हूं। उनकी स्वीकृति से धर्मार्थ यात्रियों को पार उतारती हूं, नाव पर बैठाकर। उत्तर देकर वह भाग आई थी।

सत्यवती को आश्चर्य था कि उसका अतीत उसे यों क्यों घेर रहा है। राजरानी के सारे सुख भोगने के बाद क्या अतृप्ति जैसा कुछ शेष है उसमें?

होना चाहिए था। चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य के जन्म के बाद वह अहोभाग्य हुई थी। संतानों के सुख का आनन्द मन और आत्मा मना ही रहे थे कि राजा शान्तनु एकाएक स्वर्गवासी हो गये। पिता ने सुख भी नहीं पाया संतानों के बड़ा होने का। कामनाओं के वसंत में पतझड़ आया तो लू लिये हुए। वह संभल भी नहीं पाई कि उद्यान उजड़ गया। चित्रांगद पहले, बाद में विचित्रवीर्य चल बसा।

सत्यवती अम्बिका के कक्ष की तरफ गई। राजमाता को आते देख दासियां और परिचारिकाएं आदर में झुकीं।

अम्बिका कहां है?

छोटी राजरानी के यहां है। वह दो दिन से अस्वस्थ हैं। दासी ने उत्तर दिया।

मुझे सूचना क्यों नहीं पहुंचाई गई?

आपको अतिरिक्त चिंता में डालना उचित नहीं समझा, अम्बिका रानी ने। उनका कहना था, विधना का सहना होगा। हम स्वयं उससे निबट लें यही कुसमय की अपेक्षा है।

है, पर मैं निश्चित हो पाती तो आती क्यों? आइन्दा ध्यान रहे सुख-दुःख

की सूचना मुझे तुरन्त पहुचनी चाहिए। सत्यवती दासी को आदेश देती हुई अम्बालिका के कक्ष की तरफ चल दी।

दासियो की मौखिक चर्चा विधि से यह सदेश राजमाता के पहुचने से पहले पहुच गया कि वह दोनो बहुओ से मिलने आ रही है। रनिवास में अनुशासन के अनुकूल सब शिष्टाचारयुक्त था।

सत्यवती कक्ष म पहुची। अम्बिका ने खडे होकर अभिवादन किया। अम्बालिका अर्ध चेतना मे पलग पर लेटी हुई थी। सिरहाने खडी परिचारिका हल्के हल्के पखा झल रही थी।

राज चिकित्सक को बुलवाया था ? सत्यवती ने पूछा।

नही। विशेष व्याधि नही है। अधिक विचार करती है तब मूर्छा-सी छा जाती है। अम्बिका ने उत्तर दिया।

एकात मे मत होने दो इसे। कसी चचल फुदकती हुई विहगिनी-सी थी, विरग हो गई।

सब चुप रही। वास्तविकता स्वय राजमाता की भावना का समर्थन कर रही थी।

सत्यवती झुकी, अम्बालिका के लम्बे, घुघराले खुले केशो पर हाथ फेरा। बेटी, बेटी अम्बालिका ! उन्होने पुकारा।

अम्बालिका तनिक-सी गति मे हुई, फिर स्थिर हो गई।

बेटी आखें खोलो !

अबकी बार जसे अर्धचेतना को भेदकर, सम्बोधन चेतना क्षेत्र तक पहुचा। अम्बालिका ने हल्के से पलकें खोली। वह स्थिति का भान प्राप्त करने का प्रयास कर रही थी।

अम्बिका ने योग दिया—अम्बालिका, मा आई हैं हमारे पास।

मा का सम्बोधन सुन सत्यवती अत से काप गई।

अम्बालिका अब तक सचेत हो गई थी। राजमाता की ओर देखा और अचानक उठ गई।

लेटी रहो ! सत्यवती ने स्नेह मे कहा। मर्यादा के साथ पद का आतक शिथिलता को छू मतर करने के लिए काफी था।

बठिये ! अम्बालिका धीमे शब्दो मे बोली।

दासी फौरन उठी, कटावदार चौकी ले आई। सत्यवती बैठ गई।

अस्वस्थ थी, तो सदेश कहला देती, मैं राज चिकित्सक को बुलवा देती।

वस ही हो जाता है। अदर से मालूम नही पडता।

अपनी दशा काच म देखी है ? कसी थी—कसी हो गइ !

अम्बालिका गदन झुकाए, चुप रही।

विपत्ति का पहाड़ राज परिवार पर टूटा है। जिस पर बस नहीं, उसे सहना तो होगा। है, ना! फिर हम तो क्षत्राणियां हैं। कोमल, कि जैसे प्रात की कुसमित डालियां। कठोर, कि स्फटिक शिला।

अम्बिका अम्बालिका स्तब्ध सुनती रहीं।

तुम दोनों की चहक से तुम्हारी खिलवाड़ और हंसी उत्सव से, अंतःपुर सदा प्राणवान रहा। क्या वह अब निर्जीव रहेगा?

अम्बालिका की आंखों में आंसू रिसने लगे, जैसे जामुन से रस की बूंद छलक आई हो।

नहीं बेटी! इतना कमजोर मत करो दिल। अच्छी तरह जान सकती हो सुख का आकस्मिक तिरोहित हो जाना आत्मा को कितना सालता है। तुमने तो खिलना भी नहीं जाना कामनाओं का। रमी और लिखो ने पाठ दिया सौभाग्य। मैं तो तब उजड़ी जब दो बेटे सामने थे। तब मैं भी नहीं संभाल पाई थी अपने को। विशाल कंधों और लम्बी बांहों वाले वह देवता से सुमुख, सोने-जागते दीखते थे। फिर अपने को कठोर बनाना पड़ा। राज-काज, चित्रांगद, विचित्रवीर्य का पालन पोषण शिक्षा-दीक्षा प्रति स्थिति सी महत्वपूर्ण हो गयी। उसी में लगा लिया अपने को। अपने में से दूसरी सत्यवती को पैदा किया। तुम्हें भी करना होगा बेटी!

अम्बिका, जो अब तक अपने को साधे खड़ी थी, हूक कर रो पड़ी। यह क्या अम्बिका! राजमाता खड़ी हो गई। उसे अपने से चिपटा लिया। उसकी पीठ पर उनका हाथ ऊपर-नीचे फिरने लगा जैसे शक्ति प्रवण करा रहा हो।

अंदर से झंझावात से घिरी सत्यवती स्तम्भ-सी दृढ़ खड़ी दोनों को साहस से स्फूर्त करना चाह रही थी।

घड़ी भर के लिए वातावरण एक-सी व्यथा में घिर रहा। परस्पर की आतरिक आत्मीयता एक-दूसरे से प्रेरित होती हुई सामर्थ्य बटोरती रही।

ऐसा ही होता है समान विपत्ति में।

घुमड़े हुए भावों का दबाव स्फीत हुआ। सत्यवती को महसूस हुआ वह उस अंकुश को अपने पर नहीं लगा पा रही हैं जो राजमाता होने के नाते उनको अपने पर रखना चाहिए। भीष्म के सामने भी वह तर्क और विवेक से हटकर भावना की सतह से बात करने लगी थीं। उन्हें संदेह हुआ कहीं उनके और भीष्म के बीच हुई वार्ता का संकेत अम्बिका अम्बालिका तक तो नहीं पहुंच गया।

औरत का जीवन कितना उत्तरदायित्व पूर्ण है लगता है ना अम्बिका? वह बोली।

अम्बिका ने गर्दन हिलाकर स्वीकृति दी पर मन ने कहा यह तो सामान्य कहावत है।

औरत, वासना, विलास और आसक्ति मात्र नहीं, इसके अतिरिक्त है। क्या बेटी? उन्होंने अम्बालिका से पूछा।

मोह और राग का उत्सव है यह देह, मैंने इतना ही जाना है, मां। पर वह भी छिन गया। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

चुप हो जा अम्बालिका, राजमाता की मर्यादा का ध्यान रख।

उसे भयभीत मत करो! वह वही कह रही है जैसा उसने अनुभव किया। विचित्रवीर्य अनियन्त्रित आवेग था, मैं जानती थी। अभिषेक हुआ, राजा बना, पर क्या राज्य में उसे सरोकार रहा? मेरे और भीष्म के होते हुए वह अपने को उन्मुक्त मानता रहा। तुम जैसी दो रूपसियां को पाकर उसका प्रेम में डूबे रहना स्वाभाविक था। मैंने अतिरेक की तरफ कई बार उसे सचेत किया लेकिन वह

इसमें हम क्या करते मां? अम्बालिका ने प्रश्न किया।

मैं क्या कर सकी, जो तुम कर पाती। कामदेव-सा दिखता था, पर युवा आयु की लापरवाही और जिद भी तो थी। तिस पर भीष्म का विशेष लाड। मैंने जब भी भीष्म से कहा—इसको समझाओ। राज-काज के काम की समस्याओं से इसकी जानकारी कराओ। भीष्म कहते—खेलने, उत्सव मनाने के दिन हैं। मन भर लेने दो। अभी से क्या प्रपंच में फंसाऊं।

सत्यवती चौंकी। वह फिर बहने लगी अतीत की ओर। क्या हो गया है कि वह नियन्त्रण अपनाती है स्पष्ट अनचाहे खुलने लगती है। जो कहना चाहती हैं, वह गौण होकर प्रमुख विचित्रवीर्य की स्मृति हो जाती है।

वह फिर संभली और अभिप्राय का सिरा पकड़ा—तुम काशीराज की पुत्रियां हो। काशी राग विराग का तीर्थ है। मैं मानती हूं तुम दोनों में संस्कार स्वरूप प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों हैं।

अम्बिका के समझ में नहीं आया वह क्या कह रही हैं। अम्बालिका खाली भाव-सा चेहरा लिये उन्हें देखती रही।

नहीं समझ में आया ना। कैसे समझाऊं मेरी समझ में नहीं आ रहा है। इतना जान लो कि तुम्हें अब परिपक्व होना है। भावना की ऋतु तुम्हारे लिए शेष हो गई। विचारवान बनो! औरत का एक पक्ष प्रेम है। उसका दूसरा पक्ष, वंश की कड़ी को बढ़ाना है। मैं हारी हुई हूं कि यह कैसे होगा? इस कर्तव्य पर भी सोचना चाहिये तुम दोनों को।

हम आपके पुत्र की विधवा हैं जो अपने वैधव्य को स्वीकार नहीं पा रही हैं। ऐसा होता है क्या? इतनी जल्दी और अकस्मिकता से? अम्बिका बोली।

अम्बालिका की आंखों से फिर आंसू बहने लगे।

सत्यवती खड़ी हो गई। परास्त होने की अभिव्यक्ति उसके सलवटों वाले मुख पर स्पष्ट थी—स्वीकारना तो होगा। जब दूसरा चारा न हो तो अनचाहा

अपनाना पडता है। आरोपण का स्वाभाविकता की तरह लाद लेना होता है। परिस्थिति को मिलकर नहीं बाटोगी तो अत पुर शासन तनावा का असह्य स्थल बन जायेगा। मैं हू।

जब मैं तुम्हारे साथ हू, तब हौसला रखो !

सत्यवती ने झुककर अम्बालिका के सिर पर स्नेह स हाथ फेरा। अम्बिका को स्नेहपूर्ण नज़र स देखा, फिर उसको हल्के स थपकी दी। वह उद्विग्न-सी चल दी। दासिया पीछे-पीछे हो ली।

(३)

मा सत्यवती ने वश निरतरता की समस्या अभी तक भीष्म के सामने रखी थी। उनका सहज सोचना था कि ऐसी विवशता म भीष्म को अम्बिका व अम्बालिका से विवाह कर लेना चाहिय।

भीष्म न अपनी पूर्व प्रतिज्ञा का ध्यान दिलाते हुए कहा—मैंने तुम्हारे कारण राज्य न अपनाने की शपथ ली थी। तुम्हारे पिता न यह शका रखी कि कदाचित मेरी भावी पत्नी या उसकी सतान राज का दावा करने लगे। तब मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य पालन की शपथ ली थी। गगापुत्र होने अपने वचन को कैसे तोड सकता हू ?

सत्यवती अभी आशा किये हुए थी कि वह भीष्म को मना लेगी, इसीलिये उसने कल पुन विचार करने के लिये बुलाया था।

भीष्म की चिंताए और भी थी। प्रात दिनचर्या स निवृत्त हो और वह अध्ययन करने के बाद थोडी देर तक उन्होने साधना की। दूसरे दिनो की अपेक्षा यह साधना अधिक समय तक करनी पडी। वह मन को स्थिर करना चाहते थे। रात भर यह उद्विग्न और अस्थिर रहा। तरह-तरह के विचार मन मे आते रहे। बार-बार उन्होने ग्रथो का सहारा लिया लेकिन अनिश्चय व अनिर्णय की स्थिति बनी रही।

निश्चित किये हुए समय पर उन्होने मंत्रिसभा म भाग लिया। राजाओ को राय दी कि व अपने दूत तथा गुप्तचर दोनो को उपराज्या म भेजें और समाचार प्राप्त कर लें कि कही अवज्ञा करने की मानसिकता तो किसी की नही बन रही। चित्रागद की वीरगति के बाद जिस तरह हम लोगो ने सतर्कता बरती थी, उसी तरह अब भी बरतनी होगी।

शातिमय सुशासन का एक दोष यह भी होता है कि छोटी मोटी असतुष्टिया या विद्रोह, गुणो के प्रसार म ढक जाते हैं। लेकिन क्या यही घुन की तरह नही फलते हैं ? भीष्म उस मंत्रि परिषद को सजग कर रहे थे।

आपके रहते हुए किसी राजा का साहस नही हो सकता कि विद्रोह करे। मन्त्रि परिषद ने राय व्यक्त की।

इतना अविवेकी और विश्वासी मैं नही हो सकता। धर्म और नीति के आधार पर मित्रता तथा परस्पर गरिमा के सचार के साथ राज्यो के बीच सम्बन्ध होने चाहिये, मैं मानता हू। पर यह भी मानता हू कि राज्य विस्तार कोष-वृद्धि की लिप्सा किसी को भी प्रेरित कर सकती है विद्रोह करने के लिये या हम पर आक्रमण करने के लिये।

वृद्ध क्षत्रीय, भीष्म की इस तरह की उत्साह-हीन बातो पर आश्चर्य कर रहे थे। आत्म विश्वास के धनी भीष्म का यह कौन-सा रूप था।

पर भीष्म अपनी शकाओ के लिये पुष्टि भी सामने रख रहे थे। चित्रागद शूरवीर था। उसने अनेक राजाओ को परास्त कर कुरु राज्य के आधीन लिया था। मैं भी उसके सरक्षक के तौर पर था सब जानते थे। तभी वे नाम राशि गधर्वराज चित्रागद ने कुरुराज पर हमला क्यो किया? क्या हिरण्यवती सरस्वती के किनारे तीन वर्ष तक उस युद्ध करना पड़ा?

राजकुमार यदि चाहते तो हम गधर्वराज को अवश्य परास्त कर सकते थे। उनका निश्चय था कि वह अकेले उससे निबटेंगे। एक वृद्ध मत्री ने कहा।

हा, वह अतिरिक्त उत्साही था। तप्त रक्त था। तीखा अहम था। युद्ध कला होती है बुद्धि द्वारा त्रुटिहीन आयोजन। वह सपाट बल प्रदर्शन मे विश्वास रखता था। उसने इसीलिये हानि उठाई। भीष्म इतना कहने के बाद सोच मे पड़ गये। चित्रागद के सदर्भ के साथ, विचित्रवीर्य भी उभर आया। दोनो ऐसे उठ गये जैसे अधपके आम, वृक्ष से टपक गये हो।

मुख्य सेनापति को भी आना था वह नही आये? भीष्म ने पूछा।

आपके आदेश के अनुसार उन्होने व्यापक भर्ती अभियान चला रखा है। सैनिको का चयन अलग अलग प्रकार की सेना के लिये हो रहा है। पैदल, अश्वारोही हाथियो के विशिष्ठ महावत। एक मत्री ने सूचना दी।

मैं चाहता हू कोष के लिये निरन्तर प्रयास किये जायें। कुरुराज आदर्श माना जा रहा है क्योकि हम धर्म के आधार पर राजनीतिक निर्णय लेते हैं। धर्म का आधार चरित्र है। चरित्र दृष्टि से बनता है, और दृष्टि को पुष्ट करता है। नेतृत्व यदि चरित्र-सम्पन्न नही होगा तो निश्चय ही अनुगामी पथच्युत हो जाएगे।

तभी सूचना दी गई, ब्राह्मण एव कुल पुरोहित वृन्द आया है। आपने उनको विचार विमर्श के लिये बुलाया था।

हॉ। बुलवाया था। तब भीष्म मन्त्रि परिषद से बोले—प्रसाशन और सतर्कता का विचार अधूरा रह गया। मैं बहुत कुछ कहना चाहता था। फिर

कहूंगा पर आप सब मेरा मंतव्य समझ गये होंगे। आप मुझसे भी ज्यादा आयु वाले और अनुभवी हैं। सत्य पर मैं चलना चाहता हूं, आप भी चलिये। विश्वास मैंने आपको समर्पित किया है वसी अपेक्षा आप सब से रखता हूं। मुझे केन्द्र में रखकर निश्चित मत होइये, मैं इतना चाहता हूं। आपकी योग्यताएं, क्षमताएं अनन्त हैं। अपने अपने उत्तरदायित्व को पूजा की तरह पूरा करिये, देश सबल, संयुक्त और शक्तिशाली छवि वाला होगा। आज की सभा स्थगित करें।

आपका विश्वास हम सब की प्रेरणा है। कई स्वर एक साथ निकले।

आपकी श्रद्धा मेरा बल है। भीष्म ने एक हाथ ऊपर उठा दिया। वह आशीर्वाद था—सभा के समाप्त होने का संकेत भी।

मंत्रिगण अभिवादन करके चल दिये।

भीष्म ने गहरी सांस ली और मुख्य सिंहासन के पास वाले सिंहासन—जिस पर बैठे थे—उसकी पीठ से अपने को टहरा दिया। शिथिल छोड़ दिया देह को कि अल्प विश्राम पा सकें।

द्वारपाल तथा अन्य सेवक प्रतीक्षा कर रहे थे भीष्म की आज्ञा की कि वे वेदपारंगत, धर्मग्रंथ के गम्भीर अध्ययता, ऋषि एवं पुरोहितों को विचारार्थ प्रवेश दें।

इस अंतराल में परिचारक दूध तथा फलादि सामने लाया था, जिसे लेने से उन्होंने मना कर दिया। झोले नुमा एक वस्तु थी जिसमें उनकी हस्त लिखित सामग्री थी अंगोछा था तथा विशिष्ठ जड़ी थी।

भीष्म ने, जो वास्तव में इस समय शान्तिमय विश्राम चाह रहे थे, अपने को चुस्त रखने के लिए जड़ी को मुंह में रखा और उसके रस को चूसने लगे। रस जाते ही अंदर पहुंचा उनकी शिथिलता दूर होने लगी।

उन्होंने आज्ञा दी कि ऋषियों पुरोहितों को प्रवेश दिया जाय। मंत्रणा करने से पूर्व राजा की एक मानसिक स्थिति होती है यथा योग्य आदर-सत्कार देते हुए भी अपने को दृढ़ तथा कान्तियुक्त रखना। भीष्म तो स्वयं तपस्या तथा विद्वता की प्रतिमूर्ति थे। पर मन कच्चा हो रहा हो तो आन्तरिक दक्षता ढीली पड़ जाती है। वह प्रभाव नहीं रहता जो स्वाभाविक स्थिति में दुगुना रहता है।

उन्होंने संयम को एकत्र किया और मानसिकता को सबल किया।

पुरोहित-गण अपने अपने निश्चित स्थान पर बैठ गये।

भीष्म ने आमंत्रित करने का कारण बताते हुए कहा—राज्य पर राजनीतिक संकट आया है। इसके साथ साथ धार्मिक बंधाव भी समक्ष है। विचित्रवीर्य के अन्तिम कार्य के रूप में जो भी आवश्यक यज्ञादि करने थे, वह कर दिये गये। प्रश्न यह है कि अब उत्तराधिकारी कौन हो? सिंहासन कब तक खाली रह सकता है?

आप योग्य हैं कौरव कुल के निष्कलंक सूर्य हैं आपको सिंहासन स्वीकार

कर लेना चाहिये। वृद्ध राजपुरोहित ने कहा।

चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य के होते हुए भी आप ही राज्य कार्य सम्भाल रहे थे। आपकी स्वीकृति के अतिरिक्त विकल्प नहीं है। दूसरे पुरोहित ने कहा।

परन्तु यह विकल्प भी तो उचित विकल्प नहीं है। आप लोग मेरे सकल्प और शपथों को जानते हुए ऐसा सुझाव दे रहे हैं जो कुल के लिये कलंक हो जायेगा। मेरी व्यक्तिगत छवि की शक्ति क्षीण हो जायेगी। शत्रु राजाओं को प्रचार करने का मौका मिलेगा कि कुरुवंश की आध्यात्मिक राजनीति व नैतिकता ढोंग है।

आपद काल में अपवाद को मानना नीति सम्मत होता है। आप के संयम, निर्लोभ और त्याग को सब जानते हैं—क्या कोई विश्वास करेगा कि राज्य भोग और शक्ति भोग के लिये आपने अभिषेक चाहा? एक युवा ऋत्विज ने विचार रखा।

भीष्म मुसकराये। श्रद्धावान मुनि मैं तुम्हारी अभिव्यक्ति का आदर करता हूँ। युवामन की श्रद्धा प्रश्नवती बुद्धि से सलग्न होती है। प्रश्न कभी कभी विपरीत दिशा भी ले लेते हैं। तब सत्य भी मिथ्या दीखने लगता है। आज जो मेरे निर्लोभ और संयम से प्रभावित हैं, कल मुझ पर लोभी और विलासी प्रवृत्तियों-वाला होने का आरोपण कर, मुझे लांछित करेंगे। यह प्रचार कितना घातक होगा।

मेरी आपत्ति है आपकी विचारणा पर। दूसरे वृद्ध विद्वान बोले। आप स्वयं ऐसे विचारों का तानाबाना अपने चारों ओर बुन रहे हैं जो काल्पनिक हैं। ऐसा भय ग्रस्त और शंकालु व्यक्ति होता है, जो आत्मबल से क्षीण हो। आप आत्मस्थ और प्रबल बली हैं।

क्या मैं दुर्बल मन नहीं हो सकता?—भीष्म ने प्रश्न किया।

नहीं! निश्चित नहीं। कई स्वर बोल उठे।

मेरा कहना यही है कि मेरे सामने ऐसा विकल्प मत रखिये जो मुझे कमजोर करे। सत्य, संयम और न्याय मेरी आत्मा के सबल अंश हैं। इन्हीं की साधना मैंने की है। इन्हीं ने मुझे तटस्थ तथा निर्लिप्त कर्मवाद सिखाया है। भीष्म इसके बिना संरक्षक और निष्पक्ष विचारक नहीं रह सकता। राज्य का संरक्षक होना कर्त्तव्यों को निर्धारित करता है— राजा होने में अधिकार—दुर्दांत अधिकार, का दोष पैदा हो सकता है। तब कुरुराज्य का संचालन परिषदा के विचार विमर्श से नहीं होगा, अधिनायक के आदेशों के अधीन हो जायेगा।

राजपुरोहित तुरन्त बोले—वह दिन कुरुवंश के विनाश का दिन होगा।

भीष्म ने तुरत सूत्र को पकड़ लिया। सौहार्द्र, मित्रता, सुन्सामजस्य की सम्पन्नता दूसरों की स्वतंत्रता और गरिमा के आदर करने में है। हमारे राज्य

का विस्तार यदि शौर्य और आतंक के जरिये होता है तो निश्चित मानिये वह स्थाई नहीं रह सकता। आतंक में भय है जो कभी भी विद्रोह बना सकता है। सौहार्द्र में समझ है अपनत्व है जो दोनों पक्षों को विकसित होने और उत्थान पाने के लिये वातावरण बनाता है।

हम आपके विवेक पर निर्णय छोड़ते हैं। आप समाधान निकाल सकते हैं हमें विश्वास है। वृद्ध पुरोहित ने कहा, जिनकी मान्यता पूरी परिषद में थी।

आपका आभारी हूं। आपने स्थिति में निश्चित तौर पर असामान्य निर्णय लेना होगा। मैं राजमाता से विचार करूंगा वह मेरे लिये पूज्य हैं। आप सहमत हों तो आज की परामर्श सभा स्थगित करें। आवश्यकता पर पुनः बुलाऊंगा।

आप धन्य हैं! सब एक स्वर में बोले।

नहीं। मुझे विशिष्टता से बोझिल मत करिये। मैं स्वयं समाधान के बारे में स्पष्ट नहीं हूं। धर्म सम्मत और राजनीति सम्मत मर्यादित हल क्या हो आप भी खोजने की कोशिश करियेगा। यदि सूझे तो अवश्य मुझे अवगत कराइयेगा।

धन्यवाद!

भीष्म ने हाथ जोड़ दिये। सब आशीर्वाद देते हुए प्रफुल्लित मन चले गये।

भीष्म ने गृह की तरफ प्रस्थान किया।

भोजनादि से निवृत्त होकर वह विश्राम करने के लिये लेटे। उन्हें पता था राजमाता सत्यवती के सामने आज पुनः उपस्थित होना होगा। रात भर मां की वह आतंक आंखें उनके सामने घूमी रहीं, जिनमें अद्भुत स्नेह था। पर, सम्मोहन भी। मंत्रियों एवं आमात्यों की परिषद हो या ब्राह्मणों की परामर्श दात्री परिषद सब एक ही सुझाव पर टिके हैं। कितनी परावलम्बता स्वीकार कर ली है कि नवीन दृष्टियों से धर्मग्रंथों को देखते ही नहीं? मुझ पर निर्णय छोड़ना क्या परिश्रम तथा उत्तरदायित्व से बचना नहीं है!

द्वंद्व में दूर सुरक्षित किनारे पर खड़े होकर, दूसरे को द्वंद्व में डालना कितना आसान है।

मैं आत्मबल सम्पन्न हूं—मान लें सब। मुझे दर्जा दे दें असामान्य मानव का। इससे क्या यह तथ्य सिद्ध हो जाता है कि मैं उन कमजोरियों से परे हूं जो किसी भी व्यक्ति में हो सकती हैं।

भीष्म कितना अन्दर से हिला हुआ है कौन अनुमान लगा सकता है! वह दूसरों के सामने यदि दृढ़ता का व्यक्तित्व रखता है तो इसीलिये कि उसकी निराशा या दुःख की झलक प्रकट हो गयी तो आलम्बित हतोत्साह हो जायेंगे।

मां सत्यवती कह रही थीं अम्बिका, अम्बालिका पुत्र कामा हैं तुम विचित्रवीर्य के भ्राता हो अतः तुम उनसे पुनः विवाह कर सकते हो।

उन्हें क्या पता इन माइयों के खातिर कितने अवांछित दोषारोपण सुने हैं!

भीष्म उसी तरह स्थिर लेटे रहे। उनकी दृष्टि उस बीते हुए दृश्य का प्रत्यक्ष करने लगी जिसे वह विस्मृत कर चुके थे किसी कड़ुवे अनुभव की तरह।

काशीराज के आयोजित स्वयंवर में उपस्थित राजाओं ने कँस ताने कस थे।

तीन-तीन कन्याओं को वरने की कामना लेकर श्वेत जटा और श्वेत दाढ़ी मूछों वाले भीष्म उपस्थित हुए हैं। ब्रह्मचर्य का प्रण क्या ढोंग था? कुरुवंश की आध्यात्मिकता क्या वासना और राज्यैषणा से रंगा हुआ दुरंगा उत्तरीय है?

भीष्म फिर भी स्थिर लेटे रहे जैसे उद्विग्नता पैदा करने वाली स्मृति का द्रष्टा बनकर शमित करना चाह रहे हों।

अहंकार मायावी स्वभाव को होता है। मन के चांचल्य से जुड़ जाता है। 'मैं' भोक्ता बनने को जैसे हर समय तत्पर रहता है।

भीष्म को अम्बा अम्बिका अम्बालिका के स्वर सुनाई पड़े—यह वृद्ध भीष्म हमारा लोभी होकर आया है। क्या आयु और वय को लजाने आया है?

जिन कन्याओं ने मुख से पीठ फेर ली स्वयंवर में, उन्हीं को स्वीकार करें। उनके गणित में भीष्म सात वर्ष और बूढ़ा हो चुका है।

भीष्म ने सायास अपने को स्मृति से बाहर किया। ध्यानयोग में प्रवेश कर अपने पर चेतना शून्यता को छान दिया। इसी प्रयास में उन्हें वास्तविक झपकी आ गई।

(४)

मध्याह्न के बाद जब उनकी आँख खुली वह शांत थे। भीष्म ने अपनी चिंतन विधि और योग को अपनी तरह से अन्वेषित किया था। शास्त्रों का अध्ययन वह निरंतर करते थे ताकि मूल विचारों के प्रेरण से वह वर्तमान के संदर्भ में उनकी अनुकूलता तथा उपयोगिता जान सकें। प्रत्यक्ष को सामने रख कर शास्त्रों में सम्प्रहित विवेक के प्रकाश में सोचने में नये मार्ग दीखते हैं। जटिलता की स्थिति में वह मन और मस्तिष्क की सक्रियता को शांत करते थे। चेतना शून्यता को प्रमुख कर जैसे वह अन्तर्भूत प्रज्ञा को जाग्रत करते थे। यह प्रज्ञा विश्राम की स्थिति में आकस्मिक स्वर अंत को देती थी—अंतर्ज्ञान, प्रज्ञा। यह स्वर हल बोलता है। समाधान देता है।

भीष्म का योग, द्रष्टा की स्थिति बनाये रखने का प्रयास था। राग नहीं, संवेदना को ऐसा संस्कार देना था, जो अनुभव का माध्यम होकर भी मन को मुक्त रखे। विवेक के वश में रहे।

भीष्म को ऐसा प्रतीत हो रहा था। जैसे हल और आत्मवत्ता दोनों उनके

पास हो गये। वह अब सागर की तरह प्रशात है।

वह उठे। बिना किसी भृत्य को बुलाए स्वय स्नानागार में गये और ठण्डे जल से स्नान किया।

दासो को उनके उठने का पता लग गया। फलादि की व्यवस्था कर उपस्थित हुए।

सूचना मिली कि राजमाता ने स्मरण किया है।

कौन आया था? उन्होंने पूछा।

राजमाता की विशिष्ठ सदेशवाहिका। उसको बताया कि आप विश्राम कर रहे हैं। तब वह कहकर चली गई—जागने पर सदेश दे देना।

अच्छा। भीष्म मुस्कराये जसे मा की आतुरता को स्नेहपूर्ण स्पर्श दे रहे हो।

सूर्य प्रखरता को छोड हल्का हो गया था जसे कोई शिल्पी पत्थर या काष्ठ में मूर्ति उकेरता उकेरता थक गया हो। सुबह-सुबह जसे शिल्पी ताजा, उत्साहभरा, कल्पनाशील होता है वसा ही शायद सूर्य भी होता है। वस ही भीष्म इस समय थे जब राजमाता के पास जा रहे थे। उनका अग-अग स्फूर्त था। मन उमग से पूर्ण, द्वद्व मुक्त था।

पहुचकर सूचना भिजवाई राजमाता को। राजमाता ने तुरत अन्दर बुलवाया। अभिवादन कर भीष्म ने आसन लिया।

मैंने सदेश भिजवाया था, पता चला विश्राम कर रहे थे। सत्यवती ने अपने स्थान पर बठते हुए कहा।

हा। विश्राम भी कर रहा था और साधना भी। भीष्म ने उत्तर दिया।

साधना! भीष्म क्या साधना में अब भी कमर है? तुमने मस्तिष्क मन, इन्द्रिया सबको सस्कारित कर उनमें अद्वितीय सतुलन प्राप्त कर रखा है।

पर यह तीनो अपनी मूल चचलता को छोडते कहा हैं। मेरी स्थिति तो बडी विडम्बनापूर्ण है। उन सारी उत्तेजनाओ के बीच में हू जो भोगेच्छा को प्रश्रय देती हैं।

इसीलिए तो भीष्म भीष्म हैं। औरो के लिए वह वेदो को जानने वाला अजय शासक, मेरे लिए एसा वट-वृक्ष जिसका छतनार पल्लवन तथा छाव दोनो जीवन सरसित करने वाले रहे हैं। सत्यवती मोहित भाव से भीष्म को देख रही थी।

मा, आप अतिशयोक्ति कर रही हैं।

हा श्रद्धा और विश्वास अतिशयोक्ति पर ही ठहरता है। क्या तुम इस चाटु कारिता तो नही समझ रहे हो कि मैं तुमसे तुम्हारे प्रतिकूल स्वीकृति चाहती हू। सत्यवती की दृष्टि में भीष्म को परिचित तजस्विता दीखी लेकिन वह अब

अप्रभावित थे।

आप मुझे इतना सकुचित कूतती है ? भीष्म न दृढ दृष्टि से देखत हुए उत्तर दिया।

नही। यह मरे स्वय के हृदय की दुविधा है। तुमने आज मत्रीपरिष" और विज्ञ पुरोहितो की मभा बुलाई थी।

हा। मैं उनस परामश चाहता था।

सत्यवती के होठा पर छेडती-सी हसी आई —परामश नही चाहत थे, अपने पक्ष के लिए सबल वातावरण बना रहे थ।

भीष्म की हसी भी नही रुक सकी—राजमाता और उसके पुत्र के बीच म सदराजनीति तो पतडे नही ले रही ?

तुम्हारा उत्तर तुम्हार साथ सलग्न कर दू। यही, कि क्या तुम मुझे इतना सिकुडा समझत हो ? क्या मैं अपना ममता पर स इतना विश्वास खो चुकी हू कि मान लू तुम मेरे आदेश को मानने से इकार कर दोगे ? सत्यवती ने गहरा साम अदर भरा जसे गव अभिव्यक्त कर रही हो।

मैं जानता हू आप अनुचित आदेश नही देंगी। भीष्म न कहा।

तुम्हारे लिए अनुचित, मरे और प्रजा के लिए मगलकारी हो सकता हो।

दूरदर्शिता, निश्चय की कसौटी होनी चाहिए। यदि ऐसा समाधान हो जो किसी के आदर्शों की वलि न ले, और दीघकाल म ज्यादा मगलकारी हो तो उसे अपनाना चाहिए।

अम्बिका और अम्बालिक स मैं मिली थी। भीष्म, यदि तुम उनकी दशा देखो, तो तुम भी विचलित हो जाओ। अम्बालिका सामाय हो ही नही पा रही है। कैसा भोला सौम्य है बिल्कुल कोमल हृदय। जितना हम उत्तराधिकार क सम्बध म सोचना चाहिए उतना उनक भविष्य पर भी सोचना चाहिए।

मैंने इस समस्या पर पर्याप्त विचार किया आपने मर सामने जो प्रस्ताव रखा वह सुरक्षित हो सकता है परन्तु कुरुवश के हित म नही हो सकता। मैंने अम्बिका और अम्बालिका को पुत्री सम माना है—क्या यह उचित होगा कि मैं उह स्वीकार करू ? जिस ब्रह्मचय का मैंने प्रण किया था सिंहासन स दूर रहने की शपथ खाई थी—उसकी सच्चाई पर रहत हुए भी मैंने इन बालिकाओ के स्वयवर म विचित्र तान सुने थ। राजाओ ने मेरी उपस्थिति को स्वीकार नही किया था। क्रोध और आवश म युद्ध करन को तत्पर थे। बहुतो ने वार कर दिया था। जब मैंने राजकुमारियो का विवाह यहा विचित्रवीय से किया तब उनको मरे प्रयोजन का पता लगा। उनम स बहुतो न क्षमा मागने का सदेश भेजा। सोचिय, पुन वह एस समाचार को सुनकर, हतविश्वास नही होंगे ? इसम मेरी छवि को हानि है। राजनीतिक हानि भी हो सकती है।

तब तुम जो धर्म सम्मत समझो वही करो। लेकिन भीष्म, मेरी एक जिज्ञासा का उत्तर दे सकोगे। सत्यवती अब खड़ी हो गई थी। भावों का द्वंद्व उनके चेहरे पर स्पष्ट हो गया था।

भीष्म ने धैर्यपूर्वक कहा—पूछिए।

मेरे पिता ने तुमसे शपथ ली। तुमने पिता के कारण और कुरुवंश के हित के कारण उन शपथों को वज्र क्षत्रियों के सामने लिया। तुमने जो त्याग किया उसका बोझ किस पर है? किसने तुम्हारे भविष्य को रेखाओं से कीलित किया?

भीष्म चुप रहे।

मैंने। और एक सत्य कटु सत्य स्वीकारोगे? मेरे भीष्म तुम थे, या तुम्हारे पिता शान्तनु?

भीष्म चौंक पड़े। यकायक मुँह से निकल गया—मां यह पाप है। घोर पाप।

क्या? सम आयु का होना? सत्यवती के शब्द दोहरी धार लेते जा रहे थे।

भीष्म! मैंने तथ्य रखा है, यह मत समझो कि मेरी कामना बसी थी उस समय। तुम रूपवान राजकुमार अवश्य थे, पर तुम्हारी एक-के-बाद-एक शपथ, मेरी श्रद्धा का विषय बन गई। उसके बाद तुमने अपने जीवन को कड़े संयम, साधना और राज्य व्यवस्था में लगा लिया। तुमने मुझे चित्रांगद, विचित्रवीर्य, को यथा सम्बन्ध अपने मन की भावना दी। मेरी ममता, तुम्हें लेकर बोझिल और अतृप्त नहीं रही बल्कि अपने को अपराधी मानने लगी। वह अब भी मानती है। मैं कैसे इस अभिशाप से मुक्त हो, बता सकते हो?

भीष्म, जो अब तक दृढ़ और आत्मबल से संयुक्त थे, यकायक इस प्रश्न से हिल उठे। वह माँ की उन बड़ी बड़ी आंखों को देखने लगे जिनमें असहाय ममता छलक उठी थी। वह पल भर के लिए अपने श्वेत बाल और परिपक्व उम्र को भूल गये। राजमाता का यह कौन-सा रूप था!

वह सम्भले। फिर दृढ़ हुए। मेरे पास इसका उत्तर है, राजमाता। ममता अपराधी तब होती है जब उसकी नीयत विकृत हो। वह लोभ ईर्ष्या, या भोगेच्छा से परिचालित रही हो। आप ऐसी नहीं रहीं। मैंने स्वार्थ या कपट कभी नहीं पाया आपमें। इसके बाद भीष्म बोलते-बोलते रुक गये। चिन्तन में इस तरह हो गये, जैसे सदन से अनुपस्थित हो गए।

सत्यवती आश्चर्यचकित उन्हें देखती रहीं।

भीष्म तुम सहज नहीं लगते मुझे। क्या? उन्होंने पूछा।

मैं विचलित था, लेकिन अब नहीं हूँ।

अनुपस्थित होकर क्या सोचने लगे थे?

यही कि क्या यह सच है कि मैं अभिशप्त । मुनि वसिष्ठ ने श्राप दिया था कि मृत्युलोक में रहकर आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। यह आपका श्राप है,

क्या यह मानूं ? तब तो आपकी ममता किसी भी स्थिति की जिम्मेदार नहीं है।

तुम मुझे संतुष्ट करने के लिए तर्क दे रहे हो। क्या तुम विश्वास करते हो कि अभिशप्त हो ?

नहीं। पर मैं यही नहीं सोच पाता, तपस्या के साथ क्रोध क्यों ? श्राप देने की मानसिकता क्या सिद्ध शक्ति का दुरुपयोग नहीं है ? बात-बात में बदला लेने के लिए श्राप बोलने वाला ऋषि अन्तर से स्वस्थ कम हुआ ? मैं जीवन के माध्यम से मृत्यु तक की यात्रा को समझना चाहता हूं। भीष्म गम्भीर हो गये।

सत्यवती ऊब गई। उसने सोचा था आज कैसा भी निर्णय निकालने में सफल हो जायेगी, लेकिन लगता है रुकावट हटेगी नहीं। उसने संकेत से परिचारिका को बुलाया और कहा—अम्बिका और अम्बालिका को बुलाओ कि राजमाता बुला रही हैं।

भीष्म के चाबुक-सा लगा। वह चौंके। उन्हें क्यों बुला रही हैं राजमाता ?

इसलिए कि तुम जान सको मैं किन किन पीड़ाओं को सहेजे बैठी हूं। तुम समस्या को अपने केन्द्र से देख रहे हो भीष्म। वास्तविकता के सामने होओ बुद्धि के बदले मन सोचने लगेगा।

सत्यवती का जस अंतिम हथियार था जिसे उसने प्रयोग किया। हथियार लक्ष्यभेदी साबित हुआ। भीष्म फिर एक बार उद्वेग में आए। वह आसन छोड़कर खड़े हो गये।

परिचारिका से कहिये लौट जाये। अम्बिका या अम्बालिका नहीं आयेंगी यहां।

जाओ ! सत्यवती ने हाथ से इशारा किया। परिचारिका चली गई।

आप स्थिर होकर अपने सिंहासन पर बैठ जाइये। मैं बहुत बड़ी दुविधा में था राजमाता कि वह विधि बताऊं या न बताऊं जिससे हल तो निकल आता है परन्तु

परन्तु क्या ? सत्यवती ने सिंहासन पर ठीक से बैठते हुए पूछा।

नारी की गरिमा खण्डित होती है। वह पुरुष की सम्पत्ति का दर्जा पा लेती है।

सत्यवती के चेहरे पर तीखी व्यंग्यभरी मुस्कराहट उभरी—भीष्म, क्या पूरे आध्यात्मशास्त्र और नीतिशास्त्र में नारी को पुरुष की सम्पत्ति नहीं माना गया है ? उसे भोग्या के अलावा और कोई दर्जा मिला है ? गरिमा तब खण्डित होती है जब स्वायत्तता प्राप्त हो। क्या प्राप्त है ?

लेकिन भीष्म जस अब राजमाता से बात नहीं कर रहे थे किसी अतीत को उजागर कर रहे थे।

राजमाता, पूर्वकाल में जमदग्नि पुत्र परशुराम ने हैहय देश के राजा

कार्तवीर्यार्जुन की विकट शक्ति को नष्ट किया था, क्योंकि हैहय पति प्रजा का शासक बन गया था। उस क्षत्री राज के कारण परशुराम ने जितने क्षत्रियराज थे उन सब पर हमला किया। उन पर विजय प्राप्त की। पर महासंहार का प्रभाव चतुर्मुख होता है। आर्थिक विपन्नता, धर्म की हानि, कृषि व व्यापार का नष्ट होना। उससे ज्यादा एक हानि ऐसी होती है जो पूर्ति नहीं पाती। युद्ध में पुरुष मरते हैं—स्त्रियां विधवा होती हैं, बच्चे अनाथ होते हैं। उस काल में क्षत्रियों की असंख्य पत्नियां विधवा हुईं। भटक गई। क्या अटक रहे हो भीष्म पूर्वकाल में। आओ, मैं पुन: कह रही हूं विश्राम करो। छोड़ दो उन दो विधवाओं को उनके भाग्य पर! इन्हीं की बहिन अम्बा ने जब शाल्व राज से नकार जाने पर तुमसे कहा था—तुम मुझे स्वीकार करो तुम स्वयंवर से हरण कर लाये थे। उस समय भी तुम निरुत्तर हुए थे।

मुझे जो सुझाव देना है उसे सुन लीजिए उसके बाद निर्णय आपके हाथ में होगा। परशुराम द्वारा क्षत्रियों के संहार के बाद उनकी विधवाओं के लिए एक छूट दी गई। वेदों के पारंगत ब्राह्मणों के संसर्ग से संतानोत्पत्ति हो सकती थी। संतान उस नारी के पति की मानी जाती थी क्योंकि वह उसका क्षेत्र थी। दीर्घतमा ने राजा बलि की पत्नी सुदेष्णा को संतान दी। किन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा अम्बालिका अम्बिका संतान प्राप्त कर सकती हैं। भीष्म हुआ होगा ऐसा। धर्म सम्मत भी होगा। लेकिन लेकिन मैं सोच नहीं सकती कि अम्बिका अम्बालिका कैसे स्वीकृति देंगी। अभी विचित्रवीर्य की स्मृतियां उनसे जुड़ी हुई हैं। सत्यवती इस सम्भावना को पचा नहीं सकी। वही पूर्वव्यंग्य फिर उनके चेहरे पर प्रकट हुआ। लेकिन वह चुप रही।

मैं अब चलूं। आप चाहें तो किन पुरोहितों को बुलाकर उनकी राय ले लें। हम इस तरह से सिंहासन का उत्तराधिकारी पा सकेंगे।

मैं सोचूंगी। ब्राह्मणों से भी स्वीकृति लेनी होगी। राजमाता गम्भीरता में हो गई। भीष्म को अनुमान लग गया, इस नकली गम्भीरता के पृष्ठ में हलचल युक्त नारी मन है।

फिर भीष्म ने देखा राजमाता के चेहरे पर यकायक उदासी छा गई। वह धुंधली-सी होने लगी।

मैं जा रहा हूं मां। शायद अब मुझे आने की आवश्यकता नहीं होगी। भीष्म जाने को मुड़े।

भीष्म, मैं इस समय सोचने की स्थिति में नहीं रही हूं। धार्मिक स्वीकृति धार्मिक परम्परा, यद्यपि समाज को नीति और व्यवस्था देती हैं—लेकिन वह व्यक्ति की इच्छा की गुंजाइश रखती हैं। अपनी स्वतंत्रता का उपयोग व्यक्ति करता है कभी बलि चढ़कर कभी विद्रोही बनकर। तुम्हारी आवश्यकता मुझे

डेगी। अंतिम निर्णय तुम्हारी स्वीकृति के साथ होगा।

भीष्म अभिवादन कर चलने लगे। सत्यवती उनके साथ चलने को खडी हुई।

आप आराम करिये। भीष्म ने कहा।

सध्या हो आई है। मैं उद्यान में घूमने जाऊंगी।

कक्ष से निकलते ही परिचारिकाएं साथ हो लीं। सत्यवती उद्यान की तरफ चली गई जबकि भीष्म सीधे मुख्य द्वार की तरफ जा रहे थे।

झुटपुटा अंधेरा धीरे धीरे घिर आया, जब तक भीष्म अपने आश्रम तुल्य महल पर आए।

(५)

सफेद चिटटे वस्त्र में अम्बिका कमलिनी-सी अप्सरा के समान युवा सहेलियों के बीच चल रही थी। वक्षों की हरियाली के बीच महल का यह वह भाग था जहां हिरन, मोर, विभिन्न प्रकार के पक्षी मुक्त वास करते थे। एक प्राकृतिक झील थी जिसमें विहार के लिए छोटी नावें थीं।

नाव तैयार है रानीजी चलेंगी? दासी ने पूछा।

अम्बिका हिरन के बच्चे को गोदी में लिए उसके चिकने रोओं पर हाथ फेर रही थी। उसकी थुथनी को उंगलियों से घेरकर उसकी गोल आंखों से अपनी आंखों को चंचल कर रही थी। वह मग्न थी।

नाव तैयार है रानी जी। दासी ने फिर दोहराया।

कितना प्यारा है! कैसी परिचित दृष्टि से देख रहा है।

आपकी सुंदरता पर रीझ रहा है। दासी ने कहा।

हुश। यह क्या रीझेगा। कौतूहल में है कि हिरनी और रानी की गोद की गरमास एक-सी! गरमास तो लाड प्यार की है। चपत मारकर देखिये कुलबुला उठेगा छुटकारे के लिए। दासी ने हंसकर कहा।

अम्बिका ने अपनी सीपी-सी आंख उठाई, बोली—अरी, तू तो बड़ी अकल मंदी की बात करती है।

मेरा चम्पू भी ऐसा करता है। मैं सुग्गे से बात करती हूं वह होड़ में घुटना चलकर आता है सहारे से खड़ा होकर छोटी छोटी उंगलियां मुंह पर रख देता है। उससे बात करो सुग्गे से नहीं।

हां! हां। अम्बिका ने उत्साह में हिरन के बच्चे की थुथनी चूम लिया।

चलिये नाव तैयार है। अभी ठंडी हवा चल रही है। धूप निकल आई फिर घूम नहीं पायेंगी।

अम्बालिका का इन्तजार कर रही थी। वह आई नहीं।

वह कभी की आ गई। दूसरी तरफ भ्रमण कर रही हैं।

भ्रमण कर रही हैं! मुझे बताया नहीं?

उनको बुलाने दूसरी दासी गई है।

चलो। अम्बिका ने शावक को छोड दिया। वह कुलाचे भरता भाग गया। तब दूसरी दासी आई—छोटी रानी कह रही हैं, वह झील नहीं जायेंगी।

क्या नहा जाएगी ? चलो मैं चलती हू।

दासियों के साथ वह उस स्थान पर पहुची जहा अम्बालिका घूम रही थी। अम्बालिका के हाथ मे हरी टहनी थी जिस पर पीले फूल के गुच्छे खिले थे।

मैं तेरा इतजार कर रही थी, तू यहा घूम रही है।

इधर निकल आई—चिडिया का कलरव भला लगा था।

चल नाव तयार है। झील म घूम आयें।

अब समय कहा है। सूरज ऊपर आ गया है। अम्बालिका बोली।

बादल भी तो हैं। धूप तेज नही होगी। ज्यादा नही, थोडी देर घूम लेंगे।

जी नही है।

जी बनाने से बनता है। चल ! अम्बिका ने अम्बालिका का हाथ पकड लिया।

अभी एक घटना हुई है अम्बिका। मैं उस पेड के सहारे खडी, मुह उठाए, रग बिरगी चिडियाओ का डाल डाल उडना देख रही थी। मैं एकाग्र थी कि परो की उगलियो मे सुरसुराहट-सी हुई। दूसरी तरफ देखा तो सफेद और भूरे चकत्तो का एक खरगोश उगलिया चाट रहा था। बडा सुन्दर था। बिना हिले डुले उसे देखती रही। उसका स्पश जो गुदगुदी कर रहा था उस पर सयम ले रही थी। फिर मुझसे रहा नही गया। मैं झुकी उसे पकडने वह झाडी की तरफ दौडा। मैं पहुची वहा। वह बिल से मुह निकाले हुए था। मैंने हाथ डाला झाडी मे, वह अन्दर घुस गया। यह फूलो की डाली टूट गई। देख कैसी सुन्दर है। अम्बालिका ने वह डाली अम्बिका को दी।

हा सुन्दर है। चल। अम्बिका ने डाली गिराते हुए कहा।

गिराती क्या हो ? उसने झुककर दोबारा उठा लिया।

देर मत कर। उसने बाह मे बाह फसा ली और अम्बालिका को लेकर झील की तरफ चल दी। नवका विहार मे यद्यपि कई दासिया साथ थी और हर दासी से चुहल तथा अठखेलिया की आवाज आ रही थी, पर अम्बालिका जसे ध्यान मे कही और उलझी हुई थी। वह जल के विस्तार को देख रही थी।

देख बगुला एक टाग समेटे कसी गदन घुमा रहा है। अम्बिका ने इशारा करके दिखाया। मछली की ताक मे है। मछली देखते ही चोंच डुबा देगा पानी म। फिर मछली छटपटाती रहेगी।

तू क्या छटपटा रही है ? हस कर ! यह उदासी मन को किसी लायक नही छोडेगी अम्बालिका। अम्बिका रोक नही पाई अपने को।

झूठी हसी से अपने को धोखा देकर बहलाने से क्या फायदा। अन्दर सूनापन हो तो राग कसे बने ? अम्बालिका ने हाथ की डाल का पानी की तरफ झुका

दिया। डाल नाव की गति के साथ पानी को काटने लगी।

मैं तुझसे हार गई।

या अपने स ?

अपने को भुलाना चाहती हू तेरी उग्रता वैसा भी नही करन देती।

सच्चाई से पलायन, सच्चाई को हटा तो नही देता। तुम्ह पता नही कि हमारी भावनाओ क बजाय किस बात की चिंता की जा रही है ?

पता है।

फिर भी विद्रोह नही जागता ?

नही।

क्या ?

अम्बा ने किया तो क्या पाया ? शाल्वराज क पास गहा से गई, उसने भी स्वीकार नही किया। प्रेम और वचन स ज्यादा पराजय का अह। क्योंकि भीष्म पितामह से हार गया था इसलिए मेजे जान पर भी नही अपनाया।

और राजमाता उन्ही भीष्म से आग्रह कर रही हैं कि वह हमे अपनायें। हम उत्तराधिकारी दें। तुम सहन कर सकोगी ? अम्बालिका ने अब अम्बिका को प्रश्नवती दृष्टि से देखा। उसके हाथ की डाल यकायक छूट गई और जल की सतह पर पीछे रह गई।

अभी पितामह धम और प्रतिज्ञा की दुहाई दे रहे है।

कल वह बाध्य भी किये जा सकत है। हम क्या है ? पिंजड़े मे पडी मना। यही है रानी होने की सजा।

तू चाहती क्या है ? अम्बिका ने पूछा।

अपनी तरह से जीना। धम के नाम पर बलि चढना नही चाहती। इच्छा के विरुद्ध किसी भी सुझाव को स्वीकार नही करूगी, चाह

धीरे मे बोल। राजमाता म किसी ने कह दिया अम्बिका भयभीत हो गई।

मैं स्वय कहूगी अगर उन्होने बाध्य किया।

चुप हो जा। मुझे नही पता था तू इस तरह का विद्रोह पाल रही है। तू अपने को सकट म डालेगी, मुझे भी।

तुम स्वीकार कर लेना हर निणय मैं तुम्हे रोकूगी नही। लेकिन नही चाहूगी तुम बडी बहन का दबाव देकर मुझे बाध्य करो। अम्बालिका ने इस तरह निणय सुना दिया, जैसे सब वह पहले से सोचे हुए हो।

अम्बिका की सारी खुशी हवा हो गई। दोनो के बीच म जसे विषय बिखर कर छितर गया। अम्बालिका जल के विस्तार को देखते हुए अपने म हो गई। अब अम्बिका भी स्तब्ध थी। उस थोडी देर बाद ध्यान आया। उसन नाव से रही दासी को सम्बोधित कर कहा—हमारी बातें तुम्ही तक रह, याद रखना।

पहली बार सन्देह क्यों रानी जी ? दासी ने प्रश्न किया।
मैं स्वय भयभीत हो गई हू। अम्बिका ने स्वीकार किया।
अम्बालिका मात्र मुस्करा कर रह गई।
नवका विहार म जस विपयय भाव घुल गया।

(६)

समय टलता रहा। जितनी साधारण तथा सहज हल-युक्त समस्या लग रही थी उतनी जटिल हो गई थी। अपनी अपनी इच्छाओं और अह का लकर सब स्थितियां लिए हुए थे। राजमहल का अत पुर खासा तनाव युक्त था। मर्यादाओं के पालन की सतह के नीचे अनोखी हलचल थी। गुप्तचर दासियां अपनी स्वामिनी की भलो बनने के लिए हो रहे विचारों को सचारित करती रहती थी। प्रजा तथा दूरदराज के राज्यों म इस बात की चर्चा बढ़न लगी थी कि कुरुवंश सकट म आ गया है। मित्र राज्य चिन्तित थे वरी राज्य प्रसन्न। लेकिन अभी भी भीष्म की अद्वितीय वीरता का दबदबा स्थिर था। उनके जाते रहते किसी का साहस नही था कि कल्पना म भी राज्य को अव्यवस्थित करने की सोच सके।

भीष्म को सिंहासन स्वीकार कर लेना चाहिए मंत्रियों की एसी राय था, जिस व चर्चा म अभिव्यक्त करत थ।

कि हीं पुरोहितों के सदेश वाहक द्वैपायन ऋषि व्यास के आश्रम पहुच चुके थे कुरुवंश सकट पर राय लेने। सूचना मिली थी, व्यास पर्वतों की ओर साधना करने गये हैं। आशा की क्षीण किरण भी आहत हो गई थी।

सत्यवती को भी सुझाया गया कि ऐसी रुकावट की स्थिति म, व्यास ही उचित तथा धर्मानुकूल सुझाव द सकते हैं।

सत्यवती निजी सकट म पड़ गई थी। एक रहस्यमय अतीत विस्मृति की तहों को भेदता हुआ चेतना क्षण म प्रकट हो गया था। वह रहस्य उसका था और गुप्त था। क्या मर्यादा को किनारे रख भीष्म को वह सत्य बताना होगा जिस उसने स्वय भयानक स्वप्न की तरह भूलना चाहा ? राजरानी से राजमाता की यात्रा पूरी करने के बाद आज प्रौढ़ावस्था म उस वह स्वीकार करना पड़ेगा जो उसके कौमय भग की दुघटना स सम्बन्धित है ? भीष्म उस घटना को किस रूप म समझेंगे ? जिस श्रद्धा और मान भक्ति स आज वह मुझे देखत हैं उस दृष्टि में गिरावट तो नही आयगी ?

क्या सुरक्षित नही होगा कि मैं उन पर निणय छोड़ दू वह किसी श्रेष्ठ ऋषि को आमंत्रित कर लें जो अम्बिका और अम्बालिका को सन्तानवती

करे।

सत्यवती स्वयं में उलझी किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पा रही थी। सुरंगुराहट के रूप में उसके पास यह सूचना भी आ चुकी थी कि अम्बालिका बहुत अन्यमनस्क रहती है। आयु में छोटी होने के कारण वह अम्बिका की अपेक्षा तीव्र आवेश वाली तथा जिद्दी है, इसका भी उसे पता था।

सत्यवती के ध्यान में उन क्षणों की भयभीत स्थिति सजीव हो उठती थी जब वह महर्षि पराशर को नाव में अकेली यमुना पार करवा रही थी और पराशर कामार्त हो अनियंत्रित हो गये थे।

सत्यवती कितनी ही रात्रि उनमनी व अनिर्णीत उहापोह की मझधार में फंसी रही। फिर एकाएक, अपना ही अतिक्रमण कर इस निश्चय पर पहुंच गई कि वह भीष्म को सब कुछ बताकर अपनी इच्छा प्रकट कर देगी। श्रेष्ठ ब्राह्मण का ही प्रश्न है, तब अपने रक्त को महत्त्व क्या नहीं दिया जाये।

अब वह दृढ़ थी। एक प्रात उन्होंने भीष्म के पास संदेश भिजवा दिया— राजमाता ने स्मरण किया है, वह आवश्यक मंत्रणा करना चाहती हैं।

भीष्म तत्काल उपस्थित हो गये। सत्यवती ने दासियों और परिचारिकाओं को हटा दिया। कक्ष में मात्र वह और भीष्म थे।

मेरे बुलाने का मंतव्य समझ गये होगे। उन्होंने स्थान लेते हुए कहा।

अनुमान है। भीष्म ने उत्तर दिया।

पुरोहित परिषद और प्रजा में जिस प्रकार की चर्चाएं हो रही हैं, वह भी तुम तक पहुंच रही होंगी।

ऐसी स्थिति में अनुकूल प्रतिकूल चर्चाएं होती हैं। पर मैं जानता हूं अभी किसी का साहस नहीं है जो कुरु राज्य की तरफ टेढ़ी दृष्टि रखे।

तुम्हारे रहते ऐसा नहीं हो सकता, मैं आश्वस्त हूं। लेकिन उत्तराधिकार की समस्या को अनिश्चित नहीं रखा जा सकता।

राजमाता यही सोचती हैं। मैंने उपाय बताया था, आपने स्वीकार नहीं किया।

तुम्हारे उपाय को गुप्त रखा जायगा या विद्वान ब्राह्मणों की परिषद से स्वीकृति लेनी होगी? सत्यवती ने भोलेपन से पूछा।

भीष्म राजमाता का चेहरा देखने लगे। बोले, अनभिज्ञता की बात कर रही हैं राजमाता! गुप्त रखे जाने पर होने वाली संतान जारज मानी जायेगी और अम्बिका, अम्बालिका दुराचारिणी। स्वीकृति लेनी होगी, और यह भी सिद्ध करना होगा कि ऐसा पूर्व में होता आया है। यह आपद स्थिति का विकल्प है न कि धार्मिक छूट।

भीष्म तुम धर्म और वेदों के ज्ञाता हो। मैं तुम्हारे सामने एक कथा का

उदाहरण रखती हूं। चाहूंगी तुम निर्णय दो कि वह चरित्रहीन हुई या सत्यवती रही।

यमुना के किनारे एक मत्स्य-कन्या आने वाले यात्रियों को धर्मार्थ डोंगी में पार उतारा करती थी। एक बार एक ऋषि तीर्थयात्रा करते हुए यमुना तीरे आये और उस कन्या से यमुना नदी पार करवाने के लिए कहा। कन्या ने तेजस्वी ऋषि को पार करवाना अपना सौभाग्य समझा। जब नाव बीच धारा में थी तब उसने पाया कि ऋषि कामोत्तेजना से अवश हो रहे हैं। कन्या भयभीत थी, ऋषि बाध्य कर रहे थे कि वह सहर्ष समर्पण कर दे। उसके कौमार्य की चिंता ऋषि को नहीं थी। ऋषि के तेज का प्रभाव, रुष्ट होने पर श्राप दिए जाने का डर, उस कन्या को हतोत्साह कर चुका था। ऋषि ने उस मत्स्य-गंधा कन्या को सुगंधित किया और उसके साथ संसर्ग किया। उसके गर्भ रहा, जिसे उसने यमुना के बीच एक द्वीप में रहकर परिपक्वता दी और पुत्र को जन्म दिया। पर यह उसने गुप्त रखा। पुत्र को द्वीप पर छोड़ दिया। क्या वह कन्या दुराचारिणी हुई जिसके साथ

वह कन्या बाद में महाराजा शान्तनु की रानी और देवव्रत को भीष्म बनाने वाली हुई। भीष्म तुरन्त बोले। राजमाता ऐसा प्रश्न पूछकर क्या परखना चाहती हैं?

राजमाता आश्चर्य से भीष्म को देखने लगीं। भीष्म पूर्णतः शान्त थे। उनका चेहरा हमेशा की तरह शान्त और दैदिप्यमान था।

आश्चर्य हटा तो सम्मोहन सत्यवती की आंखों में तैर आया। वह अपनी उलझन में जाने किस किस प्रतिक्रिया की कल्पना किए हुए थी। पर भीष्म की प्रतिक्रिया संयमी ऋषि की प्रतिक्रिया थी।

भीष्म तुम अंतर्यामी हो? उन्होंने पूछा।

नहीं! पर यथाशक्ति प्रयत्न करता आया हूं कि मन स्थिर और निर्लिप्त रहे। विवेक पक्षों से परे होकर न्याय सम्मत रहे सदा। ब्रह्मचर्य यही तो है। मोहों और तृष्णाओं से ऊपर उठना। मेरा मन कुरु वंश का संरक्षण है।

सत्यवती, जो कुछ क्षणों पूर्व अपने को निःशब्द-सी पा रही थी बोली—मैं दुविधा में थी कि पुत्र के सामने मुझे अपने विवाह के पहले की दुर्घटना को स्वीकार करते समय लज्जित होना पड़ेगा। लेकिन

राजमाता मुख्य बात कहें जिसके लिए बुलाया है। भीष्म जैसे सत्यवती को प्रोत्साहित कर रहे थे। अपेक्षित प्रभाव पड़ा और सत्यवती बोलीं।

वह पुत्र जिसे मैंने द्वीप पर छोड़ा था कृष्ण द्वैपायन है। वेदों के मर्मज्ञ परिचित ऋषि। मेरे कोख से जन्म होने के कारण वह भी तुम्हारे तथा विचित्र वीर्य के भाई हुए। उनसे योग्य और श्रेष्ठ रक्त वाला ब्राह्मण कौन हो सकता

है। कदाचित मेरे आग्रह से वह अम्बिका तथा अम्बालिका को संतान प्रदान करने के लिए राजी हो जायें।

यह उत्तमतर होगा। द्वपायन की प्रतिष्ठा अद्वितीय है। उन्हें निमंत्रण भेज कर सादर बुलवाना चाहिये। परन्तु सूचना है कि वह तपस्या के लिए हिम प्रदेश की तरफ गये हुए हैं। भीष्म ने कहा।

क्या तुम्हें भी यह सूचना है? सत्यवती के लिए फिर आश्चर्य था।

राजमाता, राज्य संरक्षण का उत्तरदायित्व प्रपंचों से परिपूर्ण होता है। सतर्कता के साथ बहुमुखी और तीक्ष्ण-दर्शी होना होता है। फिर अभी तो इस असामान्य स्थिति से गुजर रहे हैं। असामान्य सावधानी रखनी ही होगी। भीष्म ने मुस्कराते हुए कहा।

तुमने मेरे प्रस्ताव से सहमति दिखायी, मेरा एक बोझ हल्का हुआ। मैं चाहती थी कि यदि नियोग अनिवार्य हो गया है तो वंश के अनुकूल प्रतिष्ठावान ब्राह्मण उपलब्ध हो। रक्त की पवित्रता बच सके तो और अच्छा हो। पर अभी भी समस्या इतनी सहज प्रतीत नहीं होती। सत्यवती के मुख पर फिर चिंता छा गयी।

क्या द्वपायन हमारे निवेदन को स्वीकार नहीं करेंगे? आपको संदेह है। भीष्म ने पूछा।

मैं आश्वस्त हूं उन्हें मना लूंगी। पर धर्म की इस व्यवस्था को अम्बिका और अम्बालिका स्वीकार कर लें यह संदिग्ध है।

क्या? क्या वे संतान प्राप्ति नहीं चाहतीं। कुरुवंश और राजाज्ञा का पालन करना उनकी बाध्यता है। हम अपने मन और इच्छा में इतने स्वतंत्र नहीं हो सकते कि मर्यादाओं की अवहेलना करें। मैं जानता हूं काशीराज की पुत्रियां उच्छृंखल और स्वतंत्र प्रकृति की हैं। मैं भी उनके व्यंग्य और और उद्दंडता को सह चुका हूं। पर स्वतंत्रता उतनी ही सम्य हो सकती है जितनी हानि न करे। भीष्म यकायक कठोर हो गये। आप उनको समझान-बुझाने का प्रयास करिये। उनकी मानसिकता अनुकूल बनाने का यत्न करिये। पुरोहित परिषद की आज्ञा की अवहेलना दण्डनीय हो सकती है।

राजमाता भीष्म के इस आवेश के लिए तैयार नहीं थी। वह स्वयं हक्की बक्की रह गई। भीष्म क्षण भर में शांत हो गये। शायद अपने आवेश के औचित्य का ध्यान उन्हें हो आया। सामान्य होते हुए बोले—आप राजमाता हैं। मुझे विश्वास है अंतःपुर से ऐसी कोई समस्या नहीं उठेगी जो हमारी परेशानियां बढ़ाये। मुझे आज्ञा है।

हां! मैंने इस मंत्रणा को नितांत गुप्त रखा है। द्वपायन के लौटने तक प्रतीक्षा करनी होगी। भीष्म मुझ यह कहने दो कि मैं तुम पर अत्यधिक, मानसिक

नैतिक हर रूप में आधारित है, अपनी सहमति असहमति के बावजूद। सत्यवती लगभग भावुक हो उठी थी

भीष्म ने झुककर मां को अभिवादन किया और आज्ञा लेकर प्रस्थान किया।

(७)

हिम पात के आरम्भ की सम्भावना के साथ महर्षि द्वैपायन अपने आश्रम में आये। सरस्वती नदी के पास उनका रम्य आश्रम था जो कुंजों और हरित वृक्षों के कारण दूर से अपनी छटा दिखाता था। वदपाठी ब्रह्मचारी एवं अनेक मुनि इस प्रसिद्ध आश्रम में अध्ययन करने आते थे। स्थान-स्थान पर यज्ञशालाएं बनी थीं। प्रातः स्नानादि के बाद मंत्रोच्चारण आरम्भ होता था। हवन सामग्री की सुगंध से चारों तरफ का वातावरण गंध युक्त हो जाता था जो अध्ययन एवं साधना के लिए मन मस्तिष्क को ग्राहक बनाता था।

कृष्ण द्वैपायन का आश्रम साधारण साधना गृह या गुरुकुल नहीं था, बल्कि वह वैदिक विद्या के अध्ययन का प्रसिद्ध केन्द्र था। इस 'चरण' में वेद ब्राह्मण, सूत्र आदि का क्रमानिक अध्ययन अध्यापन चल रहा था। पैल ऋग्वेद का, जैमिनी सामवेद का, वैशम्पायन, यजुर्वेद का तथा सुमन्त, अथर्ववेद का विशेष तौर पर अध्ययन कर रहे थे।

पराशर पुत्र द्वैपायन के आश्रम में आते ही व्यवस्था पहले से अधिक चुस्त हो गई उनका कृषकाय शरीर श्याम रंग तप तथा गूढ़ अध्ययन के कारण गाम्भीर्य और तेजस्विता से चमकता चेहरा, ब्रह्मचारियों को प्रेरित करता था। हिम प्रदेश से लौटकर आश्रम आने की सूचना दूर दूर के राजाओं तक पहुंच जाती थी। दर्शनार्थियों और आशीर्वाद की कामना करने वालों का तांता लग जाता था।

रात्रि में अपने दो रूपों का वैभव एक साथ दिखाया था। आश्रम के आचार्यों एवं ब्रह्मचारियों को यज्ञ शालाओं पशुशालाओं तथा अन्न भंडारण को रात में अपनी कुटिया से निकलकर देखने जाना पड़ता था—सब सुरक्षित तथा व्यवस्थित हैं। द्वैपायन स्वयं पशुशाला की तरफ आये थे।

प्रकृति अपने ऋतु चक्र को किस सूक्ष्मता से सम्पन्न करती चलती है इसका आभास तब होता है जब हम उसके प्रभाव को महसूस करते हैं—जितना उन्मुक्त और प्रशांत वातावरण उतनी प्रखर ग्राह्यता।

मध्य रात्रि में द्वैपायन की आंख खुल गई। अभी भी मानसिकता पर पर्वतीय जलवायु उसके सौंदर्य का वैभव छाया हुआ था। तपस्या के श्रम में अंतर्लीन मन कभी कभी निद्रा में भी समाधि-सा ऐश्वर्य उत्पन्न कर देता था। पूरी की-पूरी सृष्टि प्रकट हो जाती थी जिस पर किसी तेजस्वी शून्य से प्रकाश बरसता सा प्रतीत होता था। द्वैपायन निद्रा में इसी ऐश्वर्य को तटस्थ अस्तित्व की इकाई

बने देख रह थे—मष्टि भी थी, तेजस्वी शू य भी था, उनकी प्रतिछाया दष्टा वली भी। पूरा परिदृश्य स्वप्न म था। तभी उहोने देखा भयकर हिमपात प्रारम्भ हुआ। उनके दखत देखत पवतीय पदश उसकी ऊंची-नीची चोटिया, श्वेत हिम स ढक गइ। उह प्रतीत हुआ वह स्वय आधे हिम मे धस गय। हिम की पत बढती गई। गदन तक आ गई। दष्टि उस शू य को खोज रही थी जिसका प्रकाश दिख रहा था। पर तु वह प्रकाश बिदु ओझल हो गया था। हिमपात बढता गया। उ ही क्षणो म उनकी आख खुल गई।

स्वप्न और यथाथ क बीच कुछ पलो क लिए वह इस तरह लेटे रहे जस *अधचेतना की अनुभूति म कोइ दहधारी आकाश और धरती के बीच उड रहा* हो—बल्कि तर रहा हो। तब वह पूण स्थिति भग म आय। बठे। उस दीप को देखने लग जो अब भी अपनी मध्यम ज्योति म जल रहा था। लौ स्थिर थी।

वह उठे, कुटिया स बाहर आय। आकाश की तरफ देखा जिस पर इधर-उधर तारे छिटक थे। वह और खुल स्थान पर पहुच। देखा घटा का गहरापन उपस्थित था।

निद्रा, स्वप्न, चेतना, प्रकाश बिदु। कुटी म जलती अकम्प दीप शिखा। बाहर छिटके तार। बढती हुई कलामय घटा।

कसा मिश्रित है सब। जितना अत मे उतना बाह्य प्रकृति म।

उनके देखते-देखत घटा का विस्तार बढा। निश्चित वष्टि होगी। हिमपात नहीं—वष्टि। वह मुस्कराय।

तभी बौछारें प्रारम्भ हुइ।

आश्रम म हलचल मचा। द्वपायन स्वय पशु शाला की तरफ गये।

बौछारें रुकी नहा। रुकी, तब पौ फट चुकी थी।

आश्रम की नित्य क्रिया शुरू हो गई।

वक्ष कुज नहाकर हल्की वायु म जस मौन ध्यान कर रह थ। विभिन्न वर्ण *और आकृति के पक्षी चहचहा कर मत्रोच्चार-सा कर रह थे।*

सरस्वती का प्रवहमान जल कल-कल कर रहा था।

तट पर ब्रह्मचारियो क यूथ दनिक अध्ययन के लिये प्रतिदिन की तरह तयारी का उपक्रम कर रह थे।

(८)

उद्यान व कुजा आर वक्षा पर फूल बौर फल भर आए थे। अरण्य के वक्षा म हरियाली यू गछ गइ थी जस वक्षा व वश स बाहर हो रही हो। खेता म फसल लहलहा रही थी। चरागाह हरी दूब म सम्पन्न थ जिनम ढेर के ढेर

पशु विचरते दिखाई देते थे। पक्षी जंगली पशु उतने ही प्रसन्न थे जितने कृषक। ऋतु राज उत्साही दातार की तरह रंग गंध बगरा रहे थे। कोयल कुहुक-कुहुक पंचम स्वर अलापती थी। हिरन, रीछ लोमड़ी, हाथी, सिंह अरण्य में मुक्त हो घूमते थे। वृक्षों पर मरकट और लंगूर दिन भर कूद फांद करते थे।

नगर में राग रंग का विशेष वातावरण था। मन का उल्लास उत्सवों तथा विलास में प्रकट होता था। शक्ति का समय हो, राज्य युद्ध में न फंसा हो और ऋतु का उद्दीपन हो तब प्रकृति और मनुष्य दोनों उस संस्कृति के नज़दीक हो जाते हैं, जो स्वतः स्फूर्त होती है—फिर न वर्ण भेद रहता है न स्वर भेद। मंदिर के घण्ट घड़ियाल नगाड़े, यज्ञशालाओं के मंत्रोच्चार हाटों का मेलों-सा भराव सब वाद्य-वृन्द के समवेत वादन का प्रेरण देते हैं।

सूर्य डूब चुका था पर आकाश में लाली शेष थी। अम्बिका और अम्बालिका प्रासाद के भाग में उस स्थान पर घूम रही थीं जहां से नीचे उद्यान दीख रहा था दूर का अरण्य दीख रहा था तथा आकाश की ललाई भी। नगर की इमारतें और मन्दिर खिलौनों के विस्तार से लग रहे थे। गायों के झुंड दिन भर चरकर घरों को लौट रहे थे जो सफेद चलते बिन्दुओं से लग रहे थे। दासियां इधर उधर छितरी हुई स्वयं दृश्य का आनन्द ले रही थीं तथा रानियों की उपस्थिति में रहने का कर्तव्य भी पूरा कर रही थीं। अम्बालिका यद्यपि श्वेत वस्त्र पहने थी पर उसका सिर खुला था। काले घने घुंघराले बाल उन्मुक्त हो हवा के झोंकों से लहरा रहे थे। अम्बिका ने हल्के रंग का वस्त्र पहन रखा था। उसके जूड़े में कमल का फूल खुंसा हुआ था। दोनों के चेहरे पर दृश्य की प्रतिछाया सौंदर्य के रूप में छनक रही थी।

अम्बालिका ने आकाश की तरफ देखते हुए कहा—देखो! पक्षी कैसे पंक्तियों के आकार बदल-बदल कर उड़ते चले जा रहे हैं, मौन।

अम्बिका खिलखिला कर हंस पड़ी—वह मौन नहीं हैं गा रहे हैं। सुनाई नहीं देता।

अम्बालिका फिर बोली—दूर के अरण्य के वृक्ष कैसे चित्रवत दीख रहे हैं।

अम्बिका ने उत्तर दिया—वो चित्रवत नहीं हैं निकट जाकर देखो, पात पात हिल रहा होगा। पक्षी गुंजायमान कर रहे होंगे पूरे वन को।

अम्बालिका ने नगर की तरफ देखते हुए कहा—देखो नगर जैसे गूंगा पड़ा है।

अम्बिका तुरन्त बोली—भ्रम है। वह गतियों और कोलाहल से पूर्ण है। तू इस स्थान से देखकर कह रहा है।

अम्बालिका की हंसने की बारी अब थी। वह हंसते हुए बोली—तुझे स्थिरता और हलचल की पहिचान है?

क्या ? क्या मैं दृष्टिहीन हू ? या अनुमान नही कर सकती ?

मैंने समझा तू अनुभव से परे काठ हो गई है। या शायद ऐसा हो कि

ऐसा हो कि । अम्बिका बीच में बोली। तू मुझसे जानकर छेडखानी करती है। मैं सहज में उत्तर दे रही थी।

तू बडी है भला मैं क्या छेडखानी करने लगी।

तूने नही की। बचपन में मुझसे झगडती थी। बडी हुई तो होड करती थी। मैं बीच की थी बडी का रौब सहना होता था, छोटी की जिद।

बडी तो गई काम से। न इधर की रही, न उधर की।

अम्बा अब ईर्ष्या और बदले की भावना से ग्रस्त अपने जीवन को अभिशप्त बनाये हुए है।

तुम्हारी दृष्टि से। उसने अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लिया है। वह चाहे पितामह से बदला लेने का ही हो। तेरा क्या लक्ष्य है ? मेरे जीवन का क्या उद्देश्य है ? अम्बालिका ने प्रश्न किया।

मुझे बहस नही करनी। तू तो छाल की भी छाल निकालती है।

भ्रम से उबरते जाना छलों से बाहर निकलना, क्या बेहतर नही है ?

निकलते नही हैं। एक भ्रम को छोडते हैं दूसरे को अपनाते हैं। अम्बिका ने कहा।

उस चौकी पर बैठ जायें। अम्बालिका ने पत्थर की चौडी चौकी की तरफ सकेत किया।

नही ! तू बहस करके वहीं-की-वही पहुंचेगी। सुहाने समय के आनन्द को खुले मन से स्वीकार कर। उस सोच कि वह

नकली आनन्द का अन्दर विस्तार कर दे ! मूल वेदना को ढक दे। अम्बालिका ने कटाक्ष किया।

मैं नही जानती मूल वेदना या कृत्रिम वेदना, मूल आनन्द या नकली आनन्द। अम्बिका ने बात को टालने के लिए कहा।

जानने की कोशिश भी नही करेगी ?

नही। बल्कि जब-जब यह जिज्ञासा जागी, मैंने सायास उसको दबाया।

तभी तेरे में किसी तरह की विकलता नही होती अम्बालिका जैसे अपने पहुंचे हुए निष्कर्ष की स्वीकृति पा, मुस्कराई।

मैं पत्थर नही हू, मैंने अपने को बनाया है। जैसी परिस्थिति हो उसके अनुसार ढलने की आदत अर्जित की है। मैं मझली थी न। इसके मतलब यह नही कि मुझे विकलता नही होती, या मेरा मन कामनाओ से रिक्त है।

कामनाओं को मारना कम होना है ? अम्बालिका के मुख का भाव उत्तर का आकाक्षी हो उठा।

तू नही जान पायेगी। न जान तो अच्छा है। तू अम्बालिका रह। जसी अब तक रही है।

तुम कोई गहरी बात कहना चाहती हो—छिपा रही हो। म जानना चाहती हू। अम्बालिका आग्रही हो गई।

देख वह लाली भी धीरे धीरे झुटपुटे म घुल रही है। चल अपने-अपने कक्ष म चलें। अम्बिका ने टालना चाहा।

एसा नही होगा। तुम्हे बताना होगा। उसने अम्बिका का हाथ पकड लिया, उसकी दृष्टि के सम्मुख अपनी तीक्ष्ण दृष्टि ठहरा दी।

क्षणभर के लिये अम्बिका को लगा जसे अम्बालिका आठ वर्ष की बच्ची हो गई है—वह भी उम्र म घटकर बारह वर्ष की हो गई है। अम्बालिका नटखट सा उसका हाथ पकड किसी बात के लिये जिद्द कर रही है। वह छुडाने का प्रयास कर रही है अम्बालिका पर पटक-पटककर कह रही है—नही छोडू गी। बताओ! बताओ!!

अम्बिका मोहित-सी उसे निर्निमेष देखती रही।

क्या देख रही हो? अम्बालिका ने पूछा।

हू। कुछ नही। वह चौंकी।

एक टक क्या देख रही हो?

मेरा हाथ तो छोड। वह बुदबुदाई।

नही छोडू गी। तुम मुझ से छल कर रही हो।

अम्बिका उसी रौ म बह गई—तू निरी बच्ची है—नटखट। उसके होंठो पर मुस्कराहट थी। इन क्षणो म उस पल की झलक ने अम्बिका की सारी घुटन को हलका कर दिया।

चल, नीचे चलें। मेरा नन्हा बहिन है ना। बता दूगी। आज मेरे पास सो जाना ठीक है?

अम्बिका की इच्छा हुई वह अम्बालिका को अपने से चिपटा लें। पर उसने ऐसा नही किया। दोनो बडी हो गई थी। समय और परिस्थितियो ने बहुत कुछ चाहा अनचाहा दोनो म इकट्ठा कर दिया था।

रात्रि की वेला। अम्बिका का कक्ष। कई दिये जलते हुए कक्ष म मध्यम प्रकाश कर रहे थे। एक ही शैय्या पर दोनो बठी थी। जाने कहा कहा की बातें कर चुकी थी पर अभी भी जसे जी भरा नही था।

तू थक गई है। लेट जा अम्बालिका।

थकी नही हू। सतुष्ट हुई हू। पर तृप्त नहा! तुमने अतीत वतमान को याद करा कोपा एसा खोला जिस तरफ मैंने कभी ध्यान नही दिया। मैं मानती हू मैं तुम्हारी तरह सतर्क नही हू। पर मैं भी तो किन्ही अशो म अपनी दृष्टि स

सही रही।

तू है। पर भावनाओ और सहजताआ का भी अकुश म रखना हाता है। हम स्त्री है और राजमहल की रानिया है, जहा लाड-प्यार के साथ राजनीति भी होती है। मर्यादा के नाम पर बलिया चढा दी जाती है। अम्बिका कह रही थी।

असहायता को मैंन अपन ऊपर लादना स्वीकार नही किया। चाहती भी नही। वरना मैं क्या रहूगी ? मरा अस्तित्व क्या रहगा ? अम्बालिका कह रही थी।

हमारा आधा अस्तित्व तो उसी दिन समाप्त हो गया जब हमारे पति, सिंहासन के स्वामी, की मत्यु हुई। वह राजा थे। उनकी स्वेच्छा के आगे राजमाता और भीष्म पितामह को भी किसी सीमा तक समझौता करना पडता था। अब, हमारी आयु और कामनाआ का बहाना लेकर उत्तराधिकारी को पान की अह म आवश्यकता की पूर्ति की जानी है। आपद धम की घोषणा कर, पितामह जसे के सामन यह प्रस्ताव रखा गया कि वह हमारे पति बने। क्या मैंन या तूने इस भावना स पितामह का देखा कभी ?

वह पिता तुल्य रहे है मरी दृष्टि म। इसीलिए मैंने कहा था

अम्बिका न बीच म टोका—कहा नही था, तू न मुझ स प्रश्न किया था, क्या तुम म विद्रोह नही जागता ? धम और नीति और राजनीति शाश्वत रेखाए नही खीचती, वह बदल दी जाती है। कभी वह याय करती [redacted] कभी पातक अयाय। तब यक्ति तुच्छ होता है उसकी स्वतत्र इच्छा नगण्य। अम्बा, जीवित उदाहरण है। शाल्व ने क्षत्रीय धम को ममक्ष क्या रखा ? क्या अम्बा का प्रेम और साहसिकता उस धम मे बडा धम नही था। पितामह न वहा स ठुकराये जाने पर क्या नही स्वीकार किया ? क्या उसका भविष्य इस धम स छोटा था जिसका हवाला दिया गया ?

तुम अम्बा का उदाहरण बार-बार क्या देती हो ? अम्बालिका जस इस उपदेश का गले नही उतार पा रही थी। अम्बालिका ! मैं इसलिए उसका उदाहरण दती हू कि उसकी दुदशा मुझे सालती है। वह भी हमारी बहिन है। तू नाराज नही होगा तब मैं बताऊगी उस प्रश्न का उत्तर जो तू मुझस पूछने की जिद कर रही थी। मुझे विश्वास मिला, इस भी परिस्थिति का परिणाम भर मानेगी। अपनी बडी बहिन को गलत नही समझेगी।

सच्चाई को मैं गलत नही समझती। अम्बालिका न दृढता से जवाब दिया।

'मैं' को भी अलग रखकर सुनाओगी तब मरी बात समझोगी। महाराजा विचित्रवीय सुदर थ युवा थ साक्षात इद्र थे। मैंने, तूने दानो ने उन्हे मन स

स्वीकार किया है। वह हम म इतने केंद्रित हो गये कि भोग क अतिरिक्त उनको किसी रात की परवाह रहा रही। पर फिर भी भेद था। तू, छोटी थी, किशोर चचलताओ मे भरी थी। वह तुझ पर अधिक केंद्रित हुए। जाने अनजाने म मेरी उपेक्षा भी की। क्या मुझे उस समय विकलता नहा होती थी? क्या मुझ उस समय तृप्ति नहा होती थी जब मैं उन्ह अपने पास चाहती थी पर वह कई रात बल्कि निरतर तेरे पास होते थे? पर मैंने तुझे हमेशा छोटा माना और तेरी तृप्ति से अपने को सतुष्ट कर अपने पर नियत्रणा लगाती रही। फिर उस भोग की अति हुई फिर भी मैंने तुझे नही टोका। अन्त म वह रुग्ण हुए। क्षय ग्रस्त हुए। तब भी मैं अपने पर सयम रखती गई इस दृष्टि से कि तू मेरे कहे को ईर्ष्या न समझ। अपने को काबू करना और मारना मैंने तभी से सीखा।

तुमने यह अच्छा किया? मैं अगर परिणामो से अनभिज्ञ थी, तन मन की आकाक्षाओं म बह रही थी, तब क्या तुम्ह मुझे चेताना नही था? अम्बालिका तुरत बोली।

वह समय वह बहाव ऐसा नही था जिसे टोका जा सकता था। अम्बिका ने उत्तर दिया।

देह की आकाक्षाए और आग्रह आज भी मेरे साथ। इतनी स्वतत्रता और तृप्ति के बाद मुझपर थोपे जाने वाले निर्णय के प्रति विद्रोह जागता है। अम्बिका ने कहा। अबोध मे हुए तुम्हारे प्रति अन्याय को मैं अपराध नही मानूगी कि पश्चाताप म पड जाऊं। पर यह भी कैसे हो कि किसी को भी अपनी देह से खेलने दू जो मेरे मन को न रुचे? महाराजा विचित्रवीर्य की स्मृतिया मुझमे इतनी सजीव है कि देह का कण-कण उनसे रागित हो उठता है।

मेरा भी होता है पर अम्बिका चुप हो गई जैसे यकायक किसी ने टाट लगा दिये हो आवाज पर।

अम्बालिका की आतरिक सबलता पानी-पानी हो गई। वह मुडी और अम्बिका के कधे पर टिक गई। अम्बिका उसकी देह, उसके सिर पर हाथ फेरती रही। उसकी बडी-बडी आखें जलाद्र हो उठी। पर वह अपने प्रति बेहद कठोर नियत्रक हो गई। किसी भी तरह की भावना को उसने छूट नहा दी कि वह उसको निशक्त कर दे।

(६)

प्रात की सुनहरी धूप विस्तृत प्रकृति को उजागर कर रही थी। बडे क्षेत्र फल म फैला आश्रम सक्रिय था। हवन तथा प्राथना का दैनिक कायक्रम हो चुका था। अलग-अलग स्थानो पर वृक्षो के नीचे, आचार्यों के निर्देशन म अध्ययन चल

रहा था। व्यवस्था के अनुसार हुए काय विभाजन के अनुकूल, हर विभाग म काय हो रहा था। कृष्ण ▪ पायन अपनी कुटीर के मुख्य कक्ष मे बठे थ। जिज्ञासु आचाय किसी भी विषय पर चर्चा करने आ सकत थे ऐसा क्रम निश्चित था। उनके जाने के बाद द्वैपायन स्वय अध्ययन म रत हो जाते।

पैल अभी अभी ऋग्वेद के किसी जटिल अश पर द्वैपायन की व्याख्या का लाभ उठाकर गए थे। सुमन्त भी उपस्थित हुए थे। द्वपायन ने इच्छा अभिव्यक्त की थी कि वह चिंतन के आदान प्रदान का सामूहिक सत्र लेना चाहते हैं जिसमे पल, जमिनि वशम्पायन तथा सुमन्त चारो उपस्थित हा। उन्होने अपनी धारणा को स्पष्ट किया था—वेद, पुराण, सहिता, शाश्वत आधार होते हुए भी निरतर चिंतन तथा शोध की अपेक्षा रखते हैं। आध्यात्म का आधार इस सष्टि का चिंतन है जो अनन्त रहस्यो से परिपूण है। रहस्य उदघाटन ही तो शोध है। जड चेतन कीट पशु प्राणी, मनुष्य और उसके समूहना से निर्मित व्यवस्था के अत व बाह्य सम्ब ध, परिवतनशील हैं। अत चिंतन विवेचन इन सबको केन्द्र मे रख कर किया जाना चाहिये। द्वैपायन की जिज्ञासाए, उनका प्रश्नाकुल मस्तिष्क, प्रेरक विधि थी, जिसे वह अभियक्त कर आचार्यों तथा शिक्षार्थियो की मेधा को प्रखर रखते थे।

एक वद्ध ऋषि ने आकर सूचना दी—हस्तिनापुर से आमात्य व ब्राह्मण आये हैं जो आपसे साक्षात्कार चाहते हैं।

कब आये ? द्वपायन ने पूछा।

अलख भोर म रथ आये थे। हमने अतिथि ग्रह मे उन्ह ठहराने की व्यवस्था कर दी। वह स्नानादि करके तयार हैं आपके दशन के लिए।

उन्ह बुला लाओ। द्वैपायन ने स्वीकृति दी।

वृद्ध ऋषि लौट गये।

द्वपायन को पूण सूचना प्राप्त थी कि विचित्रवीय की मत्यु हो गई है तथा कुरु राज्य इस समय सकट की स्थिति म है। एकात पाकर वह सोचने लग अमात्यों व ब्राह्मणो क आने का क्या प्रयोजन हो सकता है ? एकाग्रता म जाते ही विश्लेषक मस्तिष्क सक्रिय हो गया और अत सम्भावना को प्रकट कर उठा। वह मौन मुस्कराये।

वृद्ध ऋषि आगन्तुको को ले आया था।

प्रवेश करते ही सबने झुककर प्रणाम किया। द्वपायन ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। हिम प्रदेश से आपके लौटने की प्रतीक्षा हम सब आतुरता से कर रहे थ। आमात्य ने कहा।

हा, मुझे यहा आकर सारी सूचनाए प्राप्त हुइ। द्वपायन ने उत्तर दिया।

महर्षि, हम राजमाता तथा पितामह द्वारा भेजा गया है कि आपसे हस्तिना

पुर आने की प्रार्थना करें। राजमाता का विशेष आग्रह है। आमात्य ने संदेश से अवगत किया। राजपुरोहित बोले—महर्षि, राज्य परिषद तथा ब्राह्मणों की परिषद पर्याप्त विचार चुकी है परन्तु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी। राजनीतिक व धार्मिक संकट दोनों उपस्थित है।

प्रजा भी चिंतित है तथा हितैषी राजे-महाराज भी। इस परिस्थिति से आपकी अनुकम्पा ही उबार सकती है। आपकी सम्मत राय अकाट्य होगी। आपका निर्णय लोक मान्य होगा।

द्वैपायन ने गर्दन हिलाई। उनका वाम हस्त स्वत दाढ़ी पर गया। उस पर कई बार फिरा।

वह बोले नहीं बल्कि जैसे दूर कहीं देखने लगे। क्षण भर के लिए आंखें मूंद ली।

आगन्तुक शांत रहे। क्षणों का यह अंतराल उनके लिए कल्प के समान हो गया। सबका मस्तिष्क अपनी-अपनी तरह से सोच रहा था— हां या ना!

थोड़ी देर बाद द्वैपायन ने पुनः आंख खोली।

कब चलना होगा? उन्होंने पूछा।

रथ की व्यवस्था करके लाए हैं। हमसे कहा गया है कि हम शीघ्रातिशीघ्र लौटें। यदि आपको असुविधा होगी तो राजमाता और भीष्म पितामह स्वयं आयेंगे। कृष्ण द्वैपायन निर्भीक-से बोले—उनके यहां आने से प्रयोजन पूरा नहीं होगा। मुझे जाना होगा। सबने एक साथ गर्दन को झुकाकर आभार व्यंजित करते हुए प्रणाम किया।

आज आप लोग आश्रम और निकट क्षेत्र का अवलोकन करें। हमारी ज्योतिष शाला तथा औषधिशाला का भी अवलोकन करिये। हमारे विद्वान प्रभारी व विद्यार्थी चिंतन मनोयोग से शोध कार्य कर रहे हैं इसकी भी जानकारी प्राप्त करें। धर्मानुशासित कर्म आत्मानुशासित, सब मंगलकारी जीवन दृष्टि से ही सम्पन्नता प्राप्त करता है। अन्याय व अनाचार को दूर कर हम पृथ्वी को स्वर्गतुल्य बना सकते हैं। क्या कल प्रात चलना उचित होगा?

ज्यामघ ने आदरपूर्वक उत्तर दिया—यही समय उचित होगा।

हम भोर वेला में तैयार मिलेंगे। द्वैपायन ने निर्णय देकर अंत संकेत कर दिया बात समाप्त हो गई अब आप जा सकते हैं।

सबने उठकर पुनः प्रणाम किया और बाहर चल गए। कृष्ण द्वैपायन अब उठे और आश्रम के अन्य कार्यों का निरीक्षण करने निकल पड़े। वह किसी भी समूह की तरफ जाते और वहां चल रहे अध्ययन कार्य को देखते। आवश्यकता होती, प्रश्न करते। सम्वाद को अधिक रसपूर्ण तथा उत्तेजक बना देते। शिक्षार्थियों की तर्कशक्ति और शास्त्रार्थ योग्यता की थाह वह वार्तालाप के जरिये

जान लेत।

वे पशुशाला औषधिशाला, आहारशाला आदि म गय। वहा की व्यवस्था वाला स वार्तालाप कर समस्याआ को जाना। कुटिया म रहन वाली परिवार की महिलाए उन्ह देखकर प्रणाम करती। वह आशीर्वाद देत हुए आग बढ जात।

यह क्रम रोज का था। द्वपायन को नही पता था हस्तिनापुर जाकर उन्ह कितना समय लग। अत उन्होने सम्बधित ऋषिया को अपने जाने के कायक्रम से अवगत करा दिया।

(१०)

महर्षि द्वैपायन के आने की सूचना हस्तिनापुर पहुच गई थी। नगर निवासिया ने उनक स्वागत म स्थान-स्थान पर विशेष व्यवस्था की थी। स्त्रिया और पुरुष महर्षि के दशन क लिए उत्सुक थ। वैश्यो ने निकट ग्रामा से आन वाले दशनार्थिया के लिए ठहरन व भोजन की व्यवस्था की थी। राजमहल की ओर से उनके उचित सम्मान के लिए भव्य आयोजन रखा गया था। प्रजा म यह तथ्य स्पष्ट था कि कृष्ण द्वपायन आमात्यो और ब्राह्मण तथा पुरोहितो की परिषद म विशिष्ट परामशदाता की तरह भाग लेंग तथा उनका निणय सवमान्य होगा। क्र्योंकि की व्यवस्था धमसम्मत व हितकारिणी होगी।

रथो का समूह जस ही नगर सीमा तक पहुचा मुख्य पथा पर उत्साह की लहर दौड गई। सीमा पर भीष्म पितामह तथा अन्य मान्य सदस्य वद्ध-अधेड ऋषि व पुरोहित, अगवानी करन के लिए उपस्थित थे।

श्याम गात पर गरुआ उत्तरीय, गल म रुद्राक्ष की माला, चौडे माथे पर चदन की रेखाए श्वेत जटा तथा दाढी म द्वपायन तेज युक्त लग रह थ। मुख्य पथा पर चलत हुए पुष्प वर्षा व जय जयकार क बीच वह प्रशान्त स्थिर, बठे थ। मात्र दक्षिण हस्त आशीर्वाद के लिए आधी ऊचाई तक उठता था।

कई स्थाना पर रथ रोक कर शख तथा घडियाल की ध्वनि के बीच माल्यापण किया गया। पूजन व वदन हुआ।

प्रजा के लम्बे अतराल के बाद पितामह व अन्य राजाओ तथा ऋषियो को देखा। अहो भाग्य की भावना सबके चेहरा पर स्पष्ट थी।

धीरे धीरे शोभा-यात्रा महल क मुख्य द्वार तक पहुची। वहा भी स्वागत क लिए पूर्ण व्यवस्था थी।

महारानी सत्यवती न इच्छा प्रकट की थी कि द्वपायन क ठहराने की व्यवस्था उनक महल म की जाए। वसा ही किया गया था।

रथ जब अतःपुर में पहुचा तो राजमाता स्वागत करन क लिए उपस्थित

थी। दासी ने माला, अक्षत तथा चदन का थाल राजमाता के आगे बढाया। राजमाता न रथ स उतर आए द्वपायन के गले म माला डाली। चदन का तिलक लगाने को उठे हुए उनके हाथ काप रहे थ। वह भरी आँखा स द्वपायन के तजस्वी मुख को देख रही थी। उन्होंने जस ही अक्षत छिटके, कृष्ण द्वपायन ने झुककर उनके चरण स्पश कर लिए।

वह सम्पूण काप गइ। पर अतर स अपने को सम्भाल रखा। भीष्म पितामह की गम्न ब्रह्मर्षि की शालीनता को देख आदर म झुक गइ।

अन्य उपस्थित लागा क लिए तथा परिचायको व दासिया के लिए ऋषि श्रेष्ठ का यह व्यवहार अबूझ पहेली थी।

पर व्यवहार उदात्त था जो गरिमा को और गरिमा द गया।

कृष्ण द्वपायन को उनके विश्राम स्थल की ओर ले जाया गया।

(११)

द्वपायन के दिन के भोजन की व्यवस्था राजमाता सत्यवती के कक्ष म थी। प्रात के नित्य कर्मादि तथा ध्यान के बाद द्वपायन दशनार्थिया को उपलब्ध थे। पितामह भी द्वपायन की उपस्थिति म थे। दशनार्थिया म विशिष्ट आमात्य व वेदन ब्राह्मण एव ऋषिया को दशन की अनुमति थी। आध्यात्म तथा ज्ञान की चर्चा के अतिरिक्त कुरु राज्य की समस्याओ को भी दोहराया गया। द्वपायन धय स सगत व सक्षिप्त उत्तर देकर प्रश्नार्थिया को सतुष्ट कर देते थे। उनका समाधान जिज्ञासुओ का सतुष्ट कर देता था।

एकात पाकर द्वपायन न भीष्म पितामह स पूछा—आप स्वय ज्ञानी और साधक हैं इस आपद् स्थिति म क्या सोचते हैं?

पितामह न स्पष्ट उत्तर दिया—महर्षि मैं शुद्ध साधक नही हू। मेरी परिस्थितिया, मेरे कत्तव्य इतन गहीत करन वाले हैं कि निरविकार तथा तटस्थ हो नहीं पाता। धम सम्मत रह सकू यही पर्याप्त है।

कम स हम भी मुक्त नही है। आश्रम क प्रपच हम भी साधारण धरातल पर रहने को बाध्य करते है। व्यवस्था स लेकर अनुदान व राज्य अनुकम्पाओ के यत्न करने पडते है। आश्रमो म आपस म भी होड विद्यमान है।

पर सबका आधार ज्ञान की श्रेष्ठता है। राज्यों को सरक्षण म रखने के लिए उन सब युक्तियो का प्रयोग करना पडता है जो भौतिक लालसाओ की वृद्धि करती है। कभी कभी विचार आता है यह सब क्या? किस हेतु? क्या मेरा जीवन दो नावा म पर रखे रहने के लिए अभिशप्त था? यश और प्रतिष्ठा एक महत्त्वाकाक्षी अजर तृष्णा ही तो है। भीष्म ने द्वपायन स दृष्टि मिलाते हुए कहा।

द्वैपायन ने तुरन्त उत्तर दिया यह कठिनतर परीक्षा है पितामह। जल में रहकर यद्यपि सूखे नहीं रहा जा सकता पर आकंठ डूबने से बचे रहना, यह अद्वितीय आत्मनियंत्रण की अपेक्षा रखता है।

धर्म और कर्त्तव्य टकराते क्या हैं महर्षि ? पितामह ने पूछा जैसे उनमें कोई अविजित अकुलता घूर्णन कर रही थी।

क्योंकि दोनों व्यक्तिपरक होते हुए सम्बन्धपरक हैं। यह टकराव हितों की पूर्ति का है। और सीमाओं का। पितामह, आपकी जिज्ञासा किन्हीं वेदनाओं से उत्पन्न प्रतीत होती है। भीष्म पितामह जैसे परिपक्व आयु तथा अनुभव वाले सकल्पवीर की दुविधालु स्थिति आश्चर्य में डाल रही है। द्वैपायन ने आसन परिवर्तित करके पीठ को सहारा दिया।

हां, महर्षि, मैं अपनी द्वन्द्वात्मक स्थिति का समाधान आप से चाह रहा था। मैंने निवेदन किया था, मैं कभी-कभी अपने को जाल में फंसा पाता हूं। न्यायसंगत होते हुए भी लगता है अपराधी हो गया हूं। सब धर्म और कर्त्तव्य अधर्म तथा कर्त्तव्यहनन लगते हैं। राजमाता सत्यवती की अपेक्षाओं को पूरा न कर पाने से उनकी ममता का उपेक्षक पाता हूं अपने को। अम्बा, जैसी अपरिपक्व कन्या ने मेरे धर्म को चुनौती दे दी। मैं यह नहीं समझ सका, मैंने उसके साथ न्याय किया या अन्याय। सूचना है कि वह क्षुब्ध होकर भार्गव परशुराम के पास गई है। वह संकल्पित है प्रतिबोध लेने के लिए। पितामह एक रौ में कह गये।

और भी उलझन हैं ? कृष्ण द्वैपायन ने प्रश्न किया।

मुख्य यही है महर्षि जो मेरा अंतर्द्वन्द्व बनकर मुझे कमजोर बनाती है।

सम्बन्ध दो तरफा होता है न, इसी तरह से धर्म और कर्त्तव्य भी। राजमाता सत्यवती का ममत्व कहीं आहत होता है तो वह उनका अतिरेक मोह भी तो हो सकता है। उन्हें अधिकार है उसे रखने का पर तुम्हें भी तो अधिकार है अपने अनुसार निर्णय लेने का। अम्बा का भविष्य अंधकारमय हो गया, क्या उसका रोष असंगत है ? जिस धर्म के अनुसार उसने तुम्हें चुनौती दी थी स्वीकार करने की, वह भी संगत था। यही तो टकराहट होती है धर्म की। दोनों ठीक होते हुए भी एक-दूसरे को दोषी मानते हैं। दूसरे की दृष्टि को रोप की तरह आरोपित करना, अपने को अपराधी पाना है, जबकि यह गलत है। तुम अपने स्थान पर संगत हो। बिल्कुल धर्मानुकूल। इस पर विचार करना। द्वैपायन कहकर चुप हो गये।

पितामह भी मौन थे। वह सम्मोहित से द्वैपायन को देख रहे थे।

यूं मत देखो पितामह। सम्मोहन विश्लेषण को आच्छादित कर देता है। अंतर्द्वन्द्व की स्थिति से छुटकारा आत्मविश्लेषण दिलाता है। जिसे आदमी अपना स्वयं का स्रष्टा होकर प्राप्त करता है। मेरे सुझाव को स्वीकार मत करो, उस पर चिंतन करो।

इसी अवसर पर अंतःपुर से बुलावा आ गया। दासी ने आकर कहा—महर्षि को राजमाता ने स्मरण किया है।

तुम भी चलोगे पितामह। द्वैपायन ने खड़े होते हुए पूछा।

राजमाता आपसे एकांत में मिलना चाहती हैं। आपको पता है, वह क्यों बुला रही हैं। भीष्म ने कहा।

हां पता है। आश्रम से चला था, तब इतना स्पष्ट नहीं था, अब हूं। ममता की अपेक्षाओं का मुझे भी सामना करना पड़ेगा। मैंने अपनी ओर से उसकी स्वीकृति राजमाता के चरण-स्पर्श करके अभिव्यक्त की थी।

आप अंतर्यामी हैं? भीष्म स्वयं खड़े हो गये।

नहीं। मैंने कहा न, जब आश्रम से चला था तब पूर्णतया स्पष्ट नहीं था, अपनी भूमिका के सम्बन्ध में। अब लगभग हूं।

द्वैपायन जाने के लिए तैयार हो गये। पितामह उनको पहुंचाकर अपने आवास की ओर चल दिये।

द्वैपायन राजमाता के कक्ष में पहुंचे तो द्वार पर उन्हें स्वागत करने हेतु प्रस्तुत पाया। सत्यवती ने चंदन का सिंहासन उनके लिए लगा रखा था जिस पर मृग छाला बिछी थी। द्वैपायन को उस पर बैठने का संकेत दिया।

द्वैपायन ने स्थान ग्रहण किया।

तभी एक पुरोहित माला, कुमकुम, अक्षत सजी हुई थाली, लाया। मंत्रोच्चार से द्वैपायन का पूजन किया। द्वैपायन ने मंत्रों का मंत्रों से उत्तर देकर मंगलकामना की।

पुरोहित चला गया। उसके पश्चात् दूध, फलादि तथा सात्विक भोजन द्वैपायन के समक्ष लाया गया।

हाथों का प्रक्षालन कर द्वैपायन ने ईश्वर स्मरण कर भोजन आरम्भ किया।

सत्यवती पुत्र को स्नेहिल दृष्टि से देख रही थी। हृदय में उत्साह सा उठ रहा था। आंखों में पराशर ऋषि की छवि रह रहकर उपस्थित होती थी। कितना साम्य था दोनों में। इन क्षणों में पराशर की वह छवि भी प्रिय लगी जो पहले स्मृति में आकर उनमें घबराहट उत्पन्न कर देती थी। उस स्मृति के साथ विवशता तथा दुविधा कि अनुभूति जुड़ी थी—बल्कि कौमार्य के खंडित होने का आतंक।

द्वैपायन ने जब तक भोजन समाप्त किया, सत्यवती के मस्तिष्क में अतीत, वर्तमान मिल-जुलकर आते रहे।

द्वैपायन निश्चिंत होकर बैठ गये। राजमाता ने दासियों को आदेश दिया कि वह एकांत चाहती है। किसी को प्रवेश न दिया जाये।

कक्ष में अब द्वैपायन तथा सत्यवती थे। सत्यवती कुश का आसन लेकर जमीन पर बैठ गई।

क्या राजमाता अपने सिंहासन पर नहीं बैठेंगी ? द्वपायन ने कहा।

नहीं, महर्षि के सामने कुश पर बठना उचित होगा। बद्रीकाश्रम से आने की प्रतीक्षा कब स कर रही थी। क्या वहा मेरे द्वारा बुलाने की सूचना प्राप्त हुई थी ?

सूचना मिली थी। लेकिन मैं तपस्या छोडकर आ नहीं सकता था। शिष्यो को पहले यहा के आश्रम म भज दिया था। अभी आश्रम अधिक व्यवस्था चाहता है। ऋषियो व मुनियो की सख्या बढ रही है। द्वपायन ने उत्तर दिया।

व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। मैं चाहती थी चाह थोडे समय क लिए सही, पर राज्य के निकट रहो। तुम्हारी तपस्या म बाधा नहीं चाहती तुम्हारे आश्रम क काय म किसी प्रकार का गतिरोध भी नहीं चाहती, परन्तु मैं अब सहारा चाहती हू। सयोग और भाग्य ने मुझे जजर कर दिया है। महाराजा शान्तनु का स्वगवास फिर चित्रागद की युद्ध म मत्यु फिर विचित्रवीय का यक्ष्मा से ग्रस्त होकर देखत-दखत उठ जाना दुर्भाग्य की कोई तो सीमा है ! पितामह यदि वटवक्ष की तरह कुरवश का सरक्षण नहीं दत तो क्या होता ?

द्वपायन राजमाता को दख रहे थ। लेकिन राजमाता की जगह सामने बठी अधड नारी के शब्दा और चहर क भावा स तो ममता छलक रही थी। महर्षि 'तुम' क सबोधन को जान रहे थे।

सुख-दुख दो ही तो स्थायी भावना है जो जीवन के साथ है। इनको कस जिया जाय, यही मन की समस्या है। द्वपायन बोल।

मैं योगिनी नहीं हू, साधारण स्त्री हू। यही रहना होता है। यहा क वातावरण की वायु जल धूल कण शून्य और दाह सब चिपटे रहते हैं। सास दूभर हो जाती है। तब इच्छा होती है सब त्यागकर सयास ले लू। पर फिर, इस डूबत उतरात वश का ध्यान आ जाता है। सत्यवती की घुटन आखो म झलझला आई।

मैं पा रहा हू पत्थर स कठोर और अडिग व्यक्तित्व भी अस्थिर मन स्थिति वाल हो रहे है—कुरवश के लिये यह शुभ नहीं है। जिस राज्य को क्षेत्र म आदश माना जा रहा है, उसकी धुरी इतनी डगमगा रही है ? राजमाता यह अच्छे लक्षण नहीं है। भीष्म की भी यही स्थिति है—आपकी भी। द्वपायन के शब्दो मे कठोरता थी।

सत्यवती का धय टूट गया। वह भावव्यहल हो बोला—मुझे बटा कहने की स्वीकृति दो द्वपायन हालाकि यह सम्बोधन तुम्हारे लिए कोई अथ नहीं रखता है। यह सच है कि हम सब सीमा स परे हिले हुए है। आशा पर लगातार आघात होता है तब आत्मबल निश्चित रूप स निबल हो जाता है। क्या इसस भी अधिक बुरा समय आ सकता है कुरुराज्य क लिए ? मैं राजमाता के अतिरिक्त भी कुछ हू—मा, मास जिसके सामन दो युवा विधवा बठी हैं और कुरुवश पर दुर्भाग्य

न समाप्ति की रेखा खींच दी। मैंने इस घोर संकट में उबारने के लिए तुम्हें बुलाया है क्या मुझे जन्मदात्री का हक दोगे? महर्षि कृष्ण द्वैपायन से पूछ रही हूँ।

मैंने आपके चरण-स्पर्श किये थे। द्वैपायन सहज बोले।

हाँ, वह स्पर्श मेरे लिए अप्रत्याशित था। उसने मुझे रोम रोम से कँपा दिया था। रात भर वह स्पर्श सजीव रहकर मेरी देह में वात्सल्य की सिहरन पैदा करता रहा। मुझे आश्चर्य हुआ कि यह वात्सल्य अंत की किस तह में दबा था, जो लहरों के आवर्त में तरंगित हो उठा।

आवेश पर वश पाइये राजमाता। आयु आपकी देह को जर्जर कर चुकी।

पितामह भी यही कहते हैं। तुम भी यही कह रहे हो। पर मन क्या नहीं समझाता? ममता दुर्भाग्य की खींची गई अग्नि रेखा क्या लाँघती है? मैं काबू पाऊँगी। पाती हूँ। पल भर का समय दो। सत्यवती ने आँखें मूँद लीं। वह स्तब्ध होकर मंत्र-सा होठों में बुदबुदाने लगी। द्वैपायन उन्हें स्थिर दृष्टि से देखते रहे। वह महर्षि की दृष्टि थी, या कि पुत्र की, यह वहाँ कौन बता सकता था।

पर पूछने वाला वहाँ कोई नहीं था। सत्यवती सख्त नियन्त्रण को अपने पर लागू करने के लिए अंत से शक्ति संचित कर रही थी।

अंतराल के बाद उन्होंने आँखें खोलीं।

मैं राजमाता सत्यवती, कृष्ण द्वैपायन ऋषि से धर्म-सम्मत सलाह लेना चाहती हूँ। ऐसी आपात स्थिति में जब राज्य वंश का उत्तराधिकारी न हो स्वर्गवासी राजा के क्षेत्र से संतान उत्पन्न हो सकती है?

भीष्म पितामह का कहना है कि श्रेष्ठ ऋषियों व ब्राह्मणों के द्वारा, विधवा क्षत्राणियों ने पूर्व काल में संतानें प्राप्त कीं। वह क्षत्री कहलाईं। पितामह ने सही कहा है। द्वैपायन ने उत्तर दिया।

ऋषि द्वैपायन को पता है कि वह मेरी संतान हैं। वह श्रेष्ठ महर्षि हैं। मैं निवेदन करूँगी कि वह मेरी आज्ञा से अपने कनिष्ठ भ्राता विचित्रवीर्य की पत्नियों, जो संतान-कामा हैं उन्हें कृतार्थ करें। राजमाता भावशून्यता से इस तरह से बोल रही थीं जैसे वाक्य किसी दूरागत अरण्य से आ रहे हों। नभ वाणी हो रही हो। या कि अन्त के अतलांत से कोई आत्मा बोल रही हो।

यह सामान्य नहीं, वरन् असामान्य व्यवस्था है। मैं राजमाता के निवेदन को अवश्य स्वीकार करूँगा, परन्तु इस अनुष्ठान से पूर्व दैहिक और मानसिक शुद्धिकरण अपेक्षित है। वधू द्वय को वर्ष भर तक नियमानुसार व्रत रखकर आराधना करनी होगी। अपनी आत्मा को इतना निष्काम रखकर संतान कामना करनी होगी, जिसमें वासना तनिक न हो। राजमाता, यह यज्ञ की कोटि का अनुष्ठान है। द्वैपायन की आभा से तेज विकीर्ण होने लगा।

राजमाता व्यवस्था सुनकर चुप हो गईं—एक शब्द नहीं बोलीं।

विस विचार में पड़ गई। द्वैपायन ने उत्तर न पाकर पूछा।

महर्षि, समय भयानक प्रेत छाया-सी ठहरी हुई है। प्रजा का असंतोष बढ़ रहा है। मुझे भय है कि अम्बिका व अम्बालिका वैधव्य को स्वीकार कर वीतराग न अपना लें। जीवन से उदासीन होने के बाद उन्हें मनाना कठिन हो जायेगा। जब कामना नहीं रहेगी फिर अनुष्ठान कैसे सफल होगा? वे निराशा से अत्यधिक ग्रस्त हैं। ऐसा उपाय करिये जो अधिक समय नहीं लगे।

हो सकता है। क्या मेरी कुरूपता को वह सह सकेंगी? यह यत्न है राजमाता, मैं समागम के क्षणों में भी देह से परे होऊंगा। क्या वो देह से रचियां से, ऊपर उठकर, शुद्ध समर्पण कर सकेंगी? विधवावस्था वांछित फल से वंचित कर सकती है।

ऐसा नहीं होगा महर्षि। आप तत्पर हों शेष मुझ पर छोड़ दें। राजमाता ने हाथ जोड़ दिये।

तब आप उन्हें शुद्ध वस्त्र पहनाकर आभूषणों से सुसज्जित कर, कहिये कि मुझसे समागम की कामना करें। यह कामना जितनी एकाग्र होगी, उतनी ही गुण वाली संतान होगी।

राजमाता के चेहरे पर प्रसन्नता तथा उल्लास झलक आया। जैसे धुप्प गुफा के मुंह पर आकर किसी ने सूर्य देखा हो। उनके हाथ अनायास द्वैपायन के चरणों की तरफ बढ़े। द्वैपायन ने फौरन रोक दिया भूल गई कि मां ने पुत्र को आदिष्ट किया है! गति शाश्वत है। सृष्टि उसका माध्यम है।

(१२)

दोपहर का समय था। अम्बालिका इससे पूर्व चौसर खेल रही थी। चौसर की पट्टियों पर अभी भी गोटें लगीं थी। हाथी दांत के पासे फर्श पर पड़े थे। खेलते-खेलते बीच में उसका जी उकता गया था। वह अधूरी बाजी छोड़कर उठ गई थी। साथ में खेलने वाली परिचारिकाएं आदेश पाकर बाहर आ गई थीं।

अम्बालिका का मन नहीं लगा तो गवाक्ष में आकर खड़ी हो गई। वह महल में पीछे का दृश्य देख रही थी जहां से अश्वशाला व हस्तिशाला दीखती थी। वह यूं ही उन पशुओं की लघु आकृति देखती रही। दूर से कितना छोटा आकार दीखता है! सेवक उंगली उंगली भर के दिख रहे हैं।

कभी-कभी कैसी उमंग उठती है कि वहां तक पहुंचे और एक अश्व चुनकर, उसकी पीठ पर बैठ सरसराती हुई निकल जाये परकोटे से बाहर। दौड़ाए उसे जैसे अपने पिता के यहां तब अश्व की सवारी करती थी जब वह तेरह वर्ष की थी। उसे यह शौक अम्बा की देखा-देखी लगा था। अम्बा हद की निडर थी। उसने धनुष-बाण चलाना और तलवार चलाना भी सीखा था। पिताजी से कहकर

विशप प्रबंध करवाया था भोजन का। उसने अभ्यास के लिए मेरा साथ चुना था। मैं यू ही जोश जोश म उसके साथ लक्ष्यभेद करती। सफलता मिलती तो अम्बा को चिढ़ाती।

ज्यादातर तो अम्बिका को चिढ़ाती। यह मन्न म घूमती रहा है। अलग थलग रहती। छोट छोटे पशुओ से खेलती घोड़ो को देखती तो रहती चढ़ने को कहो तो मुह बिचका देती। जबरदस्ती धनुष थमा दो लक्ष्य कही होता बाण कही जाता। हसो तो धनुष फेंककर चल देती। पत्थर पर पत्थर रखकर किला बनाती। पौधा को मिट्टी म रोपकर जगल खड़ा करती।

अम्बालिका खड़े-खड़े सोच रही थी वह भी कितना मुक्त जीवन था! अब जस परकोटा कदी गृह बन गया है।

अकुशा का अनुभव वह अधिकतर करती रही है—विशेषतौर पर तबस जबस पति की मृत्यु हुई। वह की तप्तिया और भोग की लिप्तता तब उस चरम पर थी जब होश भी भुलावे की छाया म डूबा रहता था। झटका लगा और थमा हुआ जस सजाए हुए फूलो-पखुरियो की ढेरी पर बर्बराए हाथी न अपना प्रमुल पर रख दिया हो—सारी कुचल गई। कान न जस भयानक जगाओ म डस लिया हो उमकी कामनाओ की तितलियो को।

अम्बालिका हाथियो म शुड उठान पर उठान को देखती रही। किसी हाथी की चिंघाड़ हवा पर तरती हुई होगी। वह जान सकती थी वह चिंघाड़ तो दूर म आ रही है—उसके निकट हो तो स्यात् थरथरा दे।

अम्बिका न उसके कक्ष म कब प्रवेश किया कब वह चुपचाप उसके पास आकर खड़ी हो गई उसे नही पता चला।

उसने धीरे स उसके कंधे पर हाथ रखा और बोली—क्या देख रही हो?

वह चौंक उठी। कौन! तुम! उसने गरदन घुमाकर देखा।

क्या देख रही थी?

हाथी। और यह रात भी जिसने हमारे मुख पर कानी छाप थाप दी।

हा अम्बालिका मैं भी अपने कक्ष म बेचैन हो रही थी इसलिए तेरे पास भाग आई। बड़ा अजीब सा रहस्य वातावरण म घुल चुका है।

बन्धियो का वातावरण तो हमशा स्पष्ट होता उसम रहस्य कहा। एकरस सुबह एकरस दोपहर एकरस शाम और एकरस रात। अम्बालिका गहरी सास भरते हुए बोली।

तूने अपने को इतना बेफिक्र क्यो छोड़ दिया है अम्बालिका? यह भी जानने की कोशिश नही करती कि कहा क्या हो रहा है? मेरे साथ आ मैं बताऊगी हमारे बारे म कितना गलत कहा जा रहा है। अम्बिका हाथ खीचकर उसे पलग की तरफ ले गई। बठो यहा। अम्बालिका बठ गई। उसकी दृष्टि खिड़की के उस

पिंजडे पर गई जिसमे कई लाल नामक छोटी चिडियाए फुदक रही थी। एक-दो रोओ मे चोच घुसाए सो रही थी।

अव पिंजडा देखने लगी। अम्बिका झुझलाई।

तुम इतनी उत्तेजित क्या हो? तुम तो मुझसे कहा करती हो कि मैं अशात रहती हू। अम्बालिका ने बहन को देखते हुए कहा।

महर्षि द्वपायन को निमत्रण देकर बुलाया गया। उन्हे राजमाता के महल म ठहराया गया। उनका स्वागत अत पुर के द्वार पर किया गया। हम सारे काय क्रमो स अलग रखा गया। पूरे नगर ने दशन लाभ किया क्या हम अवसर नही दिया जा सकता था? अम्बिका ने कहा। अवसर नही दिया गया, तो नुकसान क्या हुआ? अम्बालिका ने लापरवाही म प्रति प्रश्न किया।

राजमाता ने कल उनम एकात म बात की है।

धम-कम की बात की होगी। पान प्राप्त करने की इच्छा वुढाप म अधिक होती है।

तू व्यग्य कर रही है या अपना अनुमान बता रही है।

अम्बिका न मैं व्यग्य कर रही हू, न अनुमान बता रही हू। मैंने एक चीज जान ली है कि यहा वही होगा जो राजमाता चाहेगी और पितामह चाहेगे। जब वही होना है, तो जसा हो ठीक है। लेकिन जब मेरे पर आ गई तब मैं अपनी तरह देखूगी। बदिया का मन भी स्वतत्र होता है। विकल्प उनके लिए खत्म कर दिय जायें, पर फिर भी लोग जिन्दगी काट देते हैं—विकल्पहीनता म, अल्प विकल्पो के सहारे। बदी, विकल्प को मनोजगत मे खोज लेते हैं।

क्या तुझे या मुझे पुत्र की कामना है? अम्बिका ने पूछा।

मुझे भरपूर जीवन की कामना है। मैं पा सकती हू? मुझे कोई उसे पाने की स्वतत्रता देगा? यह तब हो सकता है जब मैं यहा से भाग जाऊ—मुक्त हो लू। अम्बालिका ने पीछे की गुदगुदी गद्दी के सहारे पीठ टेक दी।

अम्बिका अपनी रौ म थी—क्या कहा जा रहा है कि हम 'पुत्रकामा' है। हम अपने जीवन पर छाये अधेरे म भटक रही हैं, अपने से लड रही है

इससे किसी को क्या मतलब? अम्बालिका ने बीच म टोका।

अम्बिका मुझे सदेह है कि पितामह के मना करने के बाद महर्षि द्वपायन को इसीलिए बुलाया है कि वह सुझाव दें। राजमाता के मस्तिष्क म हम नही हैं, हमारी भावनाए महत्वपूण नही है उत्तराधिकारी का प्रश्न सर्वोपरि है।

तुम आज बिलबिला रही हो, जब मैंने कहा था मैं विद्रोह करूगी, तब तुम उल्टा मुझे भला-बुरा कह रही थी। अम्बालिका जसे सम धरातल पर आ ही नही रही थी।

क्या तुझस भी नही कहू? करना तो वही होगा जो करने को कहा जायेगा।

उसमे बाहर जा कैसे सकते है ?

फिर खामोश रहो। जानती हू तुम्हारे पास गुप्त रूप से सूचनाए आती रहती है— तुम मगाती हो। मैंने परवाह करना छोड दिया। सुन-सुन कर मस्तिष्क ही तो विचलित होता है। अपनी स्थिरता को क्या हलचल मे रखा जाय ?

तभी दासी ने सूचना दी, राजमाता आपसे मिलने आ रही हैं।

मेरा सदेह सही निकला—अम्बिका ने कहा।

क्या करना है—अभी भी बोल दो ? अम्बालिका ने पूछा।

बचपना मत दिखाना। न विरोध करना। राजमाता और पितामह एक है। पितामह जिद्दी भी है, यह ध्यान रखना। अम्बिका ठडी दीप थी जैसे अभी जो बोल रही थी वह दूसरी कोई थी।

सत्यवती परिचारिका के साथ कक्ष मे आइ। दोनो ने खडे होकर अभिवादन किया।

प्रसन्न रहो ! ईश्वर तुम्हारी मनोकामना पूरी करे ! कैसी परी-सी लगती है मेरी बहुए ! जैसे इद्र की अप्सरा हो। बैठ जाओ—मैं इस सिंहासन पर बैठ जाती हू।

राजमाता जिस सिंहासन पर बैठी, उन्ही के पास जमीन पर दोनो बैठ गइ।

पहले मैं तेरे कक्ष मे गई। उन्होने अम्बिका से कहा।

आप बुलवा भेजती हम आपके महल मे आ जाते। अम्बिका बोली।

मेरा महल आज कल ध्यान-स्थान और चर्चा-गृह बना हुआ है। मत्री, ब्राह्मण पुरोहित आते ही रहते हैं। सब परेशान हैं प्रजा भी। अपनी उद्विग्नता तो कह ही नही सकती।

अम्बिका और अम्बालिका चुप बैठी रही।

नारी का जीवन भी क्या अपना जीवन है। बचपन से लेकर बुढापे तक उससे अपेक्षा ही अपेक्षा की जाती है। वह देती रहे देती रहे। शायद इसी मे उसकी उसकी महत्ता हो।

दोनो सिर झुकाए सुनती रही। राजमाता को अहसास हुआ, प्रतिक्रिया मे हू हा भी नही आ रहा है।

तुम क्या सोचती हो ? स्त्री हवन कुडी से अधिक कुछ है जो आज भी सोखती है समिधा भी स्वीकारती है वह्नि मे वातावरण को सुगधित करती है। वह खुद भी कदाचित हवन सामग्री है।

आप सच कह रही है। अम्बिका बोली।

तुम क्या सोचती हो मेरी चचला ? राजमाता ने अम्बालिका के सिर पर हाथ फेरा।

मैंने जिन्दगी में देखा क्या है मां ! जब समर्पण का समय आया तब पाया कि दुर्भाग्य ने डैने काट दिये। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

राजमाता ने उसके सिर को अपने घुटने पर रख लिया। उसे सहलाने लगी।

इतना निराश नहीं हो बेटी ! जो तूने खोया वह मैंने भी खोया। सपना सपना का पक्ष है। दुःख स्थाई होकर नहीं ठहरता दृष्टि आशा भरी हो तो वसंत के झोंके भी आते हैं। पत्ते के झड़ने के बाद कोपल निकलती है—पत्तियां नया जन्म लेती हैं।

एक जन्म के बीच में दूसरा जन्म कैसे होता है राजमाता ? अम्बिका ने पूछा। लेकिन उसका अभिप्राय कहीं और था।

राजमाता शायद आशय समझ गई। पलभर के लिए विवर्ण भी हुई। पर अपने को छिपाकर बोली—एक जन्म में अन्दर दूसरा जन्म नहीं होता जीवन परिवर्तनशील निरन्तरता है एकरसता में से रस का उद्रेक होता है फिर चुकता है, फिर बनता है। मैं तुम दोनों का मन्तव्य जानने आई थी।

अम्बालिका ने धीरे-से घुटने से सिर हटा लिया था। वह सीधी होकर अब राजमाता को देख रही थी।

आपकी आज्ञा पर्याप्त है—माता की विवशता कहा। अम्बिका ने कहा।

तीनों में विशेष सतर्कता आ गई थी। कहने वाला को पता था क्या कहना है। सुनने वाली भी जानती थी उनसे क्या कहा जाना है।

महर्षि द्वैपायन को मैंने कल अपने कक्ष में भोजन के लिए निवेदन किया था। मैं उनसे धर्मसम्मत सुझाव लेना चाहती थी—कुरुवंश की आपद स्थिति पर। उन्होंने कहा, यदि विचित्रवीर्य की वधुएं किसी महर्षि से समागम प्राप्त करें तो यशस्वी पुत्रों की जननी बन सकती हैं। वह विचित्रवीर्य की संतान कहलाएंगी। उन्होंने भविष्यवाणी की है जो संतान होगी वह दीर्घआयु वाली होगी तथा कुरुराज भारत में शौर्य तथा प्रतिष्ठा वाला राज होगा। मां धन्य धन्य होगी चक्रवर्ती पुत्रों को पाकर।

अम्बिका और अम्बालिका ने एक दूसरे को देखा। राजमाता उनके देखने के ढब से पलभर के लिये शंकित हुई। पर तुरंत उन्होंने अपने को सम्भाला।

मैं जानती हूं इस स्थिति को किसी भी स्त्री द्वारा आत्मा से स्वीकार किया जाना कठिन है, पर तुम लोग इसे दान समझो। बलिदान समझकर स्वीकार कर लो। क्या मां की यह इच्छा नहीं मानोगी ? राजमाता आतुरता से दोनों के चेहरों को देखने लगी।

मौन ठहरा रहा।

मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं ना मत करना। राजमाता की आंखें डबडबा उठीं।

अम्बिका उनके आंसू नहीं देख सकी हिचकाते हुए बोली—मां आत्मा से अलग देह यदि उत्तराधिकारी दे देता है, मैं स्वीकृति देती हूं।

तुम नहीं बोल रही हो अम्बालिका ?

बोलने की गुंजाइश कहां है राजमाता ! विकल्प है ही कहां। आप स्वयं कह रही हैं कि किसी भी स्त्री की आत्मा से स्वीकार करना कठिन है।

पर अनुष्ठान में विघ्न पड़ सकता है यदि आत्मा साथ न हो। पुत्र कामना की शुद्ध इच्छा रखनी होगी और एकाग्र-समर्पण तन मन आत्मा से होना है। द्वैपायन ने यही कहा है।

यह कैसे सम्भव है ? अम्बालिका बोल पड़ी। उसके मुख पर एकायक वितृष्णा उभर आई।

बेटी वितृष्णा दिखाकर मुझे अपराधी मत बनाओ। मेरी स्वयं की आत्मा तुम्हारे पास आते हुए कांप रही थी। मैं स्वार्थी नहीं हूं। मैं हर्गिज़ स्वार्थी नहीं हूं। राजमाता का धैर्य टूट गया। वह रो पड़ी।

वातावरण एकदम भारी हो गया और दोनों को दबाव देने लगा। राजमाता को इस तरह से टूटा हुआ दोनों ने बेटे की मृत्यु पर देखा था। सत्यवती निढाल सी हो गई।

अम्बिका ने अम्बालिका को हाथ पकड़कर उठाया और दोनों राजमाता की अगल-बगल खड़ी हो गई। अम्बिका ने आंखों से आंसू पोंछे। चुप हो जाइये मां ! आपका दुःख हम नहीं देख सकते। अम्बालिका ने राजमाता का कंधा सहलाना शुरू कर दिया। उसके मुंह से शब्द नहीं निकल रहे थे जबकि वह भी राजमाता को दिलासा देना चाहती थी और आश्वस्त करना चाहती थी—वैसा ही होगा जैसा आप चाहती हैं। राजमाता चेतना शून्य हो गई पता नहीं चल सका।

(१३)

ऋषियों व पुरोहितों की परिषद में विशिष्ट विचार विमर्श के बाद सम्मति हो गई कि आपद् स्थिति को ध्यान में रखते हुए विचित्रवीर्य के क्षेत्र में संतानोत्पत्ति का अनुष्ठान किया जाय। पितामह तथा कृष्ण द्वैपायन दोनों इस आपातकालीन बैठक में उपस्थित थे। कृष्ण द्वैपायन ने पौराणिक संदर्भों के उदाहरण दिये। यह सम्मति प्रजा में प्रचारित कर दी गई। प्रजा से कहा गया कि इस मांगलिक अनुष्ठान की सफलता के लिए यज्ञ एवं प्रार्थना आदि करें। यह गुप्त रखा गया कि किस ब्रह्मर्षि द्वारा यह कार्य सम्पन्न होगा।

राजमाता प्रसन्नचित्त और उत्साह से द्वैपायन द्वारा बताई गई व्यवस्थाएं पूरी करवा रही थीं। द्वैपायन ने यज्ञ आरम्भ किया। यह निर्देश उनकी तरफ से दिया जा चुका था कि वह सप्ताह भर तक किसी से नहीं मिलेंगे। वह कठिन साधना में लीन थे।

अम्बिका तथा अम्बालिका व्रत व पूजन की निर्देशित प्रक्रियाओं से गुजर रही थी। एक ओर शुद्धिकरण का कार्यक्रम चल रहा था दूसरी ओर दासियों और परिचारिकाओं को यह आदेश था कि सौंदर्य-वृद्धि के लिए प्रसाधनों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाय। यथार्थ में अम्बिका और अम्बालिका का सौंदर्य निखर आया था—वैसा ही सौन्दर्य जैसा स्वयंवर से पूर्व निखरा था। जिन मंत्रों को जाप करने के लिए उन्हें दिया गया था उनका अद्वितीय आंतरिक प्रभाव वे दोनों अनुभव कर रही थी। मन का परिवर्तन क्या इस सीमा तक हो सकता है कि सारे द्वंद्व तिरोहित हो जाएं तथा भावनाएं स्वप्नवत कल्पना को जाग्रत कर दें! वह कैसी औषधियाँ थीं जिनके सेवन ने देह को कुंदन कर दिया था और हिमपातित काम को चरम उद्दीपन की स्थिति में उठा दिया था। आत्मा में एक अजीब-सा राग निस वासर बजता रहता था जिससे रोम रोम झूलता रहता था! यह अंतःकरण के किसी सुप्त स्रोत से फूटकर निकला था या कृत्रिम उत्फुरण था!

हरियाले वृक्षों को दोनों देखती तो हरीतिमा अंदर उगी हुई लहरती अनुभूत होती। पक्षियों को उड़ता, चहचहाता देखती तो उनकी कल्पना मुक्त उड़ान भरने लगती। हिरण खरगोश, तेज दौड़ते तो लगता मन उनके साथ कुलाचें भर रहा है।

यह ऋतुराज हममें कहाँ से घुस गया?—अम्बालिका ने अम्बिका से पूछा।

सो रहा था, जागकर खेलने लगा है। अम्बिका ने उत्तर दिया।

मधु-सा भरा रहता है आँखों में—अम्बालिका बोली।

मधु नहीं मद—जैसे मदकोष रख दिया हो किसी ने अंदर। अम्बिका ने अपनी अनुभूति कही।

राजमाता ने हम पर जादू टोना करवा दिया। अम्बालिका ने कहा।

करवाया कुछ भी हो सारे विकार तो हट गये। हम जो हैं, या हो गये हैं, क्या वैसा रहना नहीं चाहते? अम्बिका ने पूछा।

चाहते हैं। ऐसा ही रहना चाहते हैं। यही चाहते हैं कि यह भ्रम छूटे। अम्बालिका तुरंत बोली। आवेश में आकर उसने अम्बिका को कौली में भर लिया। उसे चूमने लगी। अम्बिका की देह सन सन करने लगी। नसें तपने लगीं। उत्तेजना असह्यता की सीमा तक आई तो उसने अम्बालिका को बल पूर्वक अलग कर दिया।

अम्बालिका काठ-सी उसके हाथों में थी। आँखों में रक्ताभा थी जैसे दूध भरी कटोरियों पर केसर तिर रही हो।

(१४)

अम्बिका का कक्ष। कई निश्चित स्थानों पर रख दिये दीपक प्रकाश कर रहे हैं। धूप तथा अन्य प्रकार की सुगंधों से प्रकोष्ठ गहगहा रहा है। पलंग पर

शुभ्र चादर बिछी है जिस पर गंधित फूल छितरे हैं। अम्बिका ने मन पसन्द, आकर्षक वस्त्र पहन हैं जिन पर आभूषण झमझमा रहे हैं।

शृंगार करवाते समय उसने मंविका से कहा था—सजाओ! ऐसा सजाओ की आगंतुक ऋषि का मन भ्रमर की तरह गूंज उठे।

मंविका ने जिस समय पिटारी खोलकर कलिया से गुथी वेणी और हाथ के सुमन कंगना को पहिनाया स्वयं अम्बिका अन्तः रागित हो उठी।

मैं कैसी लग रही हूं? उसने मंविका से पूछा।

इन्द्र सभा से उतरी मेनका। उसने खिलखिलाकर कहा।

अम्बिका तुरंत बोली—तब तो ऋषि अपने जन्म-जन्मान्तर की तपस्या का पुण्य पायेगा। तेरी शृंगार कला को सराहेगा।

किस ऋषि का भाग्य खुला है रानीजी? दासी ने पूछा।

कोई होगा द्वैपायन के आश्रम का तेजवान शिष्य। ब्रह्मचर्य से तेजस्वी होगा उसका मुख मंडल। तेरी भी व्यवस्था करा दूं राजमाता से कहकर? तू भी तो बला की सुन्दर है।

दासी लजा गई। ऐसी खिल्ली क्या उड़ाती हैं रानी जी।

खिल्ली नहीं उड़ाती। इन ऋषियों मुनियों का कोई ठिकाना नहीं। जब मन की लगाम छूटती है तब नारी की चिरौरी करते है। भोग के कुछ क्षण योग की तुला के पलड़े को आसमान में टांग देते हैं। नारी स्थानापन्न ब्रह्म हो जाती है। मुझे आज्ञा है जाने की। आगन्तुक के आने का समय हो रहा है। दासी ने हाथ जोड़े।

या अन्दर-कुछ कुछ होने लगा? अम्बिका ने हास्य किया।

दासी फिर लजा गई। उसकी उंगली स्वतः मुख तक गई। उसके दांतों ने उसे चाब दिया तो 'ऊई' कर पड़ी।

जा जा! अब तेरे वस का नहीं है ठहरना।

दासी वास्तव में पलटी और भाग गई। अम्बिका खिलखिला कर हंस पड़ी। फिर वह औषधि-पटिका तक आई उसे खोला, उसमें से दो गोलियां निकाली और गिटक गई।

वह बुदबुदाई—उड़ मन ऐसा उड़ की देह नयी हुई उड़ती जाये तेरे साथ। वह पलंग पर बैठ गई। कक्ष-द्वार की तरफ प्रतीक्षा से निहारने लगी। पर चैन कहां? थोड़ी ही देर में उकता गई। झरोखे तक आ गई।

नीले आकाश पर तारे छिटके थे। कहीं कहीं घटाओं जैसे बादल तैरते दीख रहे थे। झींगरों की झनझन हो रही थी। कोई मोर टुहुक कर रात्रि की शांति को हिला देता था।

वह देखती रही विस्मित-सी।

औषधि ने असर करना शुरू कर दिया था। कैसी थी वह औषधि? उत्तेजना जाग्रत करने वाली, या मादकता से आच्छादित करने वाली।

अम्बिका खड़ी नहीं रह सकी। लौट आई पलंग तक। पीठ का सहारा देकर बैठ गई। दृष्टि कक्ष-द्वार पर फिर टिक गई। पलकों पर भारीपन महसूस होने लगा था।

अरी क्या कर रही है! आने वाला ऋषि है। राजा नहीं कि तुझ सोती हुई को भी प्यार से सहला कर जगाएगा पर नाराज नहीं होगा। गुस्सा इनकी नाक पर रखा रहता है—शाप इनकी जबान पर।

अम्बिका चौंककर सीधी बैठ गई।

तभी उसे खड़ाऊं की खट-खट सुनाई दी।

वह सम्भलकर खड़ी हुई। चाप निकटतर आ गई।

वह दरवाजे तक आवभगत करने के लिए बढ़ी कि द्वैपायन अन्दर थे। खड़ी की-खड़ी रह गई अम्बिका!

कस्तूरी-से काले श्वेतकेशी दाढ़ी वाले वृद्ध ऋषि सामने खड़े थे। चेहरे पर उभरी हुई बड़े बीज सी आंखें चमक रही थीं। मछली की गंध का बफारा देह से छूटकर कक्ष की खुशबू को दबा रहा था।

सारी कल्पना हवा हो गई। मादकता जैसे उसकी हथेली पर रखी हुई थी ऋषि ने फूंक मारी उड़ गई।

उसने अपने को संभाला—आधा झुककर अभिवादन किया।

ऋषि ने संकेत से आशीर्वाद दिया। वह पलंग की तरफ अग्रसर हुए।

अन्दर से थर्राती अम्बिका उनके पीछे हो गई। चेहरे से कम विरूप पीठ थी।

ऋषि पलंग पर बैठ गये। संकेत किया शयन का।

वह काठ की मूर्ति सी संवेगशून्य पलंग पर बैठ गई—भय और आतंक उसे दबोचे जा रहा था। जैसे तीतर बाज के पंजों में हो।

उसने उन्हीं क्षणों में आध्यात्म की उदात्तता के किसी स्तर को जाग्रत करना चाहा परन्तु कुरूपता इतनी विकराल थी, दुर्गंध इतनी दमघोट थी कि उसका प्रयास विफल हो गया। ऋषि की दृष्टि पल-पल बदलती भाव छायाओं को देख रही थी।

अम्बिका ने सुरक्षित समझा लेट जाना और पलकों के कपाटों को जकड़कर बंद करना।

द्वैपायन के शुष्क होठों पर व्यंग्यात्मक मुस्कान प्रकट हुई फिर गायब हो गई।

उन्होंने आंख मूंदकर मंत्र पढ़ा। पुनरावृत्ति की। तब उन्होंने उस सौंदर्यवती के सुगंध देते शृंगार को देखा।

वह फिर मुस्कराए। इस मुस्कराहट म शायद काम की खिल्ली थी।

महर्षि आख मूदे, सिकुडती अम्बिका के सन्निकट लेट गये।

(१५)

यह सिफ राजमाता को द्वपायन ने बताया—अनुष्ठान पूणतया सफ्न नही हुआ।

कसा विघ्न हुआ ? सत्यवता न चिंतित होन हुए पूछा।

वही जिसका सदेह था। मुझे देखत ही वह बच्ची भयभीत हो गई। कदाचित् वह हमारी कुरूपता सह नहा सकी। उसन आखें बद कर ली। सगम काल में वह आखें बद किये रही।

इसका परिणाम क्या होगा ? क्या सतान नही जन्मगी ? राजमाता ने पूछा।

जन्म होगा। एक हृष्ट-पुष्ट बच्चे का जन्म होगा जो हर तरह से योग्य हा परन्तु वह जन्माध होगा। द्वपायन न उत्तर दिया।

महर्षि ! राजमाता जसे किसी पवत शिखर से फिसल पडी। उनका मुख उदासी की छाया म हो गया। भाग्य जब विपरीत हो तो हर प्रयास प्रतिकूल परिणाम देता है। अधा उत्तराधिकारी राज्य कम सभालगा ?

यह मात्र भाग्य का प्रश्न नही है प्रक्रिया दोष है राजमाता। मैंने पहले आग्रह किया था। द्वपायन ने सत्यवती को स्मरण करवाया। ग्राहक यदि ग्रहण के क्षणा म देह मन आत्मा और भावनाओ से उदात्त स्तर तक नहा पहुचा हागा तो ग्रहण अपूण होगा। यही अम्बिका के साथ घटित हुआ।

अम्बालिका भी प्रतीक्षा म है। राजमाता बाली।

सिफ प्रतीक्षा नही उस यह भी जानना होगा कि उसक लिए कौन प्रस्तुत हो रहा है। आत्मिक और भावनात्मक एकाग्रता से समपण करना होगा। द्वपायन के शब्दा म आदेश था। समय का अतराल जरूरी है ! उन्होंने आगे कहा।

सत्यवती कत्तव्यविमूढ-सी हो गई। वह जानती थी कि उसन अम्बिका से इस तथ्य को छिपाया था कि कौन प्रस्तुत होगा। अब उस उसकी प्रतिक्रिया का भी सामना करना पडेगा। अम्बिका अवश्य अम्बालिका को बतलायगी—तब ?

क्या विचार कर रहा ह राजमाता ? द्वपायन न सत्यवती को विचारलीन देखकर टोका।

बहुत कठिन स्थिति है महर्षि ! कृपया यह भविष्य गुप्त ही रखियेगा। अम्बिका को यदि भनक भी पड गई तो वह निराश हो जायगी। एसा न हो कि वह गभ को नष्ट करने का प्रयत्न कर।

वह कर नही सकेगी। द्वपायन ने दृढता स कहा।

मुझे सन्देही समझ लो। मैं उन दोनो को जानती हू। अत पुर की कायपद्धति,

सभा के निणय, या परिषद की राय लागू करने से भिन्न है। पितामह ने रोप दिखाकर कह दिया था—उन्हे मानना होगा। क्या मात्र आदेश से किसी की कामनाओ को बाध्य किया जा सकता है? फिर आपकी शत में आत्मिक सह भागिता है।

मैं मानता हूं राजमाता पुरुष कितना भी सवेदनशील हो जाय नारी की कोमलताओ को नही समझ सकता।

तब मुझ पर स्थिति को छोडिये। सत्यवती ने आग्रह किया।

अतराल का ध्यान रखना होगा। जब अनुकूलता पाओ, मुझे सदेश भेज देना। मैं चाहता हूं आश्रम चला जाऊं। कल व्यवस्था करवा देना।

जसी आपकी आज्ञा! सत्यवती ने हाथ जोडे।

यद्यपि अवश्य हू राजमाता मम्व धो से परे होकर भी लगता है जड नही कटती। द्वपायन ने सहज कहा, फिर हाथ जोड दिये।

सत्यवती का अत ऐसा हो गया जस दो चट्टानो के बीच से विकसित पीपल का पौधा झाक उठा हो।

(१६)

पक्ष गुजर गया लेकिन अम्बिका सामान्य नही हो सकी। उस रात्रि का अनुभव दु स्वप्न की तरह उससे चिपट गया। कई दिन तक वह गुम सुम शय्या पर पडी रही। शरीर से शक्ति जसे सूत ली हो किसी ने। वह पडी-पडी न जाने क्या सोचती रहती।

अत पुर म सुरसुराहट-सी फल गई—अम्बिका रुग्ण हो गई।

अम्बालिका अगर पूछती तो उसके आसू बह उठत। वह पलग पर बठी हुई अम्बालिका के अक मे अपना सिर रख लेती। वह धीरे धीरे उसके बालो मे हाथ फेरती, अम्बिका हाथ कसकर पकड लेती।

कुछ भी नही बताओगी? अम्बालिका हताश होकर पूछती।

अम्बिका उसे देखती विवश मेमने की तरह पर शब्द नही निकलते मुह से।

राजमाता को उसकी दशा पता चली थी वह दूसरे ही दिन उसके पास आई थी। अम्बिका न उन्हे सम्न दृष्टि से देखना चाहा था, पर उनके बेटी कहते ही, उनसे लिपट गई थी।

उन्होने कलेजे से लगा लिया था। उनकी पीठ सहलाती रही थी और लाड से पुचकारती रहा थीं। जसे चोट खाई बालिका को मा लेप लगा रही हो।

उन्होने ढाढ़स बधाया था—तू हिम्मत वाली है वीर है क्षत्राणी है—इस तरह कमजोर होती हैं कही महलो की रानिया? दासी और परिचारिकाए क्या सोचेंगी!

राजमाता ने राज चिकित्सक बुलवाया था और उपयुक्त इलाज करने का निर्देश दिया था।

अंत पुर म यही बात बनी थी कि अम्बिका अस्वस्थ हो गई है। यह घटना का बचाव था। मन्दिर म पूजा तथा यज्ञ का आयोजन हो रहा था यह घोषित करने के लिए कि उत्तराधिकार प्राप्ति का अनुष्ठान सफल हुआ।

राजमाता का हृदय ऐसा प्रकोष्ठ बन गया था जिसम सच्चाइया गुप्त थी। बाहर आने की स्वतत्रता उन्हे नही थी। लेकिन वह अन्दर उत्पात मचाये रहती थी।

जब तक अम्बिका कुछ सामान्य नही हुई, वह रोज उसके पास आती और पर्याप्त समय तक बैठती। उसे बताती कि उसने कितना कल्याणकारी कार्य किया है—कुरु वश के लिए, धर्म के लिए, राज्य के लिए व प्रजा के मगल के लिए। कृष्ण द्वैपायन महर्षि है उनकी सतान चक्रवर्ती और धरम ध्वजी होगी।

दु स्वप्न के समानान्तर राजमाता भविष्य का सुखद स्वप्न अम्बिका की कल्पना को देती कि वह उसमे रमने लगे।

स्वप्न ही तो स्वप्न से जीतते-हारते है।

समय के बीतने का प्रभाव था दिए गये स्वप्न का प्रभाव था या अम्बिका के अत की नैसर्गिक शक्ति—अमर शन शन हल्का होता गया। पर अब भी जैसे समय-कुसमय की लरज शेष थी।

अम्बालिका यह समझ गई थी कि उस रात कोई अघट घटना घटी है। परन्तु अम्बिका के बताये बिना वह क्से जाने।

राजा का भोग आसक्त पुरुष का भाग होता है। सम्भव है अम्बिका ऋषि के तेज को सम्भाल नही सकी हो। यानि वह उस तेजस के लिए सक्षम न हो सकी हो।

पक्ष के बाद भी आगे कई दिवस बीत गये। अम्बिका ने शय्या छोड दी थी। वह प्रात और सध्या उद्यान म घूमने जाने लगी थी। दासियो के अतिरिक्त अम्बालिका उसके साथ होती।

राजमाता भी अब थोडी निश्चित हुई थी। उन्होने सोच लिया था कि वह अम्बालिका से स्वय नही कहेगी। जानती थी अम्बालिका अम्बिका से अवश्य पूछेगी और वह उसको बतायेगी।

पता चल ही जाना चाहिए। द्वैपायन ने यहा तो कहा था कि उसे तन मन आत्मा और भावना से समर्पण करना होगा।

अम्बालिका की प्रतिक्रियाओ का निरीक्षण करना होगा। उपयुक्त मानसिकता को जानना होगा।

अम्बालिका की आतरिक और दैहिक स्थिति अजीब झकझोरे खा रही थी।

वर्षा के कभी कभी मूसलाधार बरसने म वह पूववत उद्दीप्त हो जाती थी। रोम राम कामनाओ स सेंकने लगता था। नसें उत्तप्तता म तन भी जाती थी। जी करता पहले की तरह अम्बिका को आलिंगन म भर ल। खिलखिलाकर निष्प्रयोजन हस। पर अम्बिका के उतरे चेहर और ठण्डेपन को देखकर स्वय अकुश म आ जाती।

तुम ऐसी ही रहोगी ? उसने सध्या के समय उद्यान म घूमते हुए पूछा।

तेरी तरह उछल वछेडी कस हो सकती हू। मैं मा होने वाली हू। अम्बिका ने उत्तर दिया।

मा होने के मतलव हर समय मुह लटकाये रहना नही है। पुत्र भी मुह लटकाय पदा होगा। देख वर्षा ने कसे हसन फूल दिये हैं उन पडा को। खुश रहेगी तो ऐसी सतान होगी। अम्बालिका ने कहा।

मन से तो खुश ही हू।

तप्त भी ?

हा, तप्त भी। उसी की भावना म रहती हू। वह पिता की तरह सुदर हो, पराक्रमी हो धर्मात्मा हो इसीलिए धार्मिक पुस्तकें पढती हू। अम्बिका न शात भाव स कहा।

पर फिर भी तरे चेहर पर उदासी रहती है। अम्बालिका ने कहा।

वह भी दूर हो जायगी धीरे धीरे।

मैं तुमस पूछना चाहती हू उस रात क्या हुआ था जो तेरी यह दशा हुई ? अम्बालिका न रुककर, अम्बिका को भी रोक लिया।

कल्पना और भावना के विपरीत घटित हुआ था जिसे मस्तिष्क सम्भाल नही सका था। वह क्षण भर का उद्वेलन भयावह स्वप्न बनकर अनुभूति चित्र बन गया। वही कभी कभी रात म अब भी डरा देता है। लेकिन अब छुटकारा पा रही हू। अम्बिका आग बढ गई।

रुक, अम्बिका ! वह उद्वेलन क्या था ? कौन ऋषि था ?

सावला कुट। सफेद दाढी मूछो स भरा चेहरा। आखें आग क अगारे। देह म मछली की गध। सब मेरी कल्पना के बिल्कुल विपरीत था। वह द्वार म जस घुसे, मैं डर गई। वह पल भर का दृश्य आज भी प्रत्यक्ष होकर आता है तो मैं आतकित हो उठती हू। वह कृष्ण द्वपायन महर्षि स्वय थे। अम्बिका एक सास म कह गई। फिर, जस उस याद आया। मैं उन्ह देख नही सकी। जो हुआ, हुआ। मेरी आखें बद रहा। राजमाता न इसीलिए तुम देखने क लिए नहीं चुनाया था—तुम उस दिन ठीक कह रही थी। अम्बालिका का स्वर बदल गया।

मुझे वहा बताया गया था कि ऋषि स्वय आएग। मैं समझ रही थी उनका

कोई शिष्य होगा। मेरी कल्पना में रह रहकर राजा विचित्रवीर्य का रूप घूम रहा था।

यह छल था। राजमाता ने ऐसा क्या किया? अम्बालिका के चेहरे पर तनाव आ गया।

छल उनकी तरफ से था या मेरी कल्पना का दोष था, कौन निश्चय करे। सतोष यही है कि महान महर्षि के तप के अंश से जन्मेगी। वह पूरी रात्रि मौन रहे और पौ फटने से पूर्व चले गये। मैं जागी तो अकेली शय्या पर थी। वह फिर आएगे यहां राजमाता बता रही थी।

मेरे लिए? अम्बालिका ने पूछा।

राजमाता ने यह नहीं बताया कि क्या। कदाचित्

मैं तयार रहूंगा। महर्षि इस तरह से मौन आकर, मौन नहीं जा सकेंगे। अम्बालिका दृढ़ता से बोली।

अम्बालिका तू इतना आवेश में क्या हो जाती है? मुझे तुझसे भय लगता है। वह ऋषि हैं। ऋषि का वरदान फलीभूत होता है शाप नाश करता है। अम्बिका जैसे घबरा गई।

तुझ में मुझ में अंतर है अम्बिका। वह किशोरावस्था से है। तूने मुझे वह बता दिया जिसे मैं कभी से तुझसे जानना चाहती थी।

चल अब लौट चलें। पर तू उदास मत रहा कर मुझे दुःख रहता है। अम्बालिका के दोनों हाथ अनायास खुल गये।

अम्बिका उसके हाथों में पहुंच गई जैसे वह सुरक्षा के हाथ हों।

(१७)

माह बीत रहे थे। राजमाता सत्यवती उद्देश्य को मन में रखे स्थिति को समझ-बूझ रही थी। अम्बालिका के कहन-सुनन की सारी सूचनाए उनके पास पहुंचती रही हैं। अंतःपुर की सामान्य जिंदगी का भी अपना ताना-बाना है। राजमाता, रानियां, उनकी प्रिय दासियां परिचारिकाएं सब अपने अपने कर्त्तव्यों में लगी रहती हैं। ऊपर से ऐसा लगता है एक महल के अंतरंग जीवन का संबंध दूसरे से कटा हुआ है पर वास्तव में ऐसा नहीं है। सूचनाए सरपट उड़ती सम्बंधित स्थानों पर पहुंच जाती हैं। गुप्तचरों का पता नहीं चलता किनके द्वारा होती है, सबके निजी छद्म जरिये हैं।

माह चल रहे हैं सत्यवती की चिंता बढ़ रही है। अम्बिका के संतान होने से पूर्व उसे द्वैपायन को निमंत्रित करना होगा अम्बालिका के लिए। द्वैपायन के बताये भविष्य को उसने सिर्फ पितामह को बताया—भीष्म महर्षि कह गये हैं अम्बिका के बलशाली बुद्धिमान धर्मात्मा पुत्र होगा पर वह जन्मांध होगा।

जन्माध राजकुमार राज्य कैसे करेगा ? समस्या तो वैसी की-वैसी रही।

पितामह भी चिंतित हो गये थे।

मैंने द्वैपायन से प्रार्थना की थी कि वह अम्बालिका को भी अनुगृहीत करें। उन्होंने कहा था—अनुकूल समय पर स्मरण कर लेना, मैं आ जाऊंगा।

कुरु वंश के ग्रह अभी संकट में चल रहे हैं। भीष्म ने कहा था। लेकिन फिर आगे कहा—भविष्य उज्ज्वल है राज ज्योतिषी ने बताया है मुझे।

दिलासा देते रहना तुम्हारी प्रवृत्ति है। सत्यवती बोली थी।

मैं खुद भी भविष्य से बहलता और प्रेरित होता हूं। दूसरी प्रेरणा आप हैं। भीष्म, कभी कभी तुम मुझे कुशल कूटनीतिज्ञ लगते हो। कभी गम्भीर ज्ञानी कभी बड़े सामान्य से लगते हो। सहज।

मेरी नियति यही है। पितामह ने कहा। फिर मुस्कराए।

क्यों ? मुस्कराये क्या ? इसमें रहस्य है क्या ? सत्यवती ने पूछा।

रहस्य नहीं, लेकिन वृद्धा की अज्ञानता जरूर है। मेरे विरुद्ध निरंतर षड्यंत्र चलाया जा रहा है विरोधी राजाओं द्वारा। उनसे सहानुभूति रखने वाले, या उनके क्रीत दलाल हमारे राज्य में भी मौजूद हैं। वह गल्पिकाएं गढ़ गढ़ कर चरित्र हनन के लिए प्रसारित रहते हैं। भीष्म ने सहजता से कहा।

तुम उनसे निपटते क्यों नहीं ? सत्यवती रोष में आ गई।

दंड विधान या राज्य प्रहार, दोनों ही उनके प्रचार का समर्थन होगा। यह फैलाया जा रहा है कि भीष्म कुरु राज्य का नियंत्रण अपने हाथ में रखना चाहते हैं। उन्होंने विचित्रवीर्य की चिकित्सा में जानकर असावधानी बरती। अम्बा, काशिराज, भृगु ऋषिगण मेरे विरुद्ध अन्य राज्यों को तैयार कर रहे हैं।

सेना से जाकर सबक सिखाओ। यह साबित कर दो कि भीष्म का पराक्रम सोया नहीं है। यह आवश्यक है भीष्म वरना शत्रुओं के हौसले बढ़ जायेंगे। कांटे को फूटा होने से पहले तोड़ना रणनीति है। सत्यवती आवेश में हो गई।

राजमाता आप क्यों आवेश में आती हैं ? राज्य संचालन में झूठे-सच्चे आरोपों का सामना करना होता है। मेरे उत्तरदायित्व और संकल्प मेरे साथ हैं। मैं क्या आधारहीन आरोपों की परवाह करता हूं ? पितामह ने राजमाता को ठंडा-सीला करना चाहा।

भीष्म, तुम्हारा-सा संयम और दृढ़ता मैं कैसे लाऊं ?

निस्वार्थ कर्म को अपना कर। यह मानकर कि हम निमित्त मात्र हैं। बहु अंश के कल्याणकारी उदय की पूर्ति में यदि अल्प लोगों के हित प्रभावित होते हैं तो यह न्याय कि विवशता है। यदि दूसरे मुझे महत्त्वाकांक्षी मानते हैं तो वह उनकी दृष्टि है। वह क्या समझें कि भीष्म की नियति ब्रह्मपि वचन की

ोनी चाहिए थी पर वह फंसता रहा है मिथ्या मरीचिकाओं में। यही तो विडंबना है जीवन की भ्रमजाल की। पितामह ने गहरी निश्वास खींची। उनकी दृष्टि जैसे लोकोत्तर होकर किसी अदृश्य को चाहने लगी।

भीष्म, अतिरिक्त गम्भीर मत होओ तुम्हारा अद्वितीयपन भी डराता है। राजमाता वास्तव में सहम गई।

भीष्म, ने उन्हें देखा, मधुरता से बोले—राजमाता कोई स्थान तो हो जहां मैं अपने से द्वंद्व करता हुआ व्यक्ति मन की कह सकूं।

भीष्म जब तुम जैसे आत्मजयी की यह दशा है तो हम तो

देह धर्म की अनिवार्यता है। भीष्म तुरंत बोले। न्याय और अन्याय धर्म अधर्म अध्यात्म और भौतिकता पाप और पुण्य मनुष्य में ही द्वंद्व है। इतिहास यदि बनता चलता है तो संस्कृति भी नये सत्यों को सामने रखती है। हम निमित्त भी है, और कर्ता नियता भी।

राजमाता को भीष्म कभी कभी संजीवनी सी पकड़ा देते हैं। घोर टूटना को सहता हुआ अंत बल पा लेता है। कर्ता होने का अभिशाप वरदान प्रतीत होने लगता है। तब यह प्रश्न छोटा होता जाता है कि जो प्रतीत है वह सत्य है या सत्याभास।

राजमाता ने अम्बालिका से बात करने के पूर्व अम्बिका का सहारा अपनाया। उन्होंने अम्बिका से कहा कि वह अम्बालिका को बता दे द्वैपायन को निमंत्रण भेजा जा रहा है। उसको भी इस सार्वकालिक मांगलिक कार्य के लिए तैयार होना चाहिए। इसी में उसका जीवन सार्थक बनेगा प्रजा का हित सधेगा।

अम्बिका ने जब अम्बालिका को समझाना चाहा तो उसे लगा वह कहीं अंदर से विरोधरहित है। मां बनने की कामना को जाग्रत करना चाहा तो लगा वह पहले से पनप चुकी है।

अम्बालिका ने उससे कहा—मैं हर परिस्थिति के लिए तैयार हूं अम्बिका। देह की कामनाएं खुली हुई हैं पुत्र की इच्छा बलवती है। मैं भी उस स्थिति में गुजरना चाहती हूं जिससे तू गुजरी है। मैं प्रजाहित या राज्यहित आदि कुछ नहीं जानती हूं बस मेरे अकेलेपन का सहारा मिलेगा और मां होने का अधिकार प्राप्त होगा यही पर्याप्त है।

अम्बिका ने राजमाता को ज्यों का त्यों बता दिया था। राजमाता को साहस मिला था इस उत्तर से। वह अम्बालिका से मिलने का तय कर एक दिन उसके पास आई। इधर उधर की बात कर उन्होंने मुख्य बात कही।

बेटी, स्त्री की सार्थकता मां होने में है।

मैं चाहती हूं। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

द्वैपायन महर्षि की तप-तपस्या और ज्ञान अनंत है। ऐसे ब्रह्मर्षि की संतान अद्वितीय होगी।

आपने यह रहस्य अम्बिका को क्यों नहीं बताया था कि आपने किस ऋषि को नियुक्त किया है? अम्बालिका ने अचानक प्रश्न किया।

राजमाता के लिए प्रश्न अप्रत्याशित था परन्तु फौरन बोली—कोई विवशता हो सकती है।

विवशता हमारी स्थिति में ही है, राजमाता!

तुम्हारी स्पष्टवादिता और असहमतियों का मैं आदर करती हूं। परन्तु सब का उत्तर एक है। तुम्हें भी किसी दिन राजमाता की भूमिका लेनी होगी। तब अपने आप समझ जाओगी।

अम्बालिका निष्प्रश्न हो गई।

राजमाता ने मीठे स्वर में कहा—द्वैपायन के अनुष्ठान की शर्त है अम्बालिका कि तुम तन मन आत्मा और भावना से उनमें एकाग्र होओगी। तभी सफलता मिलेगी। मैं पक्ष पर्यन्त द्वैपायन का आमन्त्रित कर रही हूं। तुम्हारी स्वीकृति है?

प्रयास करूंगी, राजमाता। मेरे प्रश्नों को अन्यथा नहीं लीजियेगा। यह मेरी स्वाभाविकता है। आप मेरी मां भी हैं।

राजमाता ने जैसे गढ़ जीत लिया। वह हर्षित हो उठी थी। आशीर्वाद देकर चली गई।

(१८)

पितामह अपने आराधना गृह में आसन पर ध्यान मुद्रा में बैठे थे। आंखें मुंदी हुई थीं। होंठ मंत्र का सस्वर जाप कर रहे थे।

प्रात का समय ठण्डी बयार व चिड़ियों की चहचहाहट से संकेतित हो रहा था। नहीं वृक्षों के पत्तों की मर मर ध्वनि और प्रसार लेता हुआ उजाला दिन के कली के समान खुलने का आभास दे रहा था। प्रकृति शांत स्वच्छ और ताजी थी। दूर पशुशाला में गायों की आवाज ताल की तरह कभी इकहरी, कभी सम्मिलित सुनाई पड़ जाती थी। पितामह की एकाग्रता स्वर माध्यम में मन से गुजरित अपने ब्रह्माण्ड में विचर रही थी। अक्षरों का घोष उस अद्वितीय ब्रह्माण्ड में निनादित था। फिर पितामह के होंठों ने हिलना छोड़ दिया। मंत्र कदाचित अंत में उच्चरित हो रहे थे। अंत का ब्रह्माण्ड मंत्र ब्रह्माण्ड से प्रतिध्वनित होते होते एकाकार हो गया था। मंत्र के स्वर शांत हो गये थे। मानसिक बिम्ब शून्य में घुल चुके थे। वह तेजस बिंदु भी जो सूर्य की लघुतम कण-आकृति की तरह तीव्र गति में घूम रहा था अब वह तिरोहित हो रहा था। पद्मासन में स्थिर देह कदाचित आधार मात्र थी। सांस प्राणवायु की लय के अधीन होकर उसकी गति

ल रही थी। देहातीत होकर ध्यान स्वय म अस्तित्व का चिह्न बन गया था। वह इसी तरह बठे रहे।

उसके बाद जस वह ऊर्ध्व पडाव धीरे धीरे देह चतना की ओर उतरने लगा। फिर देह चतना बढने लगी। इन्द्रिया सक्रिय हुइ। पितामह ने आखें खोली। सामने की दीवार दखत रहे कुछ पल। आसन खोला। खडे हुए। गवाक्ष के निकट आकर ताजी-सी प्रकृति को देखन लगे।

उजाला और उजला हो गया था। सूर्योदय के होने की पूव सूचना वातावरण द रहा था।

पितामह बाहर आ गये। वक्षो के बीच घूमने लगे। फिर वह शस्त्राभ्यास के स्थान पर आ गये। व्यायाम करने क पश्चात उन्होने धनुष और तरकस उठाया। बाणो स सधान करने लग। किसी मवरे की गुजार सुनाई दे रही थी, पर वह कहा है दीख नहीं रहा था।

पितामह न गुजार पर एकाग्रता ली गति और दूरी का मानसिक अनुमान लिया, और बाण छोड दिया।

गुजार बद हो गई।

शस्त्राभ्यास करक वह पुन भवन म लौट आये।

पितामह अल्पाहार लन तथा विश्राम करन क पश्चात उस विशिष्ट कक्ष म आ गय जहा दशन करन वाले अपनी जिज्ञासाओ का समाधान प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले, या मत्री अथवा सम्मानित जन आत थ। प्रजा के सामान्य व्यक्ति भी इसी समय पितामह स मिलते थे तथा अपनी समस्या उनके सामने प्रस्तुत करते थे। सेनापति को यदि किसी विषय पर राय लेनी होती थी तो वह इसी कक्ष म आकर मिलत थ। जभी समस्या होती थी पितामह उसका समाधान बताते थे। आवश्यकता पडने पर व्यवस्था प्रभारियो को आज्ञा देत थ।

पितामह का यह दनिक कायक्रम था जो बडा व्यस्त तथा विविध होता था। यहा वह अपन से भी भिन्न कुशल शासक होते थे।

राजमाता न सूचना करवाई थी कि महर्षि कृष्ण द्वपायन को आमन्त्रित करना है तथा उनक स्वागत की व्यवस्था करनी है। पितामह उसी की व्यवस्था कर रहे थे। उन्होने सबधित प्रभारियो को बुलवाया था। जस जसे प्रभारी आते थे आदेश पात जात थ।

अन्त म परिषद क म त्री और राजपुरोहित आय हैं।

राजनीतिक सूचना म उभर कर आया कि पितामह के विरुद्ध कुछ राजा सगठन बनाने का प्रयास कर रहे हैं। विद्रोह के लिए उन्होन वनो म रहने वाली जाति और उनके सरदारो को भडकाया है।

आप सबकी क्या राय है ? भीष्म पितामह न पूछा।

एक वृद्ध अमात्य बोले—अब शांति रखने से काम नहीं चलेगा। ऐसे राजाओं में से किन्हीं दो से अधीनता स्वीकार कराने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। पहले संधि करने का प्रस्ताव रखा जाये यदि वे नहीं मानते हैं तो युद्ध करना चाहिए।

सेना के साथ प्रस्थान करने का समय क्या उचित है? हमारी खुद की प्रजा राजा न होने का असंतोष पाले हुए है। पितामह ने प्रश्न किया।

मुख्य सेनापति ने आश्वस्त कराया—सेना किसी दुविधा में नहीं है। उनकी आस्था आपके शौर्य में है।

पर मैं अभी नहीं जा सकता। मेरी इच्छा भी नहीं है। दुश्मनों को यह कह कर संगठित होने का अवसर मिलेगा कि यह भीष्म पितामह की प्रसार प्रवृत्ति है।

पहले भी कब नहीं कहा। चित्रांगद की अल्पायुता और उनके द्वारा किये गये युद्ध दूसरों की दृष्टि में आपकी योजना के हिस्से थे। दूसरे आमात्य ने कहा।

मैं तो अपने में आश्वस्त था। इस समय का रण यदि मुझे करना होगा तो मेरे ही नाम मढ़ा जायगा। मैं आपको बताना चाहता हूं भविष्य में भी मैं राज्य के संरक्षक की भूमिका निभाना चाहता हूं—राजा की नहीं। मैं तभी सैन्यसंचालन करूंगा जब कोई राजा आक्रमण करने की विवेकहीनता दिखायेगा।

राज पुरोहित ने पितामह के सामने दूसरे संदर्भ की जन चर्चा रखी। नहीं कहा जा सकता यह कुछ विशिष्ट ब्राह्मणों की राय हो। उन्होंने कहा—प्रजा में विचार है कि क्योंकि अम्बिका व अम्बालिका रानियां अभी युवा आयु की हैं, उनका पुनर्विवाह कर दिया जाये। कुरुवंश की बेल फिर से फूलेगी।

भीष्म पितामह के मुख के भाव बदल गये। उनके चौड़े माथे पर सिकुड़नें प्रकट हुई तथा आंखों में गुस्सा झलक आया। वह तीव्र स्वर में बोले— आपद धर्म में किसी स्थिति को स्वीकार करने का मतलब यह नहीं है कि सामान्य मान्यताओं का अतिक्रमण किया जाय। क्या अम्बिका और अम्बालिका का पुनर्विवाह राज वंश में विधवाविवाह का उदाहरण नहीं बन जायगा? प्रजा में यह विचार हो या उसके नाम से कुछ ब्राह्मण पुरोहित अपनी ओर से दबाव डालना चाह रहे हों, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। राजमाता की आज्ञा से महर्षि व्यास द्वारा अम्बिका कृतार्थ हो चुकी है—अम्बालिका के लिए महर्षि आएंगे। उनके स्वागत और उनके द्वारा किये जाने वाले अनुष्ठान का प्रचार प्रजा में पूर्ववत् किया जाय। रानियों के विवाह का प्रस्ताव मूर्खता है। क्या कोई भी राजा राजकुमार घर जामाता रह सकना स्वीकार करेगा?

पितामह की तेवर समझकर राजपुरोहित सन्न रह गये। उन्हें यह कल्पना नहीं थी कि भीष्म इस कदर क्रोध में आ जायेंगे। क्षण भर के लिए मौन छा गया।

पितामह जो अपने को शांत करने का प्रयत्न कर रहे थे, अपनी उद्विग्नता

पर काबू नहीं पा सके। वह उठे और कक्ष छोड़कर अन्दर चले गये। एक अभेद्य आतंक माहौल पर हावी हो गया। उपस्थित लोगों के पास जाने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं था।

पितामह विश्राम-कक्ष में आकर लेट गये। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि वह इस तरह से संतुलन क्यों खो बैठे। उनका अंत ऐसा कैसा हो गया है कि इन बहनों की बात आते ही उत्तेजित हो जाता है। परिस्थितियाँ क्या सहज शान्ति को इस सीमा तक छिन्न भिन्न कर देती हैं। कहीं यह उनके किसी तिक्तपूर्ण अनुभव का प्रतिफलन तो नहीं है।

(१९)

वर्षा भी कितनी मधुर लगती है! अम्बिका बोली।

हाँ पर जब कई दिन तक झड़ी-सी लग जाती है तब जी ऊबने लगता है। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

फुहारों में पक्षी पशु वृक्षों में छुपे रहते हैं, रुकते ही कलरव कर उठते हैं। अम्बिका बोली।

प्रकृति मुग्धा नायिका सी जो हो उठती है। अम्बालिका ने टिप्पणी की।

हंस बत्तखें मछुवा पक्षी सरोवरों पर एकत्र हो जाते हैं—जल में तैरते हैं। उसने आगे जोड़ा।

यह मछुवा-पक्षी कौन-सा होता है। अम्बिका ने पूछा।

बड़ा सुन्दर होता है। रंगीन। लम्बी चोंच। पानी की सतह पर उड़ता है। मछली देखते ही डुबकी मारकर झपट लेता है। चोंच में दबाकर वृक्ष की टहनी पर बैठ जाता है। मछली तड़पती रहती है वह निगल जाता है। अम्बालिका बोली।

देख एक साथ दो मोर कैसे पंख फैलाकर नाच रहे हैं। अम्बिका ने नाचते हुए मोरों की तरफ संकेत किया।

मोरनी को रिझाने के लिए। अपने सौंदर्य में भटका हुआ है पैरों को नहीं देखता, कितने कुरूप हैं। अम्बालिका ने सुन्दरता में असुन्दरता की व्याख्या की जैसे।

सम्पूर्ण सुन्दर कौन होता है—अपूर्णता सृष्ट हुए की नियति है। अम्बिका ने कथन-सा कह दिया। मन क्या कभी-कभी स्वयं दर्शन बोलता है—स्वभावतः?

पर अपने को सम्पूर्ण सुन्दर कौन नहीं मानता। स्वयं पर रीझना मनुष्य की विशेषता है—चाहे स्त्री हो या पुरुष। इसी रीझ में वह अपनी असुन्दरता को गौण करता हुआ स्व में लिपटा रहता है। न रहे तो जिए कैसे? दूसरे उसे नगण्य करने में कसर नहीं छोड़ते। अम्बालिका बोली।

नगण्यता के पूरक सपने होते हैं। उनके फलने की आशा नगण्यता को निष्कासित कर देती है—तब रह जाते हैं सपने, अभिलाषाएं, उनमें रमा रहने वाला मन। फिर पल-पल सुन्दर लगता है। प्रकृति भी सुहागिनी, चंचला पुष्पवती, लगती है। जैसे पुत्र को जनने की आकांक्षा में विस्मित मां। अम्बिका प्रकृति को प्रमुदित हो निहारने लगी। उसी में खोयी-सी गई।

अम्बालिका अपने विचारों में खो गई। दोनों में से किसी को ख्याल नहीं रहा कि वे बोलते-बोलते रुक गई हैं और अपने में खो गई है।

दोनों मोर पंख फैलाये नाचे जा रहे थे। तभी वृक्ष से उड़कर मोरनी धरती पर आई। वह मोरों के पास घूमती रही। कभी रुककर मोरों को देखने लगती थी। कभी घास में घुमाकर दाना खोजने लगती थी या कीड़े।

अम्बालिका, दासियां कहती हैं आपके अद्वितीय सुन्दर पुत्र होगा। चक्रवर्ती और अध्यात्म में ऋषि तुल्य। मैं तो चाहती हूं होते ही बड़ा हो जाये। क्या महर्षि व्यास वरदान में ऐसा नहीं कर सकते? अम्बिका कह रही थी।

अम्बालिका अपनी हंसी नहीं रोक सकी।

हंस क्या रही है? मैंने जो पूछा है उसकी पुष्टि कर।

अगर द्वैपायन की तरह कुरूप और मछली की गंध वाला हुआ तो? अम्बालिका बोली फिर हास्य किया। उसको चन्दन और केशर के उबटन से रगड़ना सुगंधित जल में स्नान कराना बड़ा होते होते शायद सुन्दर और सुगन्ध वाला हो जाये।

तू सीधे तरह से कभी नहीं बोलती। तू क्या करेगी? तेरे लिए भी तो उनके पास निमंत्रण जा चुका! अम्बिका ने खीझकर कहा।

मैं तेरी तरह हवा में नहीं उड़ती। मैं क्या करूंगी, मैं धार चुकी हूं मन में।

अम्बिका ने भयभीत हो पूछा। क्या लौटायेगी उन्हें?

नहीं।

तो

मैं अपनी इच्छाओं और कामनाओं को इतना प्रबल करूंगी अपनी आत्म शक्ति और सौंदर्यभावना को इतना उत्कृष्ट करूंगी

उनका तेज असहनीय है। अम्बिका ने टोका।

होने दे। मैं उनकी कल्पना को रोम रोम में बसा लूंगी।

किसकी?

जिनका सौंदर्य कामदेव को पराजित करता था—विचित्रवीर्य। मेरी इस देह के वही स्वामी रहे हैं—मेरे मन के भी।

तब चक्रवर्ती पुत्र नहीं होगा। भोगलिप्सु होगा।

अम्बिका तुम जितनी शुद्ध हो मन से, उतनी ही अशुद्ध भी। क्या मुझसे ईर्ष्या

छिपा रही हो मन में ? या अपने दिलासे खोजती रहती हो ? दोनों स्थितियां हम एक दूसरे से दूर करेंगी। तुम बड़ी हो मुझसे। अम्बालिका गम्भीर हो गई थी।

अम्बिका का वास्तव में ध्यान नहीं रहा था वह क्या कह गई थी। उसने अम्बालिका का दया स्नेह मां झलका आंखों में। बोली—मेरा चित्त स्थिर नहीं रहता अम्बालिका। कभी कल्पनाओं में उड़ता है कभी संदिग्धताओं में फंस जाता है। तेरे सहारे मैं रही हूं। तू मुझसे श्रेष्ठ है साहसी है मैं जानती हूं।

बस, अधिक नहीं। वहीं से फिर शुरू हो—वर्षा कितनी मधुर लगती है। पशु पक्षी वृक्ष में दुबके रहते हैं। वर्षा के ठहरते ही सुरक्षित स्थानों से बाहर निकल आते हैं। स्वनते हैं, कलरव करते हैं। मोर पंख छितराकर नाचते हैं। कोयल कुहकती है। सरोवर पूर जाते हैं। फूल रंगों के छींटे बिखेर देते हैं। विधाता ने चाहा तो तेरे अद्वितीय सुन्दर पुत्र होगा—चक्रवर्ती ऋषितुल्य जो कुरुवंश का तेजस्वी सूर्य बनकर चमकेगा।

अम्बिका सुन रही थी विस्मित-सी। यह अम्बालिका किन तत्वों की बनी हुई है—धरती, वायु, अग्नि, तरलत्व या आकाश।

(२०)

महर्षि द्वैपायन के आने की तिथि की स्वीकृति आ गई। मन्त्रियों और विशिष्ट ब्राह्मणों का दल उन्हें लाने के लिए भेज दिया गया। नगर में पहले की तरह स्वागत की तैयारी की आज्ञा प्रसारित कर दी गई। प्रजा से कहा गया कि प्रार्थनाएं तथा यज्ञ आयोजित करें कि कुरु राज्य मानवत उत्तराधिकारी प्राप्त करे। द्वैपायन ऋषि छोटी रानी अम्बालिका में नियोग करेंगे।

राज भवनों और नगर में अनुष्ठान लहर पुनः दौड़ गई। दूर दूर के ग्रामों से पुरुष व स्त्री नगर में महर्षि के दर्शनार्थ आने लगे। वर्षा की अनिश्चितता के कारण विशेष प्रबंध किया गया। वैश्यों ने अपना कोष आवभगत के लिए खोल दिया। ठहरने व सुपथ भोजन के भंडार स्थापित किये जाने लगे। गज अश्व, रथ आदि की सज्जा के सामान साफ-सुथरे किये जाने लगे।

रनिवास में भिन्न प्रकार की लहर थी। अम्बिका के वक्त बहुत कुछ घोषित होते हुए पर्याप्त अघोषित था। राजमाता किसी अनपेक्षित शंका से ग्रस्त थी। पर अब वह मुक्त होकर व्यवस्था कर रही थी। प्रजा में यह सूचना भी प्रसार पा चुकी थी कि अम्बिका ने गर्भ धारण कर लिया है तथा शीघ्र मां का पद प्राप्त करेगी।

अम्बिका स्वयं राजमाता सत्यवती के साथ सहयोग कर रही थी। अम्बालिका के शृंगार में नियुक्त दासियां विशेष सेवा में लगी थीं कि अम्बालिका का

वा सौम्य इन्द्र की किसी भी अप्सरा से उन्नीस न पड़े। अम्बालिका खुद भी इस तरफ से अत्यंत सचेत थी। इसके अतिरिक्त राजचिकित्सक द्वारा प्रस्तावित औषधि का सेवन निरंतर चल रहा था—यह राजमाता की ओर से व्यवस्था थी।

भीष्म पितामह महर्षि की व्यवस्था अपनी देख रेख में करा रहे थे। अब की एक विशेष यज्ञ द्वैपायन द्वारा सम्पन्न किया जाना था जिसके लिए वह आश्रम से ऋत्विक ला रहे थे। इनके अतिरिक्त अन्य बहुतों को निमंत्रित किया गया था, वेदियां बनवा दी गई थीं।

अम्बालिका दैहिक, मानसिक व आत्मिक रूप से स्वस्थ अनुभव कर रही थी। उसने अपनी दिनचर्या में पूजन तथा ध्यान जोड़ लिया था।

राजमाता एकांत में प्रार्थना करती—जगत नियंता, अपना वरद हस्त कुरु वंश पर रखो! ऐसा पुत्र अम्बालिका को प्रदान करो जो भरता की कीर्ति को सुदूर देशों तक पहुंचाये।

निश्चित दिन महर्षि कृष्ण द्वैपायन का पदार्पण हुआ। नगर में पूर्ववत उनका भव्य स्वागत हुआ। दान-दक्षिणा यज्ञ अनुष्ठान का क्रम प्रारम्भ हो गया। द्वैपायन को भवन के अंतःपुर के भाग में ठहराया गया। पितामह पुरोहित तथा ब्राह्मण वर्ग, कर्मचारी व दास-दासी वर्ग, व्यवस्था तथा सेवा में लग गये। राजमाता ने महर्षि के दर्शन किये। द्वैपायन ने फिर बड़ी अम्मा को चकित करने वाला व्यवहार दर्शाया। उन्होंने प्रथम साक्षात्कार में राजमाता सत्यवती के चरण स्पर्श किये। राजमाता ने आशीर्वाद दिया। सत्यवती अब की प्रसन्नचित्त तथा उत्साही थी। दुविधा नहीं थी तो चित्त मुक्त था।

महर्षि, अबकी मनोकामना निर्दोष पूरी होगी? उन्होंने विनती की।

विधाता पर विश्वास रखो। कामनाओं की मरीचिका तो अनन्त है। महर्षि ने उत्तर दिया।

मन बंधता नहीं महर्षि, पंछी की तरह भविष्योन्मुख ही उड़ता है।

उसके परों में सुनहरी डोर बंधी है उसे पहिचाना? भविष्य हमेशा चितकबरा होता है। इसलिए उसे इसी रूप में स्वीकारना चाहिए, राजमाता!

सत्यवती उदास हो गई। उन्होंने समझा महर्षि किसी अप्रिय होनी को छिपा रहे हैं। वह बोली—महर्षि आध्यात्मिक शक्ति से ऐसा प्रयास करें कि अब निराश न होना पड़े। अम्बिका पुत्र की कामना को कल्पनाओं से पोस रही है। उसे क्या पता वह अंधे पुत्र को जन्म देगी। यह सत्य सिर्फ मैं और पितामह जानते हैं।

तुम्हें उसे बता देना चाहिए था, राजमाता! आखिर एक दिन तो वह सत्य

प्रकट होना ही है। अब समय भी परिपक्व होता जा रहा है।

साहस नहीं हुआ महर्षि। यदि यह सत्य उसे बता देती तो अम्बालिका कदापि तयार नहीं होती। वह बच्ची है। पर साहसी है भावनामयी है, जिद्दी है।

द्वैपायन चौंके। क्या उसे भी नहीं बताया है कि नियोग के लिए मैं प्रस्तुत होऊंगा?

बता दिया है। वह पूर्ण रूप से तयार है।

समर्पण जिस कोटि का होगा फल उसी कोटि में प्राप्त होगा। इतना अवश्य है कि उसका पुत्र कुरु वंश का कर्णधार होगा। महर्षि ने जैसे राजमाता को वरदान दिया हो।

राजमाता ने हाथ जोड़े—धन्य धन्य! महर्षि! धन्य धन्य मेरे पुत्र!

द्वैपायन स्थिर रहे—जैसे गम्भीर सागर। जैसे रक्तहीन नीलाभ।

सत्यवती तृप्त होकर वहां से चल दी।

(२१)

पूरे मास यम एवं अनुष्ठान चलता रहा। द्वैपायन स्वयं विशिष्ट साधना में थे। नियुक्त होने का शुभ दिन आ गया। ज्योतिषियों द्वारा मुहूर्त को प्रबल हितकारी बताया गया। अम्बालिका का कक्ष विशेष रूप से सज्जित एवं मनोहारी सुगंधों से गंधित किया गया था। रात्रि के प्रकाश के लिए दीवटों पर स्थान-स्थान पर दीपक रख गये थे। अम्बालिका जो स्वयं अदभुत रूप से सुन्दर थी प्रसाधनों के प्रयोग से और अधिक सौन्दर्यवती लग रही थी। फूलों की मालाओं और उनके अलंकारों में सजी वह स्वर्ग की अप्सरा-सी दीख रही थी। कदाचित वैसा ही शृंगार उस समय किया गया था जब प्रथम बार रूपवान विचित्रवीर्य से उसका मिलन हुआ था। लजीली पलकें उठाकर जब उसने राजा को रेशमी उत्तरीय में देखा था वह देखती रह गई थी।

क्या देख रही हो कौशलकुमारी? सामने खड़े युवा राजा ने पूछा था।

वह मौन रही थी। पर के अंगूठे फर्श पर सिकुड़ फैलकर सहज हरकत कर रहे थे।

बोलोगी नहीं।

उसने सिर झुकाये-झुकाये उनकी तरफ गति ली और चरणों में झुकी थी। विचित्रवीर्य ने बीच में हाथ फैलाकर साध लिया था और वक्ष से लगा लिया था। इसी तरह की स्मृतियां छिप छिप कर रही थीं।

अम्बालिका प्रतीक्षा कर रही थी महर्षि के प्रवेश की पर उसकी आंखों में विचित्रवीर्य घूम रहे थे।

उसने आँखें मूदी और मन म दोहराया—स्वामी, भाग और तप्ति सुमन दी, अब समर्पित होन जा रही हू महर्षि को। आशीर्वाद दो की अनुष्ठान सफल हो। मर पुत्र को तुम्हारा सौन्दय और ऋषि का अध्यात्म प्राप्त हो।

वह क्षण भर क लिए आखें मूद रही। तभी उसको पदचाप सुनाई दी। वह स्वागत करन क लिए खडी हो गई।

अम्बालिका की आखा म अब विचित्रवीय का बिम्ब नही था बल्कि वह ऋषि द्वपायन का कल्पना कर रही थी जिनकी आयु और कृष्ण तन क सम्बन्ध म उसन सुन रखा था। कल्पना क लिए अधिक अवकाश नही मिला। ऋषि प्रत्यक्ष उपस्थित थे। पूरी दह पर अधोवस्त्र, श्वत दाढी, जटा तथा तजस्वी आखें स्पष्ट हो रही थी। शेष शरीर वृक्ष क तने जैसा था।

अम्बालिका ने साहस करक उन्ह देखा तथा अभिवादन किया। उनक निकट आते ही मछली की दुगध का भभका-सा आया जो उसके मस्तिष्क म सीधा प्रवेश कर गया। उस लगा कि वह मूर्छित होकर गिर पडेगी।

उसन सास अवरुद्ध कर जसे शक्ति को थामा, पर इसी बीच आतक का भाव उस पर प्रभावी होन लगा। वह स्वत पीली पडन लगी।

तुम छोटी रानी अम्बालिका हो ? द्वपायन ने पूछा।

हा, महर्षि ! आप आसन ग्रहण करिय। उसन उत्तर दिया। द्वपायन आसन पर बठ गय।

तुम्हारी कामना म महायोग्य पुत्र है ?

हा, पर कामना म कुरुवश को उत्तराधिकारी उपलब्ध करन का उद्देश्य प्रमुख है।

तुम्हारा सौन्दय अद्वितीय है। क्या इसका गव नहा है तुम्ह ? ऋषि ने पूछा।

नही, सौन्दय का द्रष्टा और भोक्ता पति होता है वह मैं खो चुकी हू। उनकी स्मति मात्र मरी पूजी है। अम्बालिका क शब्दो म बल था।

साहस और भय दोनो सक्रिय हैं तुम म—वितष्णा तो नहीं पदा हो रही है, मुझस ? द्वपायन न पूछा।

भय अनायास है। वितष्णा नही है क्योकि तष्णा भी नहीं है।

तब समपण कसे होगा ? द्वपायन न पूछा। अम्बालिका के उत्तर उन्ह भले लग रहे थे।

समपण भाव है उसम दह बीच म कहा है ! महर्षि आपन मेरे सौदय की सराहना की है। क्या आपका ससग आप द्वारा मरा भोग होगा ? या मोह होगा आसक्ति या अनासक्त क्रिया ?

द्वपायन स्तम्भित रह गये। अम्बालिका क प्रश्न अप्रत्याशित थे। वह आगे बोली—क्षमा करें महर्षि मैं आपके सामन तुच्छ और नगण्य अवश्य हू, पर मैं उस

भाव में ग्रसित होकर अपने को आतंकित करना नहीं चाहती, वरना आपका प्रबल दान निश्शक्त तथा हताश ग्राहिका को होगा।

साधु! साधु! निश्चित रूप से तुमने अपनी आत्मा को उन्नत किया है। मेरा अनुमान है, यह अनुष्ठान सफल होगा। कुरुश्रेष्ठ यशस्वी तथा योग्यतम उत्तराधिकारी प्राप्त करोगी तुम से। तुम्हारे पुत्र में तुम्हारे भी सद्गुण होंगे। द्वैपायन प्रसन्न हो उठे थे।

मेरी जिज्ञासा अभी भी अनुत्तरित है? अम्बालिका ने कहा।

पहले तुम भयभीत होने से मुक्ति प्राप्त करो।

वह अनायास और स्वभावगत है उस पर वश नहीं हो सकता महर्षि, पर मैं मन से प्रबल हूं। देह पूर्णतः स्वीकार करेगी आपका दान। वह दान मोह में होगा आसक्ति के साथ या अनासक्त होकर?

मिश्रित होगा। मेरी शक्तियां से केन्द्रित होगा। तुम उसे ग्रहण करने की योग्य शक्ति में हो। मन वचन, कर्म से प्रस्तुत हो। अतः

समर्पण आपकी तरफ से भी पूर्ण हो, महर्षि! अम्बालिका ने द्वैपायन के चरण स्पर्श किये। फिर द्वैपायन को हाथ पकड़ कर शय्या तक लाई। उन्हें बैठने का निवेदन किया।

द्वैपायन हर्षित थे। मन में योग्य पात्रता से नियोजित होने की संतुष्टि थी। उन्होंने शय्या पर बैठकर ध्यान साधा। अम्बालिका उनके दीप्त मुख को सम्मोहित सी देख रही थी। शय्या पर अब उसने अपना अधिकार भी जाना और उस पर बैठ गई। महर्षि पर उसने अपना अधिकार जाना और उसके चेहरे पर दमदमाहट आ गई। आसक्ति आंखों में झलक उठी। द्वैपायन ने जब आंख खोली तब दूसरी अम्बालिका को पाया—कामना से भरपूर संगम को आतुर कामिनी।

द्वैपायन ने उत्तरीय एक तरफ रख दिया। अम्बालिका शय्या पर लेटी। द्वैपायन कितने आसक्ति में थे कितने सौम्य से अभिभूत कितने तटस्थ, यह उन का स्वयं नहीं पता था। अम्बालिका की पलकें सम्भावित आनन्द की कल्पना में शनैः शनैः मुंदने लगी। वह देही होकर जैसे देहातीत हो गई। जैसे रति की जुड़वां भगिनी।

भोर होने पर द्वैपायन कक्ष से जा चुके थे।

(२२)

राजमाता छोटे मुंह बड़ी बात हो जाय तो हो जाय पर मन पूछे बगैर रह नहीं पा रहा है। एक बूढ़ी औरत जो सत्यवती के सामने जमीन पर बैठी उनके पैरों की उंगलियों को दबा रही थी बोली।

क्या ? सत्यवती को लगा जैसे उसी की चिंतन शृंखला में किसी ने उसे सम्बोधन किया हो।

आपकी राज के कामो में व्यस्तता आपकी पूजा उपासना में बढोतरी के होते हुए मुझ सेविका को ऐसा क्यो लगता है कि आप बहुत अशांत हैं।

हा। जितना शांति पाने के लिए प्रयास करती ▌ उतनी ही अशांति मे दबती जा रही हू। सत्यवती ने जैसे उस बुढिया से नही अपने से कहा हो।

क्या राजमाता ? बुढिया ने पजो को हल्की मुट्ठी से ठुक-ठुक करते पूछा।

क्या का उत्तर इतना सहज होता तब सुलझाव भी दूर नही होता। चक्रव्यूह युद्ध मे रचना पाते हैं खण्डित होते हैं। उसी तरह भाग्य चक्रव्यूह रचता है। हमे लगता है उसमे से निकलने का रास्ता मिल गया पर जब रास्ते के साथ चलते है, तब लौटकर वही जाते है जहा से चले थे। राजमाता ने बुढिया को देखते हुए कहा।

यह चक्करदार जवाब उसकी समझ मे नही आया। बोली—राजमाता मैं मूढ बुद्धि हू। मेरी समझ मे नही आया। आपको अकेलेपन मे दु ख को पोपते नही पाती तो नही पूछती। फटके दूध मे फुटकन तरती दीखती है क्या हुआ दूध साबित दीखे।

मैंने कहा ना, भाग्य ने जो चक्रव्यूह रचा है उसे तितर बितर करके निकल नही पा रही हू। दु खी नही हू चिंता मे हू। पजो की नसो को अगूठे से दबा, ताकि पीडा बाहर झड जाये।

बुढिया के दोनो अगूठे आदेश के अनुसार चलने लगे। उसकी सीधा सादा उत्तर पाने की बेचैनी शांत नही हुई। वह कुछ पलो तक पजे दबाने की क्रिया करती रही। राजमाता अपने सोच मे खो गयी।

आप तो भाग्यशालिनी हैं। अम्बिका अम्बालिका दोनो रानिया कुमारो का गर्भ मे पोषण कर रही है। वह दिन जल्दी आने वाला है जब आप दादी का पद पाएगी। महल मे कुमार खेलेंगे।

खेलेंगे क्या ? तुम अनुभवी धात्री भी हो। तुमने अम्बिका, अम्बालिका को जाचा ? क्या विकास तथा स्वास्थ्य विघ्नरहित है ? राजमाता ने आतुरता से पूछा।

बिलकुल विघ्नरहित है। दोनो के स्वास्थ्य पूर्ण है। चेहरे पर अकल्पनीय तेज है। इतनी सुदर और सुघड हो रही है जैसे पका फल। जो देखकर नाच उठता है। राजवैद्य की राय मेरी जाच से मेल खाती है।

तुम मुझे प्रसन्न करने के लिए कह रही हो।

मैं वही कह रही हू, जो मैंने जाच मे पाया है। आपको मेरे अनुभव पर विश्वास होना चाहिए, राजमाता। दोनो प्रसन्नचित हैं—मा बनने के दिन की

राजा का विवेक उसकी आना प्रशासन के माध्यम से क्रियान्विति पाती है। क्या यह नहीं कहा जाता कि जिनके बाह्य चक्षु मुंदे होते हैं, उसके अंत चक्षु तीव्र तथा दूरदर्शी होते हैं ? हम सबको से मुक्त होकर उत्सव मनाना चाहिए। प्रजा को उल्लसित होने दीजिए। दान तथा यज्ञ को राज की ओर से किया जाये ताकि प्रजा अपने स्तर पर भी करने के लिए प्रोत्साहित हो। वातावरण को हवि की सुगंध तथा मंत्रों के रव से चर्चित गुंजरित होने दीजिए। उत्सव के आह्लाद में प्रजा उत्तराधिकारी के इस दृष्टि-दोष को महत्व नहीं देगी। राजपुरोहित ने खासा भावुकता पूर्ण वक्तव्य दिया, जिसने सबकी स्वीकृति पायी।

अंत में शान्तात्मा भीष्म ने सबकी भावना का सार अभिव्यक्त करते हुए कहा—राजमाता से निवेदन है कि वह तथ्य को उसी के रूप में स्वीकार कर अनावश्यक दुश्चिंताओं से मुक्त हों। राजपक्ष की मन की उदासीनता, प्रजा को गहरी उदासी से ग्रस्त कर सकती। राज की दृष्टि आशाओं की प्रेरक तथा उत्थान गामी रहनी चाहिए। हम अपने मोहों और कामनाओं से ऊपर होकर सत्यनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ होना चाहिए। प्रारब्ध संकल्पों से तेजस्विता पाता है। संकल्प संयम से सिंचित होते हैं। हम उत्सव को पूर्ण भव्यता से मनाना चाहिए।

कौरव कुल की यश स्रोतस्विनी का मार्ग सुखद मरु की ओर हो गया था। भय था कि काल की गति के साथ रेत का विस्तार उसके अस्तित्व को सोख लेगा परन्तु कामना और युक्ति ने प्रवाह को मोड़ दिया। जन्मांध शिशु के जन्म होने से यद्यपि एक कसक महल के वातावरण में ठहरी हुई चुभती रही परन्तु उत्सव के राग रंग का बंध खुल गया। महल के द्वार पर तुरही व लाल वाद्य क्या बजे कि नगर मृदु राग तथा सुरभ से आमोद प्रमोद से रंगित-क्वणित हो उठा। नगर से सुदूर राज्यों तक संदेश फैलता गया कि कुरुवंश की हरित बेल पर फूल खिल आया। राजाज्ञा की घोषणा के अनुसार जगह-जगह यज्ञ व अनुष्ठान होने लगे। प्रजा ने राजकुमार के उज्ज्वल भविष्य के लिए देवी-देवताओं की प्रार्थनाएं की। ब्राह्मणों व शूद्रों में वस्त्र तथा अन्न बांटे गए। राज्य कोष से नामकरण के दिन तक निरन्तर दान दक्षिणा वितरित की जाती रही। ज्योतिषियों के समूह ने धृतराष्ट्र नाम घोषित किया।

घटना एक ही होती है पर व्यक्ति अपने संस्कार, अपनी मति और भावनाओं के अनुसार उसको समय के दायरे में लेता है। फिर अपने विचारों के अनुसार प्रतिक्रिया करता है। कितने वर्ग ! कितने समाज ! कितने राज राजे। अपनी अपनी तरह से अंधे राजकुमार के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया अभिव्यक्त कर रहे थे। चर्चाएं यहां-वहां, जहां-तहां बुद्बुदों की तरह उठती थीं फेन की तरह तर

कर तिरोहित हो जाती थी।

अम्बिका के अंक में जब पहली बार शिशु को रखा गया उससे पूर्व उसकी मानसिकता को ऐसा बनाने की कोशिश की गई थी कि उसे आघात न लगे। पर उसने जैसे ही नयन-हीन शिशु को देखा स्पंदित-सी हो गई। दृष्टि थिर भावना थिर, सिहरन थिर। वह देखती रही थी अंक में लेटे शिशु को।

परिचारिकाएं सयत्न शिशु के आकर्षण उसके तेज की बात कर रही थीं। धात्री कह रही थी—कैसा कमल-सा मोहक कुमार है! मैंने ऐसा शिशु देखा नहीं। मां को कैसा टकटकी लगाकर निहार रहा है।

शिशु नन्हे हाथ और पांव चलाकर रोने लगा था। अम्बिका के कान में गूंजा था मां मां मां। राजमाता ने कहा था—बेटी अम्बिका दूध पिलाओ पुत्र को यह भूखा है। स्नेह से स्पर्श करो मातत्व के स्पर्श के लिए आतुर है।

निकट खड़ा अम्बालिका शिशु को देख रही थी परन्तु जाने क्या सोच रही थी। कदाचित यही कि क्या उसके गर्भ का संतान भी

धात्री ने अम्बिका को पुचकारते हुए उसका हाथ पकड़ा था और शिशु के सिर पर रख दिया था।

अम्बिका! राजमाता ने कहना प्रारम्भ किया। ज्योतिषियों ने भविष्य देखते हुए कहा है—यह शिशु बीमवत कीर्तिवत होगा। तुम्हारी गोद में पड़ा रोता शिशु कौरव वंश का तेजस्वी भविष्य है। उसको मातत्व से सिक्त करो। इसका नाम धृतराष्ट्र रखा जाएगा।

अम्बिका की संवेदना में उत्पन्न हुआ व्यवधान स्फीत हुआ। उसका हाथ शिशु के काले, घने, मुलायम बालों पर फिरने लगा था। बच्चे का रुदन उसके कानों से गुजरकर अन्त में मां मां की आवृत्ति में रूपान्तरित हो रहा था। सब प्रसन्न हो गए, जब अम्बिका ने आंचल में बच्चे का मुख ढक दिया। उसकी पकड़ वात्सल्य पूरित थी।

इसके पश्चात् अम्बिका मां थी और वह नवागन्तुक शिशु उसका पुत्र। रात्रि में निकट सोया शिशु स्वतः अपना अधिकार लेता जा रहा था। मोह-अदृश्य अंकुरों की तरह अंतः क्षेत्र में फूट फूटकर ममत्व को भविष्य की सम्भावनाओं में उलझाने लगा। दाता का दान क्रुद्ध मन से स्वीकार करने पर पात्र को अपात्र बना देता है। तब मां पुत्र के लिए दुश्चित्ती कैसे हो! अंतःकरण कहता है तो नैसर्गिक दुग्ध धार-सा बहता है। अम्बिका आघात को पार कर गई।

(२४)

मन की आकांक्षा बहुमुखी होती है। पर परिस्थिति प्राथमिकता चिह्नित करती है। वह आकांक्षा प्रबल होकर चिंतन व चिंता से घिरती है। फलीभूत

होने की सम्भावना के साथ पूर्ण न होने की शंका आकांक्षा के साथ सदा नत्थी रहती है। यही तो उद्विग्न करता है। चिंता में रत रखती है। तटस्थ हो सके व्यक्ति यह बहुत कठिन है।

अम्बालिका स्वयं अपने को समझाती है उसकी संतान खोट मुक्त होगी परन्तु अम्बिका के नेत्रहीन पुत्र का ध्यान बार-बार उसकी कल्पनाओं में टकराता है। न चाहते हुए भी अन्तर्द्वन्द्व अणु आकार तह में ऊपर उठ आता है। भावनाएं छाया की तरह एक एक क्षण में चेहरे पर दिप-बुझ करने लगती हैं। वह मौन सम्वाद साधती है। कभी विचित्रवीर्य की छवि से, कभी महर्षि व्यास की स्मृति आकृति से।

मैंने तुम्हें कभी नहीं बिसारा। क्या अपनी संतान को अपना अतुल्य सौन्दर्य नहीं दोगे?

प्रश्न स्वर्गीय पति की छवि में होता है। वह उत्तर चाहती है अपनी अन्तरात्मा से।

मैंने सुम्ह पूर्ण तन मन एकाग्रता से अपने को समर्पित किया है महर्षि, क्या अपनी तपस्या शक्ति अपनी संतान को प्रदान कराओगे?

वह सुनना चाहती है महर्षि व्यास के स्मृति चित्र से आश्वस्त उत्तर। पर उस ऋषि की प्रतिकृति आंखें मूदे ध्यानमग्न रहती है।

तब वह अनिश्चित परिणाम के लिए निश्चित होना चाहती है। आत्म विश्वास का सहारा चाहती है।

नहीं वैसा नहीं हो सकता। अम्बालिका का आत्म-संयम और इच्छा शक्ति वजूद दुविधाओं के गर्भस्थ शिशु को संस्कारयुक्त करते हैं। उसको बुनियादी चरित्र देते हैं। अम्बालिका का पुत्र वैसा ही होगा जैसा वह चाहती है। इतिहास का निर्माता होगा—कौरव कुल मार्तंड।

ऊहापोह तथा द्वन्द्व के बीच ही परिस्थितियां बदलती हैं वक्त बढ़ता है व्यक्ति निर्मित होता है। द्वन्द्व कभी बाह्य प्रेरित होता है कभी अंत:प्रेरित।

महर्षि व्यास से परामर्श करने के बाद भीष्म पितामह को आत्मबल मिलता था। उनके अगाध अध्ययन से उन्हें ज्ञान व शास्त्रों को पढ़ने की प्रेरणा मिलती थी। शासन का उत्तरोत्तर धर्म के अनुकूल दिशा देने के लिए दृष्टि मिलती थी।

जब तक व्यास मात्र आश्रम गुरु व महर्षि थे तब तक सत्कार व श्रद्धा का सम्बंध था। जब से राजमाता द्वारा वह रहस्य उद्घाटित किया गया कि व्यास उनके पुत्र हैं—अर्थात भीष्म के भाई तब से एक सूक्ष्म अंत:सम्बन्ध उपज आया। सही है कि व्यास सामाजिकता से विरक्त, आध्यात्मिक पुरुष और महाकवि है, और भीष्म कुरुवंश के संरक्षण का कर्त्तव्य स्वीकार किये हुए राज-पुरुष पर एक पारिवारिक रिश्ता भी है। वह अनायास सम्बल-सा देता है। अब तो व्यास का

वीर्य कौरव वश की सताना म होग'। घतराष्ट्र न ज'म लिया। इमक बाद अम्बालिका का श्रम है।

उन्होने महर्षि से पूछा था—महर्षि कौरव वश का भविष्य कसा है ?

वह तुम्हारे पराक्रम तथा प्रयासा म बधा है। महर्षि न तत्काल उत्तर दिया था।

मैंन जब भी आश्वस्त होना चाहा तभी दुघटनाआ न मुझे फमाया है। मेरी बार-बार इच्छा हाती है अतिशय उलफाव स मुक्त होकर आत्मिक साधना के लिए वन श्री व पवत क्षेत्र म जाऊ, जहा मेरी बाल्यावस्था व्यतीत हुई है।

महर्षि व्यास मुस्कराए थ। ऐसा नही हो सकेगा। तुम राजा की सतान हो। युवराज रहे। तुमन पिता क लिए अधिकारो का त्याग किया। अपन व्यक्ति गत भविष्य को त्याग कर पिता शान्तनु क विवाह की स्थितिया बनाइ।

इसलिए कि कुरुवश उत्तराधिकारिया का श्रम पा सक। पिता को चिंता थी कि अगर मेरे साथ दुघटना घटी तब

महर्षि व्यास न भीष्म पितामह को आखा आख दखा। उस दृष्टि म अगाध शांति दिखी थी। दवव्रत, भीष्म हुआ। क्या ? भीष्म क साथ अविजित योद्धा हुआ—क्या ? आयु स वह कितना भी रहा हो उसके निणय और निश्चय प्रौढ़ा स भी अधिक परिपक्व पितामहा जस रहे—क्यो ? यह सस्कार है मा गगा के। वह सदा प्रवाहिनी, कल्याणी हैं। तब तुम्हारा प्रारब्ध अ'यथा कैसे हो सकता था ? पवता जसी बाधाआ को काटकर तुम्ही रास्ता बनाओगे। निष्प्रमिल करने वाले वनो के बीच तुम्ही कुरुवश की नदी को प्रवाहयुक्त रखोग। पर अपनी पीडा के लिए हमशा अकल होग। इसी म तुम्हारी शक्ति होगी, तुम्हारी महत्ता। हर महत्त्वपूण कालजयी पुरुष की नियति एमी ही होती है। वह शापित होता है, अपनी इच्छा क विरुद्ध परिस्थितिया के प्रवाह म बहने के लिए। क्या सच म पिता शान्तनु मात्र वशवृद्धि के लिए विवाह को आतुर थे ? क्या आकषण व प्रेम, दग्धता, उम घटना का कारण नही था ?

मुझे ज्ञान था। भीष्म ने उत्तर दिया।

महर्षि रहस्यमयी मुस्कान मे आवेष्टित हुए थ। मुझे भी ज्ञात था कि मेरी कुआरी मा न मुझे टापू पर छोड दिया था, लोकभय के कारण। पर मुझे स्मरण किया गया। उसी रिश्त का आधार लेकर मुझे नियोग करन की आज्ञा दी गई। मैंने स्वीकार किया। क्या ? विचार करो भीष्म ! मरी और तुम्हारी नियति म विशेप अतर नही है। तुम भी बध हो, मैं भी। न तुम छुटकारा पा सकोगे, न मैं पा सकूगा, सिफ पदा और कत्त'यो का अतर है। या ज'म का, कि तुम शा तनु के पुत्र हुए मैं पराशर ऋषि का।

इसी तरह क आत्मावलोकन और आत्मसशोधन की प्रेरणा मिलती है भीष्म

को व्यास की निकटता म। तब जो करता है वहन का—ध्यान।

लेकिन वह तो महर्षि हैं—महर्षि व्यास। अद्वितीय साधना सम्पन्न। अ ससारी। भीष्म? कुरुवंश की उतार-ढलान म सलग्न राजपुरुष। ऋषि व राजा का युग्म।

(२५)

बाहर कुहासा छाया हुआ था यद्यपि प्रात हो चुकी थी। रात भर कड़ाके की ठड रही। अभी भी शीत ने वातावरण को जकड़ रखा था। पर अम्बालिका के महल म भाग-दौड़ और उत्सुकता व्याप्त थी। राजमाता को जब ही दासी न सूचना दी कि रानीजी के पीड़ा हो रही है वह स्वय व्यवस्था देखने आ गई थी। उपचारिकाए धाय राजदाई को तुरन्त बुलवा लिया गया था। कष्ट सहनीय हो, इसके लिए विशिष्ट दवाए दी जा रही थी। शिशु के स्नानादि क लिए गरम जल तयार था। धात्री, अम्बालिका को लाड-पुचकार कर दर्द सहने क लिए साहस बधा रही थी। अम्बालिका अपूव सयम धरन क बावजूद होश स बार-बार छिन्न भिन्न हो जाती थी। वह बल लगाकर सयोजित होने का प्रयास करती। कभी उसकी दत-पक्ति भिची-कटी होती। कभी मुट्ठी बध जाती। कभी वह नि साहस-सी हो धात्री को पकड़ लती। बूढ़ी धात्री को आवेश सभालना मुश्किल हो जाता।

तुम पुत्रवती होने जा रही हो रानी, लक्ष्मी-पति विष्णु का ध्यान दो।

अम्बालिका की मानसिक एकाग्रता थिर होती तो उसकी आखो म विचित्रवीय की छवि झिलमिला जाती। जसे गहरे तल म उठती हुई रगीन मछली सतह पर ठहर रही हो।

राजमाता ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बुलवाकर मत्रोच्चार करन क लिए कहा था। वह मत्रोच्चार कर रह थे।

इधर कोहरे की तह से ऊपर उठकर सूय आकाश म दृष्टिगोचर हुआ, उधर महल म थाली और मादल की झनझनाहट गूज उठी।

शोर हुआ—रानी ने पुत्र को जन्म दिया। अम्बालिका क अनुपम सौंदय वाला पीत हजारे-सा शिशु हुआ है।

राजमाता प्रसन्न थी। रत्नो और मोतिया के इनाम बाटन क लिए वह स्वयं माल मगा रही थी और स्पश कर भज रही थी। नवजात शिशु को धात्री ने स्नान कराके सरसाई रेशमी कपड़े म लपेटकर मा की बगल म लिटा दिया था।

सूय हल्के धूपाई रग म स्वच्छ आकाश म स्पष्ट हो आया था। जसे-जसे दिन खुला क्रियाए शुरू हुइ व्यस्तता हाट-बाट म धड़कने लगी। छोटी रानी क पुत्र

होने की खबर चौक चौक प्रसारण पाती गई। फिर राजकीय उदघोषणा ने सूचना को पुख्ता कर दिया।

राजमाता, पुत्र साक्षात इन्द्र-सा सुंदर है।

हां। होना चाहिए।

राजमाता पुत्र सूर्यमुखी फूल-सा पीत वर्ण है।

हां, होना चाहिए।

राजमाता ज्योतिषियों का कहना है संतान शुभ मुहूर्त में जन्मी है अद्भुत पराक्रमी तथा सूर्य देवता-सा यश अर्जित करने वाली होगी।

हां, होना ही चाहिए।

राजमाता के हर हुंकारे के पीछे कामना थी कि वैसा ही हो जैसा ज्योतिषी कह रहे हैं। वह खुश थी। अन्दर से भावनाओं का हिल्कोरा उठता था। पर कोई खट से जैसे उस हिल्कोरे के आवेग को कुतर देता है। वह इसे हटाकर मुक्त प्रसन्नता को पाना चाहती हैं, लेकिन निरन्तरता नहीं बनती।

महर्षि व्यास ने अम्बालिका के संदर्भ में कहा था—पुत्र सर्वगुण सम्पन्न होगा। महान यशस्वी और कीर्तिवान होगा। परन्तु पांडुर रोग से जन्मना ग्रस्त होगा। अम्बालिका समागम के क्षणों में भयभीत होकर पीली पड़ गई।

राजमाता अटल संकल्प लिये हुए थी कि वह निष्णात वैद्यों के द्वारा उसका प्रारम्भ से उपचार कराएगी। रोग को अंकुरित अवस्था में उच्छेदित कराने का उपाय नियोजित करेंगी। लेकिन व्यास का कथन शिशु के प्रारब्ध की पहले ही घोषणा कर चुका है। उसे वह मन से टालेंगी। अम्बिका के पुत्र के लिए उन्होंने कहा था—वह जन्मांध होगा। धृतराष्ट्र नेत्रहीन जन्मा। राजमाता कैसे उन्मुक्त आनन्द में आनंदित हों जब उनका खुद का अतीत विडम्बनाओं से घातित रहा है। चित्रांगद कम पराक्रमी था। विचित्रवीर्य इन्द्र पुत्र सा लगता था जिसको देखकर मन जुड़ता था। जब अखण्ड सुख और संतोष प्राप्ति का समय आया, तब कुघात हुआ। विवाह के सात वर्ष के बीच यही यक्ष्मा रोग क्रमशः बढ़कर काल बन गया। सारे उपाय विफल हो गये।

अतीत को राजमाता सत्यवती कैसे बिसरा दें! वह अतीत हर प्रसन्नता के क्षणों में काली घटा सा आच्छादित करता है अंत को, बांट देता है उसे दो हिस्सों में। एक आतंकित हुआ सिकुड़ा रहता है दूसरा सुख के प्रभाव में लहरित होने को आतुर होता है।

पर यह द्वन्द्व सत्यवती का है, इससे उत्सव क्यों शापित हो!

शिशु के आगत को वही झेले, जिस नाते हो। अनजानों के स्वाभाविक सुख को धारावाही रहना ही चाहिए। प्रजा राजकुमार के जनमन से प्रसन्न तथा बावली होती है तो उसे होने दिया जाय। दान दक्षिणा, यज्ञ, उत्सव, मित्र

ाजाओं की उपहार स्वीकृति सब अवसर के अनुकूल होनी चाहिए।

राजमाता ने अबकी भीष्म को भी नहीं छेड़ा। उनसे भी नहीं पूछा कि क्या ाना चाहिए क्या नहीं। भीष्म और सभासदों के निर्णय पर छोड़ दिया।

भीष्म पितामह ने हर्षोल्लास के आयोजनों की निर्बाध छूट दी। मित्र ाजाओं के यहां संदेशवाहक भेज दिए गए। शायद यह भी राजनीति की निवार्यता थी और धृतराष्ट्र के नेत्रहीन होने से जो धारणाएं पनपी थीं उनके ामन की युक्ति थी।

(२६)

चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य की मृत्यु के बाद कुरुवंश पर कुहासा का साया पड़ गया था। बाहरी तौर पर यश और कीर्ति अखण्ड थी पर राज मन, प्रशासन बुद्धि तथा सहज स्फूर्त जनपदीय आत्मा कुंद थी। भीष्म अस स्थितिप्रज्ञ तथा धर्म अनुगामी समय-समय पर विचलित होते रहे तथा स्वयं अपने व्यक्तित्व में भावों का विग्रह तथा डोलन अनुभव करते रहे। गांगेय की दशा उस गंगा-सी रही जो ऊपरी सतह पर मंदगति से प्रवहमान होती है पर कभी ग्रीष्म के ताप से अथवा वर्षा के आधिक्य से सिकुड़ती या विस्तरित पाट से बहती है। भीष्म का संकल्प कुरुवंश का संरक्षण था उनका अनुकूल प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं का व्यक्तित्व पर असर पड़ना लाजिमी था।

धृतराष्ट्र और पांडु के जन्म ने भीष्म को आश्वस्त किया। उन्होंने राज पुरोहितों व श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बुलाकर धार्मिक तथा नैतिक स्थिति पर विचार विमर्श किया। ब्राह्मणों की राय थी कि यज्ञ विधानों को तथा उनके अनुष्ठानों को अधिक विस्तार दिया जाये। राज्य द्वारा स्वयं एवं यज्ञ किए जायें जिनमें सूर्य, अग्नि इन्द्र वरुण, रुद्र आदि देवताओं के प्रति प्रजा की श्रद्धा जागे।

हां प्रजा का श्रद्धावान होना चाहिए परन्तु मैं आप सबकी दृष्टि मुख्य बिंदु की ओर आकर्षित करना चाहता हूं। महर्षि वेदव्यास अपने आश्रम में वेदों पर शास्त्रीय काम सम्पन्न करा रहे हैं। वह स्वयं वेदों का विषय एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से किये जा रहे विभाजन की देख रेख करते हैं। आर्यों का सांस्कृतिक चरित्र तथा उसके सामाजिक संस्कार यज्ञों तथा उनमें ऋत्विकों द्वारा बोली जाने वाली ऋचाओं से निर्मित होना है। ऋत्विकों की आत्मा से उच्चारित श्लोक ही श्रोताओं की आत्मा को जाग्रत कर सकते हैं। अतः यह प्रयास किया जाये कि आश्रमों को पर्याप्त आर्थिक सहायता मिलती रहे। राज्य में चलने वाली पाठशालाएं व विद्या केंद्र एसे ब्रह्मचारियों को तैयार करें जो विद्वत्ता में परिपक्व हों। उनका संयम तथा आत्मशुद्धता का आदर्श प्रजा को नैतिक प्रेरणा दे।

हमारी जानकारी मे ऐसा ही हो रहा है। एक वृद्ध ब्राह्मण बोले।

दूसरे प्रौढ़ ब्राह्मण ने विचार रखा—यज्ञ का धार्मिक भाग बहुत अधिक व्यय-साध्य होता जा रहा है। इसे राजा महाराजा या धनिक वर्ग ही सम्पन्न कर सकते हैं। साधारण प्रजा के लिए ऐसे धार्मिक विधान होने चाहिए जो उन्हें नैतिकता की ओर बढ़ाएं। अधिक कर्मकाण्डों की जकड़न मूल उद्देश्य को गौण करती जा रही है। यह मेरा अवलोकन है। राजपुरोहित ने दूसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया—कुरुवंश की ऐतिहासिक गति में जहां हमारा वर्चस्व तथा प्रभाव क्षेत्र बढ़ता गया है, वहीं हम अन्य प्रकार के धर्मों तथा संस्कृतियों से घिरते जा रहे हैं। मेरु पर्वत के निकट के जनपदों कम्बोज, बाह्लीक, कपिशा, गांधार की भौतिकवादी संस्कृति तथा दक्षिण की पाशुपत, शैव व पंचरात्र भागवत दर्शनों से पोषित संस्कृति हमारी वैदिक जीवन विधि को दूषित कर सकती है। इस ओर से हमें सतर्क होना चाहिए।

भीष्म ने अभिव्यक्त विचारों को ध्यान में रखकर अपने मन की बात कहना आरम्भ किया। कुरुवंश का प्रभाव काल की गति के साथ उत्तरोत्तर विस्तार पाता रहा, उसका मूल कारण पूर्वजों का शौर्य तथा पराक्रम मात्र नहीं है, उसकी शक्ति धार्मिक आस्था, चारित्रिक दृढ़ता, प्रजा वत्सलता एवं न्यायप्रियता में रही है। यह इसलिए संभव रहा है कि हमने आदर्श तथा व्यवहार मे अंतर नहीं रखा। यज्ञ की मूल भावना आत्मिक शुद्धता, प्राकृतिक क्रम नियम के अनुकूल जीवनयापन तथा संयम प्राप्त कर क्षुद्रताओं से बचना है। दान व आहुति इसकी आत्मा है। मैत्री व सार्वजनिक मांगलिकता इसका व्यवहार पक्ष है। मैंने आप सबको इसीलिए कष्ट दिया है कि मुझे इस पवित्रता तथा श्रेष्ठता में ह्रास दीख रहा है। कृत्रिमता तथा आडम्बर के साथ यज्ञ औपचारिक रूप ले रहे हैं। हमारे शक्ति के केन्द्र में जो सूर्य किरणों की जाज्वल्यता है, यदि वह क्षय की ओर बढ़ी तो परिणाम क्या होगा आप स्वयं निष्कर्ष तक पहुंच सकते हैं।

आपकी आशंका व संदेह संगत है। एक श्वेत दाढ़ी व जटाओं वाले वृद्ध बोले।

सम्पूर्ण श्रद्धा व आदर के साथ कहना चाहता हूं कि मुझे आशंका या सन्देह नहीं है पर सचेत रहना हम सबका कर्तव्य है। चिंतन तथा उसके व्यावहारिक उपयोग के लिए हमारी इस परिषद को सजग रहना चाहिए। आप विद्वानों की सक्रियता तथा आदर्श प्रजा के लिए प्रेरणाप्रद होगा। राज से जैसा भी सहयोग चाहेंगे उसे तत्काल उपलब्ध कराने की व्यवस्था मैं करूंगा। मैं आप लोगों की क्षमताओं के प्रति आश्वस्त हूं तथा उसका आदर करता हूं।

भीष्म कहते कहते रुक गये—जैसे सोचने लगे। उपस्थित सदस्यों को लगा वह उनकी तरफ से विचारों की स्वीकृति या अस्वीकृति चाहते हैं। राजपुरोहित बोले

—आपकी चिंता सारयुक्त है। जनपद का प्रत्येक वर्ग जब तक जनपद व राज्य के कल्याण के लिए अपने स्वार्थ को गौण नहीं करता है तब तक आंतरिक शक्ति का स्रोत अजस्र नहीं रह सकता। यह धर्माचरण में प्राप्त होगा। हम अपनी क्षमताओं को इस महत् उद्देश्य की प्राप्ति में लगाएंगे। कुरुवंश की राजशक्ति कभी भी राजा में वर्जित नहीं रही, वह महर्षियों, विद्वानों की सभाओं तथा उच्च कोटि के अनुभवी लोगों की मंत्रिपरिषद में निहित रही है। उनके जरिये प्रजा में।

मैं यही चाहता हूं कि हम आगामी समय को चारित्रिक श्रेष्ठता, आर्थिक सम्पन्नता व कला शिल्प के उत्थान में लगाएं। राजपुरोहित जी ने अन्य प्रकार की संस्कृतियों तथा धर्म की जो बात कही है वह सत्य है। पर हमारी मूल नीति मैत्री भाव की रही है। हमने गणराज्यों से सम्पर्क किया, उन्हें मित्र बनाया। हम किसी राज्य को अनीति से हड़पना नहीं चाहते। हम चाहते हैं आदान प्रदान बढ़े, व्यापार का आदान प्रदान, विचारों का आदान प्रदान। ऐसी स्थिति में संस्कृति तथा धर्म समन्वय की प्रक्रिया से नहीं बच सकता। हमारा श्रेष्ठ हमारी रचना का तत्त्व रहे, दूसरों का श्रेष्ठ हममें जुड़े तो हमारी वृद्धि ही होगी। इसलिए जब तक धृतराष्ट्र और पाण्डु युवा आयु को प्राप्त नहीं कर लेते, हम कुरु राज्य तथा उससे मैत्रीभाव रखने वाले राजाओं गणराजाओं को सबल सूत्र में बांधेंगे। चतुर्मुखी विकास हमारा उद्देश्य होगा। यह समय आन्तरिक व बाह्य रूप से दृढ़ता पाने में प्रयत्न में लगना चाहिए। सैन्यविजय के बजाय सांस्कृतिक व धार्मिक विजय हमारा सकल्प हो।

विद्वत्-परिषद को लगा कि भीष्म के विचारों ने उन्हें स्फुरित कर दिया है। पूर्व सभाओं में यद्यपि समस्याओं पर ही चर्चा होती थी पर अनुभव होता था जैसे राज्य किसी अदृश्य दबाव से दबा हुआ है—स्पष्ट दिशा नहीं दीख रही थी। चित्रांगद का भीष्म की अवज्ञा कर अपनी जिद में राजाओं से निरंतर संघर्ष करना और अन्त में अपना जीवन गंवाना, विचित्रवीर्य का अपनी रानियों में मग्न रहना और अतिशय भोग के कारण अकाल क्षयग्रस्त होकर मरना, जैसे भीष्म पितामह की महत्शक्ति को कुंठित किए हुए था। पहली बार लगा कि भीष्म अपने आंतरिक दबाव से मुक्त हुए। वह तेज सम्पन्न हो उठे—भविष्य को दिशा देने वाले द्रष्टा।

परिषद भावी कार्य क्रम का रूप लिये विसर्जित हो गई।

(२७)

राजमाता सत्यवती ने यह सूचना मिलने पर कि महर्षि द्वैपायन बदरीका आश्रम से लौट आए हैं उनके दर्शन पाने की इच्छा भीष्म पितामह तक पहुंचाई।

पितामह स्वयं महर्षि के दर्शन करना चाहते थे। हिम शिखरों पर रहकर एकांत साधना एवं वेदों का तात्त्विक अध्ययन व वर्गीकरण निश्चित उन्हें अद्भुत अंत यात्राओं से गुजारता होगा। उन यात्राओं के क्षणांश की झलक का वर्णन पाना ही कृत कृत्य कर सकता है। उन्होंने राजमाता की इच्छा में अपना निवेदन जोड़कर मुख्य अमात्य एवं परिषद के सम्माननीय भद्रों के साथ निमन्त्रण भेजा।

अमात्य जी, महर्षि से निवेदन करियेगा कि मैं स्वयं उनके दर्शन लाभ के लिए आता, पर कुछ योजनाएं ऐसी हैं जिनको अंतिम चिंतन देना है। सुना है गांधार तथा विंध्य की ओर आने वाले शिल्पी एवं चित्रकार भी पहुंच चुके हैं।

हां, श्रीमन ! वह आपके साक्षात्कार के लिए इच्छुक हैं।

संबंधित प्रभारियों को आदेश दे दीजियेगा कि मैं स्वयं नगर-योजना को उत्कृष्टता से सम्पन्न करने के लिए विचार विमर्श करना चाहता हूं। पहले वह दस शिल्पियों से उनमें योग्य चुन कर निश्चयात्मक रूप से निर्धारित कर लें।

जैसी आज्ञा श्रीमन !

आज्ञा नहीं अमात्य जी मात्र विचार अभिव्यक्ति। आज्ञा की उस समय आवश्यकता पड़ती है जब रुकावट, शैथिल्य या छल दीखे। जब सब कर्तव्यनिष्ठ हों तब आज्ञा के स्थान पर निर्देशन पर्याप्त होता है। आप तो वैसे भी मेरे लिए आदरणीय हैं।

अमात्य भीष्म की शालीनता से प्रफुल्लित हो उठे जो उनके मुख के भाव से स्पष्ट था।

आप महर्षि के आश्रम जा रहे हैं स्वयं जानकारी प्राप्त करियेगा कि आश्रम में व्यवस्थागत किन परिवर्तनों या सुधारों की आवश्यकता है। महर्षि व्यास संकोचशील हैं। उनके आश्रम को श्रेष्ठ गायें उपलब्ध करवाई जाएं। उनके आश्रम की सम्पन्नता हमारे लिए गर्व का विषय होना चाहिए।

ऐसा ही होगा, श्रीमन् !

दर्शन के आग्रह को प्रभावी भाषा में उनके समक्ष रखियेगा। उनसे यह भी कहियेगा कि वह अधिक से अधिक समय का वास हमारे लिए निकालें। हम उनसे बहुत से कार्यों में दिशा पानी है।

अमात्य भीष्म से संकेत पाकर तैयारी के लिए चल दिये। वह आश्चर्यचकित थे कि भीष्म महर्षि के सम्बन्ध में कितने नत और भावुक हैं।

राजमाता सत्यवती ने महर्षि व्यास को मात्र दर्शन के लिए नहीं बुलाया था। उनके मन में इच्छा थी कि अम्बिका से एक पुत्र का जन्म और हो जाये। वह सोचती अंधे पुत्र के होने से अम्बिका अवश्य मन में दुखी होगी। वह सहनशील और सीधी है। अन्दर-ही अन्दर घुटती भी होगी तो कहती नहीं। अम्बालिका

की तरह अपनी भावनाओं को कह देना, अपनी इच्छा के लिए जिद कर जाना, अपने विचारों को तर्क से मनवाने की कोशिश करना अम्बिका का स्वभाव नहीं है।

लेकिन अब वह इस कार्य के सम्पन्न होने में संदिग्ध हैं। वह द्वैपायन से कैसे कह सकेंगी कि वह एक बार पुनः अम्बिका को अनुगृहीत करें। द्वैपायन कह सकते हैं कि यह आधारहीन तृष्णा है। दोनों रानियों को पुत्र प्राप्त हैं फिर भी

महर्षि का तेजस्वी चेहरा और उभरी आँखें उनमें भय उत्पन्न कर देती थीं। मां के जिस सम्बन्ध की प्रस्तावना बनाकर व्यास को उन्होंने कर्तव्य और धर्म से बाध्य किया था क्या वह उसको तीसरी बार अस्वीकार नहीं कर सकते?

अम्बिका के सम्बन्ध में जैसा वह सोच रही हैं वह उनकी सोचना मात्र हो सकता है। कदाचित् अम्बिका अपने भाग्य में संतुष्ट हो।

क्या वह उससे पूछकर देखें? राजमाता का साहस नहीं बनता।

पर तुलना तो स्वाभाविक है। क्या अम्बिका यह नहीं सोचती होगी कि उसका पुत्र नेत्रहीन है और अम्बालिका का इतना सुंदर स्वर्ण-सा?

ज्योतिषियों ने उसका नाम पांडु निकाला। उन्होंने यह भी बताया कि राजकुमार जितना अतुल्य सुंदरता वाला है बड़ा होकर उतना ही यशवाला होगा कुरु राज्य की पताका देश-देशांतर तक फैलाने वाला। वह दयालु दानवीर तथा पराक्रमी होगा।

किसी ने क्यों नहीं बताया कि पांडु रोग से ग्रस्त होकर अल्पायु होगा। राजमाता सोचती हैं कि राज्य के ज्योतिषियों की क्या अपनी विद्या में सिद्धि नहीं है? या वह अशुभ प्रकट नहीं करना चाहते?

धृतराष्ट्र अब दो वर्ष का हो चुका है। पांडु एक वर्ष का होने को आया। दोनों में से किसी भी रानी को दूसरी संतान के लिए तैयार करना लगभग असम्भव लगता है। उनकी बात जा सकती है।

राजमाता का सन्देह संगत था। अम्बिका के बाहरी व्यवहार से किंचित भी नहीं लगता था कि वह नेत्रहीन संतान के कारण खिन्न है। सत्यवती ने धात्री से कहा था, अम्बिका के अंतर की टोह लो।

क्यों राजमाता? क्या आपको संदेह है कि बड़ी रानी अपने ही पुत्र से दुराव रखती होंगी? धात्री ने पूछा था।

मां दुराव नहीं रखा करती पर परोक्ष में बालक उपेक्षा का विषय हो जाता है। सत्यवती ने कहा था।

नहीं ऐसा कुछ नहीं है राजमाता। बल्कि बड़ी रानी धात्री व परिचारिका के अतिरिक्त भी धृतराष्ट्र का ध्यान रखती हैं। वह यूं ही उससे बोला करती हैं।

उसे कहानियां सुनाती हैं। भला वह नन्हा शिशु अभी से क्या समझे। उसको पौष्टिक दवाएं देती हैं, राज्य वैद्य से मंगवाकर। जरा-सा अस्वस्थ हो जाये सेवक को दौड़ा देते हैं राज्य वैद्य के लिए। वह तो कई हैं कभी किसी को बुलाती हैं कभी किसी को। जैसे विश्वास नहीं ठहरता किसी एक पर।

यह सब ठीक है धात्री, लेकिन तुम उसके व्यवहार पर मत जाओ। हम राज महलों की रानियां राजमाता, वही नहीं होतीं जो व्यवहार में दिखती हैं। हमारा मन अंतःकक्षों की दीर्घा के किसी गुप्त कक्ष में रहता है—वह अकेले में होता है, प्रसन्न होता है। शेष मर्यादाएं होती हैं और परिस्थितियां।

इतना तो हम नहीं समझ सकते राजमाता! धात्री ने उत्तर दिया। वह राजमाता का मुख देख रही थी। उसे कैसा भी दबाव या कृत्रिमता नहीं लगी।

तुम पता लगाना कहीं वह अम्बालिका के सुंदर पुत्र से तुलना तो नहीं करती।

यह जानना असम्भव है, राजमाता! इससे तो आप स्वयं पूछ लें।

धात्री ने जैसे बसंत पाने को उलट कर हार वाला कर दिया हो। राजमाता अब क्या कहें? कैसे कहें कि धात्री अम्बालिका या अम्बिका के अंतरमन में सेंध लगाए?

धात्री को स्मरण आया। वह आश्वस्त होकर बोली। राजमाता बड़ी या छोटी दोनों में से कोई दुःखी नहीं हैं संतान को लेकर। छोटी रानी, राजकुमार पांडु की सुंदरता की प्रशंसा हरेक से करती है। कहती है बिल्कुल अपने पिता सा है—बड़ी बड़ी आंखें, लम्बी नाक कमल सा कोमल। बड़ी रानी एक दिन मुझसे कह रही थी—धात्री यह बड़ा होगा तब मैं इसको उंगली पकड़कर चलाया करूंगी। इसकी आंखें मैं ही हूं ना।

राजमाता धात्री की अंतिम बात सुनकर करीब करीब निराश हो गई। नहीं लगता कि उनके मन की साध पूरी होगी।

धात्री से फिर भी उन्होंने कहा, तुम दोनों के निकट रहती हो मैंने जो कहा है उसका पता अवश्य लगाना।

धात्री ने आज्ञाकारी सेविका की तरह कह दिया था, प्रयत्न करूंगी।

(२८)

मध्याह्न का समय। अम्बालिका प्रकोष्ठ के सामने के आंगन में हल्की धूप का सेवन कर रही थी। अभी अभी वह पांडु को पालने में सुलाकर आई थी। काले बाल कटि तक लहरा रहे थे। उनमें हल्की-सी सीलन थी। परिचारिका सुगंधित तेल लगाने व केश विन्यास करने के लिए उपस्थित थी। तोते व चिड़िया कभी मुंडेर पर बैठती, कभी आंगन में आ जाती। वह तोता और लाल पूंछ

वाली काली चिड़िया को देखकर प्रसन्न हो रही थी।

देखकर आ पाडु जाग न गया हो। अम्बालिका न परिचारिका स कहा।

अभी-अभी सोये हैं इतनी जल्दी काहे को जागेंगे। दूसरी सेविका उसके पास है।

वह जाग जाता है। उसकी नींद भी अजीब है। कभी सोता रहता है, कभी पल म उठ जाता है। सोते-सोते चौंक पडता है। वैद्यजी को बताना होगा।

छोटे बच्चा को पूरब जनम की याद आती है, छोटी रानी !

पूरब जनम म भी अवश्य राजा रहा होगा।

कैसे जाना, रानी जी ?

मन कहता है। या फिर ऋषि होगा।

हा स्वामिनि ! सत कम करे होंगे पूव जनम म तभी राजकुमार के रूप म जन्म लिया है। पर स्वामिनि ! आयु के अनुसार कमजोर हैं। बडी रानी के पुत्र धतराष्ट्र कितने सुगठित और बली हैं। ऐसा दीखते हैं जस कितने बरस के हा।

सुन्दर तो मेरा ही पुत्र है। इसके पिता भी ऐस ही थे—दुबले-पतले पर मगया म इस तीव्रता स शिकार करते थ कि देखन बनता था। धनुष से निकला बाण अचूक सधान करता था। यह भी उन्ही की तरह धनुधर होगा। देख लेना। मलग पुरुष मुझे अच्छे नही लगत। तूने बाता म लगा लिया। मैंने कहा उसे देख कर आ।

परिचारिका कक्ष की ओर चली गई। वह लौटी तो सच म दूसरी सेविका अक म पाडु को ला रही थी।

यह सच म जाग गय रानी जी। परिचारिका न निकट आकर कहा। वह मा की सहज आत्मा पर मुस्करा रही थी।

ला, मुझे आचल म ले लन दे।

यह हस रहे हैं खेलने दीजिये।

नजर मत लगा। अम्बालिका ने बाह फैलाकर उस ल लिया। बच्चा टुकुर-टुकुर उस देख रहा था तथा किहस रहा था। उसके हाथ और पर चल रहे थे।

आ तो गया, फिर भी शतानी ! उसने आचल से ढक लिया।

परिचारिका ने केशा को हाथ स स्पश कर अनुभव किया, वह फुरफुरे हो गये थे। एक-एक बाल रेशम की तरह अलग थे।

स्वामिनि ! केश सूख गये हैं, तल का उपयोग करू ?

हा !

परिचारिका ने दोनो हाथा म सुगधित तेल चुपडकर केश मे सुखाना शुरू किया।

अक का शिशु गतिशील था।

तभी अम्बिका की परिचारिका सामने से आती दिखी। उसने निकट आकर कहा—वडी रानी, आपसे मिलना चाहती है, वह आ जाए?

हा-हा कई दिन हो गये उनसे मिले। उनसे कहो मैं प्रतीक्षा कर रही हू।

परिचारिका लौट गई।

अब चिपटा ही रहेगा। देख, देख, देख कसे सुदर तोते है। अम्बालिका ने पाडु को आचल स बाहर किया। उस गोदी म बिठाकर पक्षियो की तरफ सकेत करने लगी। शिशु उधर देखने लगा।

वह उसकी गदन मे कठी है, नीली-नीली, जसे तेरी गदन मे है।

शिशु क्या समझे! यह भी क्या पता कि वह सुग्गो को तथा आगन मे फुदकती चिडिया को देख रहा था।

परिचारिका धीरे धीरे केश काढने लगी।

इसे लो! उसने दूसरी सेविका से कहा।

सेविका ने शिशु को ले लिया।

साधारण जूडा बना दो, अम्बिका रानी आ रही है। धूप गरम भी हो आई। अन्दर जाना होगा।

परिचारिका के हाथ जल्दी-जल्दी विन्यास करने लगे।

दो सविकाओ के साथ सामने म अम्बिका आती हुई दिखी। एक सेविका की गोद म धतराष्ट्र था।

आओ, मैं स्वय तुमसे मिलने को आतुर थी। यह कई दिन स अस्वस्थ हो रहा है। अम्बालिका ने खडे होते हुए जम बडी बहिन का स्वागत किया। फिर वह सविका की गोदी के धतराष्ट्र को पुचकारने लगी—कहिये महाराज, किस विचार म मग्न है।

बच्चे ने पलकें झपझपाकर आवाज का अनुसरण किया।

मैं तुमसे ही बोल रही हू, महाराज!

अब की बालक सेविका की गोद से बाहर होने के लिए कसमसाने लगा। अम्बालिका न उस गोदी मे लिया।

श्रीमान जी, जल्दी बडे होइये, ताकि अपने आप यहा आ सकें। वह खेलने लगी।

अम्बिका पाडु को थपथपा रही थी, उसके गछे बालो पर स्नेह से हाथ फेर रही थी।

अन्दर चलें या यही बठोगी! अम्बालिका ने पूछा।

अन्दर ठीक रहेगा। धूप तेज हो गई है।

हा, मुझे भी लग रही थी। केश धोये गये थे ना, इसीलिए यहा बठी थी।

दोनों अदर आ गई।

क्या विशेष मतव्य से आई हो ? अम्बालिका ने पूछा।

हा, परिचारिका से अलग होना होगा। अम्बिका ने उत्तर दिया।

अम्बालिका ने परिचारिकाओं को बाहर रहने की आज्ञा दी।

बैठो ! उसने कोमल पीठिका की ओर सकेत किया। अपनी भी खिसकाकर उसके निकट ले आई।

बूढ़ी धात्री तुम्हारे पास भी आती होगी ?

हा, कभी-कभी आती है। अम्बालिका ने उत्तर दिया।

राजमाता ने महर्षि व्यास को निमत्रण भिजवाया है और उन्होंने आने की स्वीकृति भेज दी है। उनके लिए फिर राजमाता के महल क्षेत्र मे व्यवस्था की जा रही है।

मुझे भी सूचना है।

बूढ़ी धात्री इधर-उधर की बातें करके जानना चाहती है, क्या मैं धृतराष्ट्र के नेत्रहीन होने के कारण असतुष्ट हू।

वह यह भी जानना चाहती थी कि क्या तुम पाडु के सम्पूर्ण अगों और अति सुदर होने की वजह से मुझसे दुराव रखने लगी। वह मुझसे ऐसी बातें करती थी जिससे मेरे मन का कोई असतोष प्रकट हो। राजमाता कही फिर से । अम्बालिका ने वाक्य पूरा नही किया।

अम्बिका ने उसके अनुमान का समर्थन किया। मुझे भी लगता है कि फिर भीष्म तथा राजमाता ने हम राज्य के नाम पर साधन बनाने की मत्रणा की है। अम्बिका किसी भी तरह से घबराई हुई या हताश नही थी जैसे पहले ऐसी स्थिति मे हो जाया करती थी।

राजमाता हम मा की भाति स्नेह करती है। हमारी सुविधाओं का ध्यान रखती हैं। हमसे अत पुर की समस्याओं पर परामर्श भी लेती हैं। पर कभी-कभी रहस्यमय क्यों हो जाता है ? क्या हम इतनी भोली हैं कि उनका मतव्य नही समझ सकती ! अम्बालिका के मुख पर तनाव झलकने लगा था।

गुस्से मे होने की आवश्यकता नही है तुम बड़ी जल्दी उत्तेजित होने लगती हो। अम्बिका ने टोका। फिर वह आगे बोली—हम उनके मतव्य के प्रति आश्वस्त कैसे हो। यदि भीष्म की राय हुई तब विवश हो जाना होगा। उसका भय हल्का-सा प्रकट हुआ।

तुम आश्वस्त नही हो पर मैं हू। मुझे सदेह नही है कि राजमाता की इच्छा क्या है। भविष्य के प्रति स्थाई तौर पर सदेहशील हो जाना क्या मानसिक विचलन नही है ? यदि मेरे सामने आकस्मिकता मे भी ऐसी परिस्थिति आई तो अवज्ञा करूगी, चाहे भीष्म का कोपभाजन होना पड़े। अम्बालिका के स्वर ने

दृढता ले ली थी।

यह गाज तुम्हारे ऊपर नही मुझ पर गिरेगी। वह जानती है, मैं तुम्हारी तरह उनका विरोध नही कर सकती। मैंने नेत्रहीन सतान होने पर भी भाग्य से समझौता कर लिया। बनी धात्री कह रही थी, नेत्रहीन सतान के लिए यदि उसका सहारा उसका छोटा भाई हो ता कितना अच्छा रहे।

फिर भी तुम्हे महर्षि द्वपायन के आने के कारण म सदेह है? निश्चित रूप से उन्हे इसीलिए निमत्रण दिया गया है। महर्षि का क्या हो गया है? वह मना नही कर सकत? अम्बालिका विचार म खो गई। उसकी आखो के सामने वह अनुभव उतर आया जब उसने महर्षि स प्रश्न किया था, आपने मुझस स्वच्छता तथा समपण की अपक्षा की, आप स्वय समर्पित होग या तटस्थ?

अम्बिका न उसे विचारा म कही दूर हुआ उडा हुआ, देखा ता स्वय विचलित हो गई। अम्बालिका कहा पहुच गइ? मैं तुम्हारे पास दृढता लने आइ हू। मुझे पहला अनुभव इतना कपकपा देता है कि दूसरे की कल्पना नही कर सकती। अम्बालिका के काना म आधी बात पडी। बडी रानी, अपनी लडाई अपन आप जीतनी होगी। मैं अपनी जानती हू। महर्षि वेद यास को मेरे पास स असफल लौटना हागा, वह चाहे घारतम शाप दे दें।

अम्बालिका की दृढता दखकर अम्बिका का वण बदल गया। भय, जो अब तक हल्की छाया म मुख पर था, स्पष्ट झलक आया।

राजमाता का मतव्य पूरा नही हागा। वह अगर मुझे भयानक हादसे म डालकर विक्षिप्त करना चाहती हैं तो मन की कर लें। मैं महर्षि की कुरूपता नही सह सकती। अम्बिका ने साहस क सारे अस्त्र गिरा दिये।

इसीलिए मैंने कहा, अपनी लडाई अपने आप जीतनी होगी। यह हताशा का समपण खुद को अस्तित्वहीन कर देता है। देखो कितनी विवण हो गई। दुविधा को दूर फेंककर निश्चय कर लो कि एसा नही होने दोगी। धोखा खाने से बचना। यदि कहो तो मैं राजमाता से पहल ही उनका मतव्य प्रकट करवा दू। और स्पष्ट कह दू कि

नही। राजमाता को अबकी धोखा खाना होगा। अम्बिका दूसरे धतराष्ट्र को जम नही देगी, जीवन भर दूसरा के सहारे जीने के लिए। एक गहरी-सी उच्छवास अम्बिका के गुह्य-गह्वर से निकली।

अम्बालिका के होठा पर स्मित थी, जसे उसने भावी रण की विपक्षी रणनीति पर कटु व्यग्य किया हो।

थोडी देर म स्थिर तथा सामान्य हाकर बडी रानी अम्बिका खडी हो गइ। तुम कब आ रही हो?

आना होगा, जब तक अनचाही उत्पन्न की गई परिस्थितियों को विपन्न नहीं कर पाती।

(२६)

परिषद् के विशिष्ट वृद्ध मंत्री, अन्य सम्माननीय वृद्ध, राजपुरोहित व विशिष्ट प्रतिनिधि के रथ श्रेणी अनुसार पंक्ति में मार्ग पर चल रहे थे। पीछे के छोर से तीन चार रथ पूर्व महर्षि व्यास रथ में विराजमान थे। उनके और उनके शिष्यों के रथ पर ध्वज फहरा रहा था। रथों का यूथ सरस्वती नदी के किनारे किनारे हस्तिनापुर की तरफ अग्रसर हो रहा था। दो अश्वारोही पहले रवाना कर दिये गये थे कि भीष्म पितामह, राजमाता व नगर को पूर्व सूचना मिल जाये। रास्ते में पड़ने वाले ग्रामों को मौखिक प्रचार से सूचना प्राप्त थी कि महर्षि नगर जा रहे हैं। ग्रामवासियों की ओर से कहीं-कहीं श्रद्धा अभिव्यक्त करने के लिए आयोजन रखे गये थे। पुरुष नारी, बालक-बालिकाएं दर्शनार्थ उपस्थित हो जाते। उनके लिए यह दृश्य भी अद्भुत और असम्भव जैसा था। जिस ग्राम में पड़ाव होता, वह पुण्य प्राप्ति से निहाल हो जाता।

वन सघन और हरे भरे थे। कृषि सम्पन्न व भरपूर थी। तृप्ति का भाव ग्रामवासियों के चेहरे पर था। श्रेष्ठता और सम्पन्नता की श्रेणियां होना मानवीसमाज की रचना में है। सृष्टि में है। प्रकृति में है। पर एक संतुलन है। वह संतुलन ऋत के कारण है। ऋत की पहचान धर्म की पहचान है। उसका व्यवहार धर्म और नीति है। निरंकुश राज्य में इसी का असंतुलन होता है। वह वहां की प्रजा के मुख पर दुःख व उदासी के रूप में झलकता है। अतः क्रुद्ध होता है तथा ऊर्जा शापित हो जाती है।

महर्षि व्यास गतिवान रथ में सम्पन्न कृषि को देख रहे थे, तो उस उत्साह को भी जो कर्म में लगे ग्रामीण नर-नारियों में था। यह छिपता नहीं, उछालें और छपके लेता है। गायें व अन्य पशु स्वस्थ थे। कुएं और सरोवरों पर जल भरते पुरुष स्त्रियों में गति थी।

फिर रथों का समूह नगर में प्रविष्ट हुआ। भीष्म पितामह तथा अन्य भद्रजनों की उपस्थिति आगमन को महिमा मंडित कर रही थी। मुख्य द्वार पर स्वागत का आयोजन था। श्रेष्ठ ब्राह्मण व पंडित महर्षि के पूजन करने की प्रतीक्षा में थे। पूरा नगर द्वारों से सजा था।

स्वागत हुआ। भीष्म पितामह ने नमन किया। आशीर्वाद पाया। जय-जयकार गूंज उठी। पुष्प और अक्षत उछलने लगे। शोभायात्रा का मार्ग दर्शनाभिलाषियों से भरपूर था।

गवाक्षो से नारिया तथा बच्चे सुमन पखुडिया की बरखा कर रहे थे। महर्षि की सौम्य मुद्रा पर गाम्भीर्य था। सिर्फ एक हाथ आशीर्वाद के लिए उठता था। शिष्य वृन्द नगर की शोभा व श्रद्धालुओ के उत्साह को देखकर महर्षि की महिमा से अभिभूत हो रहे थे। राज्य द्वारा प्रदत्त आदर नागरिको के लिए वैसे भी विशेष प्रतिष्ठा योग्य हो जाता है।

शोभायात्रा निश्चित मार्गों से गुजरती हुई महला के क्षेत्र मे पहुच गई। फिर उस स्थान पर पहुच गई जहा ठहराने की व्यवस्था थी।

विशिष्ट व्यवस्थापक अपने-अपने काय म तत्पर सुविधाए उपलब्ध कर रहे थे। ब्राह्मण व पुरोहित आदेश लेने को उपस्थित थे।

राजमाता हर्षित थी। अम्बिका भयभीत। अम्बालिका भावना और आवेश से आत प्रोत। राजमाता जानती थी अम्बिका म उनकी आज्ञा न मानने का साहस नही है। उन्हे आश्वस्त होने के लिए एक स्वस्थ, पूर्ण रोगहीन उत्तराधिकारी की आवश्यकता थी। वह अम्बिका स हो तो बडी रानी की सतान होने के नाते सिंहासन पर बैठ सकता है।

अम्बालिका ने अम्बिका के पास आकर उससे पूछा था—क्या विचार किया बडी रानी? राजमाता का आदेश आ गया?

अभी तो नही आया। पर मैं स्थिर नही हो पा रही हू।

तब तुम अवश्य आज्ञा मानोगी और

नहीं, यह भी नहा होगा। मैं महर्षि से विनती करूगी कि वह मेरी अनिच्छा को जानें। जानकर मुझ पर दया करें। बाकी जसा भाग्य म होगा उसे मैं भी कैसे टाल सकूगी।

अम्बालिका हसी थी। विनती करोगी महर्षि म। राजमाता को स्पष्ट मना नही कर सकती। कमी हो तुम। साहसहीनता के लिए भाग्य का बहाना चाहती हो। तुम खुद कुछ नही हो।

मैं कब कुछ हो सकी? नही हो सकी अम्बालिका। न पति के सामने हो सकी न राजमाता के सामने। अभागी थी तभी तो ज्योतिहीन सतान मिली। यह भाग्य नही तो क्या है?

ओढ लो अपने पर तुच्छपन। फिर कोई तुम्हारा साथ भी देना चाहे तो कसे देगा? सोचती [redacted] राजमाता के विरुद्ध तुम्हारे लिए खडी भी होऊ तो क्या पता किस क्षण तुम उनके व्यक्तित्व के सामने अस्त्र जमीन पर फेंक दो।

गिरे ही हैं। अम्बिका ने कहा था। परिस्थिति के वक्त जो सूझ गया वही इस पार या उस किनार करेगा। तुम मुझे मेरी हालत पर छोड दो। अम्बिका की आखें टबडबा आई थी जसे निरीह पक्षी उस खिलवाडी बदर से डरा हुआ कोटर म सिकुडा हो जो अपना हाथ बार-बार कोटर म डाल रहा हो।

अम्बालिका लौट आई थी। उसके जोश पर अम्बिका ने ठंडे जल के छींटे डाल दिये थे।

(३०)

महर्षि द्वैपायन प्रातः की संध्या वंदना से निवृत्त होकर अध्ययन में व्यस्त थे। उन्हें भीष्म की प्रतीक्षा थी जिन्होंने दर्शन व विचार विमर्श हेतु समय निश्चित किया था। अन्य शिष्य सुविधा का स्थान देख वृक्ष के नीचे बैठे, अध्ययन कर रहे थे। या, जिज्ञासुओं से चर्चा कर रहे थे। यह जिज्ञासु भी सामान्य ब्राह्मण व पुरोहित नहीं थे, बल्कि विशिष्ट श्रेणी के थे जिन्हें राजमहलों में प्रवेश प्राप्त था। व्यवस्था में लगे हुए परिचारक तथा उन पर निगरानी करने वाले अपने अपने कार्य में लगे हुए थे। भोजनशाला में ब्राह्मण शुचिता से सात्विक भोजन तैयार कर रहे थे। महल में आवास होने के बावजूद स्थान खुला हुआ था। दृश्य आश्रम जैसा वातावरण उपस्थित कर रहा था।

धूप में चमक थी। वायु मंथरगति से बह रही थी। वृक्षों में फुदकते पक्षियों का कलरव जैसे श्लोकों का गायन कर रहा था।

भीष्म के आगमन की सूचना आते ही सर्वत्र सजगता हो गई। द्वार से दो रथों ने प्रवेश लिया। पीछे वाले रथ में भीष्म विद्यमान थे। बानक राजसी नहीं था। श्वेत एवं पीत वस्त्र थे। गले में रुद्राक्ष की माला शोभा दे रही थी। भाल की विशालता व चेहरे का तेज भव्य व्यक्तित्व के अनुकूल था।

रथ रुका। अभिवादन शुरू हुआ। स्वभावतः हर ओर की दृष्टि उन पर केन्द्रित हुई। भीष्म रथ से उतरे। उन्हें उस तरफ ले जाया गया जहां द्वैपायन विराजमान थे।

सामने होते ही भीष्म ने चरण-स्पर्श किया।

तेजस्विता प्राप्त करो। आपकी प्रतीक्षा में था। द्वैपायन ने आसन पर बैठने का संकेत किया।

भीष्म बैठ गये। असुविधा तो नहीं है, महर्षि ? भीष्म ने पूछा।

व्यवस्था बहुत अच्छी है। किसी भी कमी नहीं है। आप जैसा धर्म सम्पन्न राज्य का संरक्षक हो, तो किसी भी स्तर पर श्रेष्ठता क्यों न प्राप्त हो।

महर्षि, निवेदन है कि आप मुझे सम्मानपूर्वक सम्बोधन न दें। आपके समक्ष मैं जिज्ञासु अध्येता बना रहना चाहता हूं। आपका वरद हस्त व मार्गदर्शन जब तक कुरुवंश को प्राप्त रहेगा वह श्रेष्ठ राज्य ही रहेगा। भीष्म ने नम्रता से कहा।

यह तुम्हारी शालीनता है। मैं मात्र औपचारिकता में नहीं कह रहा हूं। यह सत्य है। मुक्तता और उत्साह है प्रजा के हृदय में कि व्यवहार तथा वाणी में छलकता है। एक राज होता है जो राजा के द्वारा चलाया जाता है एक स्वतः

चलता है, क्योंकि मत यो की न्याप्ति होती है उसमें। न्याय भी सहज स्फूर्त होता है।

प्रयास के रहते भी सतोषप्रद फल नहीं दीखते। मैंने राज्य विस्तार की भावना को लगभग रोक दिया है। ऐसा अनुभव होता है कि धम शुष्क क्रियाओं म बदलता जा रहा है। लोग मूल सस्कारो स हट रहे हैं।

तुम्हारा सदेह है। मन ऐसा नहीं पाया। राज्य विस्तार भी राज्य का निहित धम है। क्या उसस मुख मोडना प्रभाव को सकुचित करना नहीं होगा ? सत्य शक्ति सुस्त होकर अपनी दक्षता खो देगी। महर्षि ने भीष्म को दखत हुए पूछा।

भीष्म पल मात्र को चुप हो गये। उनके पास कई उत्तर थे—व्यक्तिगत परिस्थिति सापेक्ष, तथा नीतिगत। क्या महर्षि न जानकर इस खोजी प्रश्न को रखा है ? सारी स्पष्टताओं के होते हुए भी भीष्म कहीं न कहीं अपने को उलझा हुआ पाते हैं। चित्रांगद की अहम्मन्यता भरी राज्यविस्तार की भावना न उन्हें ठेस पहुचाई थी। उसकी जिद सीमा का उल्लघन कर अप्रत्यक्ष रूप स भीष्म की उपक्षा बन गई थी। वह क्या करते जब वह चेतावनियों को भी ध्यान दिये जाने योग्य नहीं समझता था। राजा तो वह था ना। सरक्षण की स्थिति एसे म स्वत तटस्थता ले लेती है।

किस विचार मे हो गये ? द्वपायन न अबकी मुस्कराकर पूछा।

महर्षि, क्या राज्य विस्तार के लिए निरन्तर युद्धो म सलग्न रहना जन धन की हानि नहीं है ? जनपद एक तरफ प्रभुत्व अर्जित करता है, तो दूसरी तरफ अशाति की मानसिकता भी सहता है। और पराजित राज्य प्रसन्नता म तो अधीनता नहीं स्वीकार करता। भीष्म ने उत्तर दिया। लेकिन उन्हें लगा यह उत्तर वैसा नहीं था जसा वह देना चाहते थे। यह उनके मतव्य से परे हो गया था।

राज्यधम और क्षत्रिय धम युद्ध से सलग्न है। यह अलग नहीं हो सकते। जसे वश्य व्यापार विस्तार के कम स तथा ब्राह्मण प्रज्ञा की जागति के कत्तव्य से। शूद्रो का सवा धम करना ही होगा, वरना समाज शक्ति व सवधन कसे प्राप्त करेगा ? सतुलन नहीं रहा तो ठहराव उत्पन्न होगा या विघटन। पर तुम्हारी यह बात सही है कि कोई भी राज्य निरन्तर युद्धकामी नहीं रह सकता। युद्ध के अतिरिक्त भी उपाय है अन्य राजाओं व जनपदो को अपने वचस्व म लेने के।

भीष्म को जसे वह बिंदु मिल गया जिसके सहारे वह अपनी नीति व मतव्य बता सकें। वह तुरन्त बोले—महर्षि के प्रति निष्ठा रखते हुए मैं अपने विचार रखना चाहता हू इस आशा म कि वह मेरी दृष्टि को सशोधित करें। मैं प्रथमत मानता हू कि क्षात्र धम हो अथवा राज्य धम, उसे प्रज्ञावान तत्त्ववेत्ता ऋषि तथा आचाय स निर्देश लेना ही होगा। तत्त्वो की प्राप्ति तटस्थ चिंतन से होती है। राजा, क्योंकि घोर यथाथ के बीच परिस्थितियो की प्रतिक्रियाओं म उलझता रहता है अत उसके निष्कष दोषपूर्ण तथा स्वाथ कद्रित हो जाते हैं।

लेकिन भीष्म जैसे सयमी और विशद अध्येता से ऐसा नहीं हो सकता। द्वैपायन ने बीच म टिप्पणी की।

भीष्म महर्षि की तरह साधना सम्पन्न एव आत्मजयी नहीं है। शक्ति का केन्द्र होना विचलित होने की सम्भावना हर समय पोषित करता है।

सामान्य राजा के लिए व्यास ने विश्वास अभिव्यक्त करते हुए अपने मन का बात कही—भीष्म युवा अवस्था से सकल्प का धनी है, उसने कामनाओ को अकुश म रखा है उन्हें धम के माग और प्रजाहित म लगाया है। मुझे किंचित भी सदेह नहीं है कि वह न्याय का अपने लिए अप उपयोग करेगा।

इसीलिए महर्षि मैं शक्ति और धम का सन्निकष श्रद्धा, वश्या व कृपका म, सवका व समस्त प्रजा म विकेन्द्रित करना चाहता हू। कुरु राज्य की चारित्रिक श्रेष्ठता और सम्पन्नता एसा आकषण है। उस क्षति के लिए अतिरिक्त शक्ति और सम्पन्नता होनी चाहिए। अभी कुरु राज्य को उस शक्ति को अर्जित करने की आवश्यकता है।

वदव्यास का भीष्म म नयी दृष्टि दिख रही थी, उन्होंने उसका समथन किया। लकिन फिर भी उस चतावनी दी—पितामह का चिंतन सही है। पर भौतिक सम्पन्नता अकमण्यता व भोग को बनाती है। यह शासक और प्रजा को बेपरवाह बना सकती है। सतत सजगता को धारहीन करके नतिक बवाबा के बहाने द्रवती है। इसके प्रति भीष्म का स्वय तथा प्रजा को सतक व सचेत रहना होगा। कुरु राज्य का भविष्य इसी पर निभर करेगा।

महर्षि का माग दशन, उनकी प्रज्ञा सम्मत सलाह मिलती रहगी तब भविष्य सदिग्ध नहीं रहेगा। भीष्म में शब्द म अगाध श्रद्धा थी।

मेरा आशीर्वाद है। परन्तु

परन्तु क्या महर्षि ? भीष्म चौंके।

कुछ नहीं। स्वय मेरे सामने भी स्वीकृति और अस्वीकृति की दुविधा प्रस्तुत हो गई है। कदाचित् तुम परामश दे सको।

मैं। आपको !! भीष्म आश्चय म थे।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का द्वन्द्व है। साथ म कतव्य का प्रश्न भी है। महर्षि अतिरिक्त गम्भीर हो गये थे। साधारण व्यक्ति की तरह चुप्पल।

भीष्म बोल नहीं पाये।

द्वन्द्व तो धम के साथ स्वाभाविक है। आत्मजयी भी निद्वन्द्व नहीं है। राजमाता ने चाहा है कि मैं पुन अम्बिका म नियोग के लिए स्वीकृति दू। धृतराष्ट्र और पाडु क्या उत्तराधिकारी होने के लिए पर्याप्त नहीं हैं ?

राजमाता ने अपना इच्छा मेरे सामने प्रकट नहीं की। ऐसा क्या ? भीष्म अचम्भे म हुए जो उनके चेहरे से अभिव्यक्त था।

साहस नहीं जुटा पायी। मुझसे कहा कि मैं उनकी इच्छा तुम्हें बता दूं। वह मेरी स्वीकृति के बारे में भी सन्दिग्ध हैं।

जैसा आपका निर्णय हो। भीष्म ने आहत उत्तर दिया।

भीष्म क्या सोचते हैं? व्यास ने पूछा।

तृष्णा सीमाहीन होती है। भवितव्य को क्या इससे घेरा जा सकता है? भीष्म चिन्तन में हो गये थे। कहीं उनको दुःख था कि राजमाता ने अपना मन्तव्य उनसे छिपाया क्यों?

मैं स्वयं अपने को तैयार नहीं पा रहा हूं। यह तृष्णा ही है। परन्तु सुरक्षा की भावना भी। लेकिन यह कैसी सुरक्षा की भावना? वियोग अपरिहार्य स्थिति में समाधान है वह सामान्य इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकता। तुमने यह समाधान सुझाया था, ऐसी स्थिति में क्या सोचते हो?

महर्षि ने जैसे अपना संकट भीष्म को हस्तांतरित कर दिया। भीष्म कुछ क्षणों के लिए स्तब्ध रहे।

अम्बिका के साथ पहले भी अन्याय हुआ था। उसे राजमाता ने पूर्व सूचना नहीं दी थी कि मैं प्रस्तुत होऊंगा। द्वैपायन ने कहा।

वह राजमाता हैं और मां भी। भीष्म ने अपनी भावना अभिव्यक्त की।

हां, मां के सम्बन्ध को मेरे सामने भी रखा गया था। यह अब भी मातृ आज्ञा के रूप में प्रस्तुत है।

आप अस्वीकृत कर सकते हैं। मेरे संस्कार की बाध्यता है कि मां की अवहेलना नहीं कर सकता। भीष्म विकल्पहीन थे।

द्वैपायन ने आपत्ति उठाई। मातृ आज्ञा यदि अनुचित हो तब। क्या विवेक को झुठला दिया जाये?

आपकी स्थिति भिन्न है महर्षि। पर निर्द्वन्द्व तो आपको भी होना होगा।

क्या मुझे अपने विरुद्ध स्वीकृति देनी चाहिए? तुम सही कहते हो। निर्द्वन्द्व स्थिति में ही निर्लिप्त अवस्था हो सकती है अन्तः की। आत्मा की। इसके लिए अपने से दूर होना होगा।

यह साध्य तो आपके वश में है। भीष्म ने समस्या पूर्व बिन्दु पर ढकेल दी।

महर्षि मुस्कराए। राज्य संस्कार एक विशेषता और विकसित करता है— निर्णय अनिर्णय की स्थिति में समय को टाल जाना। यही है न तुम्हारी स्थिति।

अब जैसे विचार विमर्श में स्थिरता आ गई थी। एक स्थिति सामने थी जिसका समाधान स्पष्ट था। परन्तु धार्मिक गुत्थी में उलझा हुआ। भीष्म ने अपनी सहमति असहमति प्रकट नहीं की। श्रद्धा दर्शा कर आज्ञा लेनी चाही। महर्षि ने आशीर्वाद देते हुए आज्ञा दे दी।

वह जान रहे थे, भीष्म का जानकर अपनाया गया मौन पलायन था।

पलायन या अपने को परिस्थति से बाहर लेने का प्रयास।

(३१)

अम्बिका के महल का अंत पुर। अम्बिका धृतराष्ट्र के निकट बैठी थी। धृतराष्ट्र काष्ठ के खिलौनो को लुढका कर खेल रहा था। लुढकी हुई वस्तुओं तक वह घुटनो के बल चल कर जाता और अनुमान से उनको टटोलता। मिलने मे परेशानी होती तो गुस्से मे फर्श पर हाथ पटकता। परिचारिका उस की सहायता के लिए उपस्थित थी। परिचारिका ने देखा महारानी गम्भीर चिंता मे खोई हुई हैं। जैसे वह कही और विचर रही हो।

परिचारिका विशिष्ट थी। अम्बिका की प्रिय थी। शरीर से स्वस्थ्य, अमित सौन्यवती थी।

स्वामिनि! किस कल्पना मे डूबी है? उसने पूछा।

कल्पना मे नही सोच मे।

कैसे सोच मे? उसने धृतराष्ट्र को खिलौना पकडाते हुए पूछा। नत्रहीन धृतराष्ट्र ने खिलौने के बजाय उसका हाथ पकड लिया और उसे हिलाने लगा।

अरे अरे राजकुमार मेरा हाथ है। यह यह है खिलौना। पर धृतराष्ट्र कलाई को पकडे अपनी ओर खीच रहा था। मेरी कलाई मोच जायेगी राजकुमार, छोडो!

धृतराष्ट्र छोडने को तैयार नही था। पकड मे जबदस्त ताकत थी। अम्बिका ने सहायता के लिए हाथ बढाया। छोडो राजकुमार! अरे छोडो!! उसने अपनी उगलिया फसाकर पकड खोली।

धृतराष्ट्र टटोल टटोलकर खिलौने फेंकने लगा।

गुस्से हो गये! आओ मेरे पास आ जाओ। अम्बिका ने अपनी गोद मे ले लिया। परिचारिका अपनी कलाई सम्हला रही थी जो लाल हो गई थी।

बहुत कडी पकड है। वह बोली।

जिद भी है। विवशता है न, न देख पाने की।

कितना सुदर रूप पाया है। ब्रह्मा गरीबो के साथ तो अन्याय करता है राजाओ के साथ भी खेल रच देता है। भला नयन दे देता तो क्या बिगडता उसका? परिचारिका ने कहा।

तब यह तुझे दौड दौडकर पकडता। तू चिल्लाती रहती पर यह छोडता नही। अम्बिका ने मुस्कराते हुए कहा।

अभी भी पग ध्वनि पहिचानने है।

हा लाड भी तो तू ही लडाती है।

स्वामिनि मेरे सतान नही है। इसलिए प्यार उमडता है। राजकुमार से

खेलते हुए अपने को भूल जाती है।

मैं भी अपने को भूल जाती हूं। सोचती हूं जल्दी बड़ा हो जाए। पर इस सुख म भी बाधा पहुंचे, तो मन कैसे चैन पाये ?

इस सुख मे बाधा कैसी, रानी जी ! यह तो अपना सुख है—मां होने का सुख।

अम्बिका फिर सोच म डूब गई। उसका हाथ गोदी म लेटे धृतराष्ट्र पर स्वत फिर रहा था।

रानी जी, कोई खास चिंता की बात है ? परिचारिका ने पूछा।

हा तुम्हारी स्वामिनी मर्यादा की देहरी लांघने का साहस नही जुटा पाती ना, इसलिए उसको सीधी गाय समझकर किसी तरफ भी हाक दिया जाता है। *अम्बिका का स्वर गिरा हुआ था। उसने दीर्घ सांस अंदर ली।*

कैसी गाय ? कैसा हांकना, रानी जी ? अपनी चिंता को स्पष्ट करिये।

जो चिंता सहने के लिए हो, उसे कहने से क्या फायदा ? मैं इतनी अभागी क्यो हूं ? जी मे आता है धृतराष्ट्र को लेकर भाग जाऊ किसी अनजान वन म, अपरिचित होकर आश्रमवासिनी हो जाऊं शांति तो पाऊंगी।

परिचारिका को ऐसे भावनात्मक विस्फोट की आशा नही थी। वह अचम्भे म स्वामिनी को देखने लगी। पल भर का अंतराल लेकर बोली—रानी जी, आप के पुत्र भविष्य के राजा हैं। आपको ऐसा नही सोचना चाहिए। आप बताइये तो, मैं आपकी ओर से राजमाता से आपके कष्ट के सम्बध म कह सकती हूं। धाय के जरिये उन तक आप की चिंता पहुचवा दूगी। छोटी रानी से भी कह सकती हू।

किसी से कहने से कुछ नही होगा। एक यातना भुगती है, दूसरी और भुगतनी होगी। या फिर

आपको मेरी सौगंध है रानी जी, आपको बताना होगा। छोटी हू, हीन हू, पर आपने मुझे स्नेह दिया है। मैं विधाता को साक्षी करके कहती हू आपके लिए यदि जीवन भी देना पड जाय, दूगी। खुशी-खुशी दूगी।

अम्बिका सहानुभूति पाकर और बिखर गई। उसकी आखों से आसू टपक पड़े। गोदी म निन्दियाए धृतराष्ट्र पर जसे फुहार गिरी हो। वह कसमसाया।

राजकुमार को मुझे दीजिये। लिटा दू।

अम्बिका ने परिचारिका के फैले हाथों म धृतराष्ट्र को सरका दिया।

वह उसे लेकर पलग तक गई और लिटा कर लौटी। अम्बिका ने आवेश को रोक लिया था। आचल के सिरे से आंसुओ को सोख लिया था। राजमाता को इतनी दया भी नहीं है कि धृतराष्ट्र छोटा है। कैसी स्वार्थी है उनकी आशा और तृष्णा।

परिचारिका अम्बिका के निकट आकर बैठ गई थी। उसने देखा अम्बिका

शून्य सी उसको देख रही थी।

स्वामिनि !

उसे उत्तर नहीं मिला। दृष्टि उस पर निरर्थी-सी ठहरी थी।

रानी जी ऐसे क्या देख रही है। बताइये न अपनी समस्या ?

सुन ! अचानक जैसे अम्बिका के दिमाग में विद्युत कौंधी घटा को चीर कर।

कहिये। परिचारिका ने तुरंत हामी भरी।

तू अतुल सुंदरी है।

परिचारिका चुप रही।

तू मेरा स्थान ले सकती है। अम्बिका ने टकटकी लगाये उसे देखते हुए कहा।

आपका स्थान ! क्या कह रही हैं स्वामिनि !!

हां-हां मुझे समाधान मिल गया। अचानक। अभी।

बताइये।

यह सिर्फ तू जानेगी, या मैं। पर तू मान जायेगी ना ?

मैंने अभी सौगंध खाई है विधाता की।

उसे छोड़। यह उलझन दूसरी है। राजमाता ने मुझे संतान प्राप्ति के लिए महर्षि व्यास के सामने फिर से प्रस्तुत होने की आज्ञा दी है। मैं नहीं चाहती। उन से भय लगता है। उनकी कुरूपता की याद कंपा देती है। फिर कोई अंधी विकलांग संतान होगी मेरा भाग्य फोड़ने को। अम्बिका ने परिचारिका को इस तरह से दोनों हाथों से पकड़ लिया जैसे वह सहेली हो। मेरी जगह तू जा सकती है। मैं अंधेरे की विशेष व्यवस्था कर दूंगी। बता, जा सकती है ना उनके सामने ?

रानी जी, ऐसा कैसे हो सकता है। भेद खुल गया तो मुझे मृत्यु दंड मिलेगा। महर्षि को क्रोध हो गया तो वह शाप से भस्म कर देंगे। राजमाता आप पर क्रोध करेंगी।

कुछ नहीं होगा। दंड की भागी मैं होऊंगी। मृत्यु के उन क्षणों को सहने से अच्छा होगा छल के अपराध को स्वीकार करना।

मेरे धर्म पर कुलक्षणी होने का कलंक नहीं लगेगा ? परिचारिका ने अपने मन के भय को डरते डरते कह दिया।

इसकी व्यवस्था भी उन्हीं को जाननी होगी जो मुझे आज्ञा दे रहा है महर्षि के समक्ष प्रस्तुत होने की। महर्षि को भी व्यवस्था जाननी होगी। तुम स्वयं निःसंतान हो और दासी का कर्तव्य निभा रही होगी। अम्बिका की जिह्वा पर जैसे चुनौती देवी स्वयं होकर सावधान अधिष्ठित हो गई थी। क्या चुनौती भी कोई शक्ति रूपा देवी है ?

परिचारिका ने स्वीकृति दे दी।

अभी दो दिवस शेष हैं। तुम आत्मा से सबल होकर परिस्थिति के लिए तयार हो जाओ। महर्षि यदि पहिचान भी लें, तो सत्य कह देना।

वह दूंगी स्वामिनि ! इतना आश्वासन प्राप्त करन के बाद मैं साहस से नही डिगूगी। यदि दड भी दिया गया तो दासी होकर स्वीकार कर लूगी।

अम्बिका सतुष्ट थी। उसन त्राणदात्री परिचारिका को अपन गले का आभूषण उतारकर दे दिया।

यह रहस्य तुम्हार और मेरे बीच म रहे। तुम्हें मैं स्वय रानी की तरह सजाऊगी। अम्बिका ने कहा।

आप निश्चित हो, स्वामिनि ! परिचारिका ने झुककर अभिवादन किया। अम्बिका न कृताथ होन के भाव मे उसे स्पश किया। अब उसके चेहरे पर स्वाभाविक दीप्ति झलक आई थी। जसे उसने पराजित कर दिया था 'होनी' को।

(३२)

किसी श्रेष्ठ नाटक की नाट्य स्थिति, जिसका अभिनय होने जा रहा हो। किसी उत्कृष्ट कथाकार की कथा का रोचक अश, जिसम नायिका अपनी दासी को रानी के रूप म सुसज्जित व अलकृत कर, तपस्वी ऋषि को छलने के लिए प्रस्तुत कर रही हो ।

अम्बिका ने उस रूपवती दासी को रानी की तरह आभूषणो से सज्जित किया। उसे इतना आकपक और सुगधमय किया कि महर्षि उसे देख कर चित्त स उद्वेलित हो जाए। अपने कक्ष का क्षीण प्रकाश स इस तरह प्रकाशित रहने की व्यवस्था करवाई कि रात्रि म सब कुछ स्पष्ट हो, पर प्रकाश और धुधले आवरण म। यह रहस्य उसके और दासी के बीच म था। उसकी अय परिचारिकाए व दासिया किंचित सदेह म नही आ सकें इसकी सतकता बरती।

क्या ? भय, अथवा घबराहट तो नही है ? अम्बिका ने दासी से पूछा।

तनिक भी नही। दासी ने उत्तर दिया।

महर्षि बहुत कुरूप हैं उनको देखकर भयभीत मत हो जाना।

मैंने उनक दशन किय हैं। देखकर श्रद्धा उत्पन्न हुई। वह महान तजस्वी हैं।

तब मैं निश्चित हू। तू परिस्थिति को सफलतापूवक निभा ल जायेगी। अम्बिका आश्वस्त हुई।

रानी जी, आप रुष्ट नहीं हो तो एक बात कह दू आप से ! सजी-सजाई दासी ने अम्बिका स पूछा।

कहो ?

मैं महर्षि के सामने सत्य रखना चाहती हूं।

कसा सत्य ? अम्बिका चौंकी।

यही कि वही रानी नहीं उनकी दासी आपके सामने उपस्थित है।

पागल है! महर्षि तत्काल क्रोध में आ गये और वैसे ही लौट गये तब परिणाम जानती है क्या होगा? पुत्र राजमाता और भीष्म का कोपभाजन होना होगा। उसके बाद भी बलि चढ़ना होगा। सत्य जब घातक होता दीखे तब असत्य को अपनाना दोष नहीं है। मेरे साथ भी छल किया गया था। मुझे क्यों नहीं बताया था राजमाता ने कि महर्षि मेरे पास आएंगे! मैं पता नहीं कैसी-कैसी कल्पनाएं कर रही थी उस समय। और अब अंधे पुत्र की मां बनने में मेरा दोष कि मैंने डर कर आंखें क्यों बंद कर ली! अम्बिका रोष में हो गई।

आवेश में न आएं रानी जी! मैंने इसलिए कहा था कि आप पर आंच न आए। मैं पूर्ण आत्मविश्वास में हूं कि अघट नहीं घटेगा। दासी ने कहा।

मुझे अपने भाग्य पर भरोसा नहीं है। अम्बिका ने उसी विचलित अवस्था में कहा। तू नहीं समझती। जैसे जैसे घड़ी बीत रही है मेरा दिल घबराहट ले रहा है। जैसे मैं प्रस्तुत होने जा रही हूं। भोर तक मैं शूलों की शय्या पर होऊंगी।

दासी की हंसी नहीं रुक सकी। अपनी स्वामिनी को आश्वस्त करते हुए बोली—आप शूल शय्या पर होंगी और मैं फूलों की सेज पर। मेरे भाग्य को आपने स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने का अवसर प्रदान किया है क्या वह आपकी कम दया है? जीवन में अमूल्य क्षण ऐसे अद्भुत क्षण हर दासी को प्राप्त नहीं होते। फिर दासी ने झुककर रानी के चरण स्पर्श किये। स्वामिनि! अब मुझे आज्ञा दीजिए। आप निश्चिंत रहिए कि दासी परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार करेगी। मैं भी अंतःपुर में रही हूं।

मैंने तुम पर छोड़ा। जैसा अवसर देखो करना।

मैं आपके तो लग रही हूं न?

हां यदि महर्षि पहिचान न पायें तो वह यही समझेंगे कि

वह कुछ भी समझें पर उन्हें मुझे उपकृत करना होगा। मैं उनके चरणों में पड़ जाऊंगी। संतान की कामना इतनी जाग्रत हो उठी है कि अनुनय विनय भी करनी पड़ी तो करूंगी। वह याचना अवश्य स्वीकार करेंगे।

अब जाओ मेरे कक्ष में। मैं संतुलित होने का प्रयास करूंगी। अम्बिका उसको लेकर शयन-कक्ष में आई। एक बार व्यवस्था को देखा, फिर मन ही मन सूर्य देव, अग्नि देव का स्मरण कर कक्ष से चली गई।

अकेले होते ही दासी को पलभर के लिए घबराहट हुई जैसे उसकी छोटी हस्ती को राजत्व की भव्यता ने दबा लिया हो पर दूसरे ही क्षण उसने अपने को सम्भाला। उसी राजत्व ने मुंह बन्द करकर उसके अहं को पुचकारना शुरू किया—तू दासी होकर इस समय रानी है। रानी की भूमिका का एक रात के लिए पा लेना भी पूर्वजन्म के अनगिनत सुकृत्यों का फल है। जन्मना नहीं सही पर कमी क्या है तुझ में?

उसने उस हल्के हल्के प्रकाश मे एक जलत दीपक के पास जाकर आरसी म अपना प्रतिबिम्ब झाका। मुग्ध हो गई अपने पर। अदर से अश्वस्थता की तरगे उठी। देह भावनाओ से आरोहित हो उठी। अभी भी वह अपन अलकृत सौंदय को निहार रही थी। जम दासीपन के क्षुद्रत्व को विस्मरण की गगा मे बहा रही हो।

हा, कितनी ही बार जब वह गगा स्नान क लिए अय औरतो के साथ गई है—उसन अजली म पुष्प भर कर प्रकट होत सूय भगवान को नमन किया है। फिर उन पुष्पा को धारा म बहाया है।

उसने कामनाए भी मन म दोहराई हैं। गगा मा मुझे सुदर, प्रतिभा सम्पन्न, सतान देना। तुमन भीष्म जस पुत्र को जम दिया। क्या गगा मा का आशीर्वाद है यह।

भीष्म का आत्म बिम्ब हर नारी की मनोकामनाओ पर आच्छादित है। सनान हो तो भीष्म सी। हा भीष्म सी। दासी के नयन अनायास मुद गये। उसकी आखो मे मनोहारी कल्पना चित्र तरने लगा—गगा मा अति सुदर बालक को गोदी म लिये हुए हैं। उसे लाड लडा रही हैं। कह रही हैं—आ! इसे ले जा! तरा ही है।

वह हर्षित सी पलग पर आकर बठ गई। विभोर हो गई अपने कल्पना ससार म। एस ससार म जा तभी उभरता है जब अनुकूल वातावरण हो। अत मुक्त हो। गगनचारी हो।

वह वसी ही बठी थी कि खट-खट क साथ पदचापा के क्रम ने विस्मति भग की। वह हडबडा कर खडी हुई। जब तक सम्भले-सम्भल महर्षि द्वपायन कक्ष मे उपस्थित थे। उसने बिना उह पूरी तरह दखे आग बढकर उनके चरण को स्पश किया।

पुत्रवती होओ! मनोकामना पूरी हो। महर्षि न आशीर्वाद दिया।

स्थान ग्रहण करिय, महर्षि! वह धीरे धीरे आगे चलकर उन्हें विशिष्ट चौकी तक ल आई जिस पर मखमल बिछा था।

महर्षि अपना उत्तरीय सम्भालते हुए बठ गए।

दासी, आपका पूजन करना चाहती है यदि स्वीकृति दें।

दासी हो ना। महर्षि मुस्कराकर बाल।

दासी पर जस अकस्मात पाषाण गिर पडा हो। वह विस्तत आखो से उनको देखने लगी। उत्तर नही बन पडा।

डरा मन! कुछ छन भी मगलकारी होत हैं। महर्षि न धीरज दत हुए कहा। किसी प्रकार का द्वत-द्वद्व ता नही है चित म? उन्होंने पूछा।

जो हर तरफ की अनुकम्पा से हर्षित हो, उसम द्वद्व कम हो सकता है

महर्षि ? मेरे पास है क्या जिस पर गर्व करूं। आपकी निकटता शतशत पुण्य के समान है। पर आपने तुरंत छल को तोड़ दिया।

मैं भी निश्चय तक पहुंचने में अपने से घोर रूप में लड़ा हूं। पर यह समागम शुभ होगा कुरुवंश के लिए। मेरे अध्ययन व आत्मा दोनों ने कहा।

मैं क्या जानूं महर्षि ! मेरे अन्तर एक कामना है मात्र एक कामना। ऐसी सन्तान जन्म ले जो भीष्म भी हो और ... और दासी अटक गई।

कहो ! जब कामना का मुख खुला हो तो उसे बलात अवरुद्ध नहीं करना चाहिए। मुक्तता शुद्ध होती है।

आपकी सिद्ध की हुई आध्यात्मिक शक्ति का अंश उसे प्राप्त हो।

यह लिखित है। हम सब किसी घटना के संयोग मात्र हैं। इच्छाएं, दंभ, योजनाएं प्रयत्न प्रयास, मन आयोजित न होने हुए भी घटना के दुर्गामी परिणाम नहीं जानते। हर घटना का भी तो भविष्य होता है।

मैं मूढ़ क्या जानूं, देव ऋषि ! मेरे पास दृढ़ है श्रद्धा है और सीमित कामना, जो अनायास विस्तार लेकर बलवती हो गई। पुष्प पूजन कर लेने की आज्ञा दीजिये। दासी ने नम्रता से कहा।

जैसा चाहो करो, तुम्हारी श्रद्धा पूर्ण है। द्वैपायन ने स्वीकृति दी।

दासी उठी सज्जित पलंग तक गई और उसी पर पड़े पुष्पों को अंजलि में भर कर ले आई। महर्षि देखते रहे।

उसने आंख मूंदी, उनके चरणों में फूल चढ़ा दिये।

तुम्हें परम धर्मात्मा नीतिकुशल संतान प्राप्त होगी। उसका नाम विदुर रखा जायगा। तुम भी राज्य के श्रेष्ठतम परिवारों का स्तर पाओगी।

यह कैसे होगा महर्षि ! मुझे यही आशीर्वाद पर्याप्त है कि श्रेष्ठ पुत्र की मां बनूं। दासी कृतज्ञता के भाव से ओत प्रोत थी।

यह व्यवस्था मेरी ओर से होगी। धृतराष्ट्र पांडु के समकक्ष होगा होने वाला पुत्र। क्योंकि वह वास्तव में श्रद्धालु मां की संतान होगी। द्वैपायन की अर्जित साधना की अध्यात्म शक्ति उसे मिलेगा। महर्षि ने दासी के सिर पर आशीर्वाद का हाथ रख दिया।

दासी के रोम रोम से शक्ति स्फूर्त हो उठी। लगभग अर्ध चैतन्य सी हो गई।

उठो ! घड़ी बीत रही है। महर्षि खड़े हो गये। वह स्वयं सज्जित शय्या की ओर बढ़ गये। सम्मोहित सी दासी उनका अनुगमन करती शय्या तक पहुंच गई।

रात्रि एक स्वप्न सी घड़ी घड़ी पहर पहर, बीतती रही।

महर्षि द्वपायन साधक थे, ब्रह्मर्षि थे, अगाध ज्ञान के प्रामाणिक विद्वान थे। भीष्म कुरु वश के तपस्वी सरक्षक थे। द्वपायन की व्यवस्था उनके लिए धर्माज्ञा थी, जब राजमाता की आज्ञा नैतिक बाध्यता।

हस्तिनापुर म रहने की अवधि म उन्होन यज्ञ के आयोजनो म भाग लिया। आमत्रित किये जाने पर सभाओ म उपस्थित हुए। वेदो की व्याख्या की। अनेक धम सभाओ मे आत्म सयम, गृहस्थ्य धम, सु समाज व्यवस्था, व परोपकार, दान-दक्षिणा व वर्गों के सामज्य पर प्रवचन किये। उनका यह प्रवास आचार्यों, भद्र-जनो क्षत्रिय, वश्यो, ब्राह्मणो व सेवको के लिए शिक्षण प्राप्त करन का सुअवसर था। जहा वह नही जा पाते अपने शिष्यो को भेज देते। धम के अनुकूल राज्य व्यवस्था समाज व्यवस्था, जाति व्यवस्था व गृह व्यवस्था होने से ही राजा प्रजा कर्त्तव्यबद्ध होती है। सयम उद्यम, सवेदना व परोपकार के बिना वह सूत्र छिन्न भिन्न हो जाते हैं जो समाज को, राज्य को सम्बद्ध करते है। सम्बद्धता नही, तो पाखड फलेगा। पाखड, स्वार्थकामी होता है। उसके गभ म विग्रह पोषित होता है। कोई कुल, कोई वश, कोई राज्य इसलिए अनुकरणीय नही हो सकता, कि वह सम्पन्न है, उसकी चतुरगिनी सेना दक्ष है। वह इसलिए यशवान होगा कि धम, अथ व्यवस्था, कामनाओ और इच्छा के ससार का निर्देशित करता है। राजा एव प्रबधक यदि प्रजा की उपेक्षा कर उसे मात्र कर कोष समझते है, तो वह अन्याय होगा। अन्याय, अत्याचार, शोषण की गति, सवनाश की ओर होती है। इसमे संस्कृति विकृत होती है।

द्वपायन का प्रवचन, राजमाता ने अत पुर म रखा। भद्रजनो के परिवार की नारियां, राजमाता, अम्बिका, अम्बालिका आदि सब उपस्थित हुइ। महर्षि के शिष्यो ने वदना एव मत्रोच्चार किया। पश्चात महर्षि ने उदबोधन किया

मानशक्ति व पितशक्ति पथक पथक शक्ति नही है। सत्ता का अभिप्राय व्यवस्था से है। व्यवस्था का अथ है सरसता, सामजस्य।

मात सत्तात्मक व्यवस्था म मा का महत्त्व प्राप्त था। मा, अर्थात वत्सल हृदया जननी। पर जननी का महत्त्व पिता के बगर कस हो सकता है? जो परस्पर एक दूसर के पूरक हो और कुल, वश के सरक्षक व पोषक हो, उनमे अधिकार अथवा प्रधानत्व की ईर्ष्या कसे? पुरुष और प्रकृति के मिलन का परिणाम सष्टि है। जन्म सजन, उत्पादन, नरत्व व नारीत्व अश के समागम का परिणाम है। समागम, आकषण व परस्पर दान के बगर नही हो सकता। सष्टि म जो भी सजीव निर्जीव, प्राणवत दीखता है, वह इसी यत्न का क्रमिक विस्तार है।

द्वपायन ने आख मूदी और जैसे आत्मा स सलग्न होकर देववाणी बोलने लगे।

हमने पित स्नेह की सरसता भी जानी है मात के दिव्य वात्सल्य भाव को भी मा की आंखा म झलकते देखा है। वे दोनो पूज्य तत्व हैं। दोनो म आत्मा की निश्छलता व मात्र आहुति है। इसलिए आप सब महान हैं। भोक्ता या भोग्या के आधार पर विभक्ति गलत है। संधि सनातन है, निरंतरता है। विभक्ति, विभाजन श्रेणीकरण स्तरीकरण मात्र समझने के लिए है। निहित सजन प्रक्रिया को समझने के लिए।

अत हे मात शक्ति, मैं आपका नमन करता हू आपकी मर्यादा अक्षय रहे। जिस दिन मानत्व विकृति ले लेगा या पुरुष भाव नारी भाव को अपने से निम्न समझेगा उस दिन राज्य न रहेगा न वश। विघटन हो जायगा समाज का।

शक्ति रूपा आप सब तन मन आत्मा से कुरुवश की शक्ति व आध्यात्मिक ऊर्जा बनिये। भीष्म जसे ज्ञानी, योगी और वीरव्रत जिस वश के सरक्षक हों वह निश्चित ही राज्यों म उत्तमोत्तम व श्रेष्ठ गिना जायेगा।

इसके बाद महर्षि द्वपायन ने श्लोकों का गायन किया। उनकी आत्मा से सरस्वती स्वय लय व माधुर्य ग्रहण करके सम्मोहित नारी व न के हृदय म अमिट संस्कार उकरती जा रही थी।

यह प्रवचन नही था महर्षि द्वपायन का प्रज्ञावादी दर्शन था जो परपरा म बहती चली आ रही दष्टियो (ज्ञानो) म उग आई खरपतवार को नकारकर व्याव हारिक कम-केन्द्रित समन्वय पुष्ट युग धम की खोज कर रहा था। प्रवास काल म उनकी अन्तिम चर्चा भीष्म से नितात एकात म हुई।

महर्षि द्वपायन भीष्म के आश्रम सम भुवन म भद्रासन पर बठे थ। सामने भीष्म उनसे कुछ छोटे सिंहासन पर बठे थ। निकट श्रेष्ठफल व स्वच्छ दूध रखा था।

पहले फलाहार ग्रहण कर लिजिये। भीष्म ने निवदन किया।

महर्षि ने दुग्धपान किया। नाम मात्र के फल ग्रहण किये।

पितामह विश्रामकाल बहुत सुविधापूण तथा आनन्द म बीत गया। यह सब आपकी सुव्यवस्था है।

महर्षि, यह आपकी अनुकम्पा है जो समय समय पर आकर हम अध्यात्मयुक्त विवेक देते हैं। पर मेरी एक आपत्ति है आपकी नम्रता को लेकर।

वह क्या हो सकती है। महर्षि मुस्कराते हुए बोले।

मुझे आप पितामह कहते हैं। अन्यों को नही मना कर सकता, पर आप तो

फिर मुझे कसे मना कर सकते हो। प्रजा तुम्हें स्नेह और श्रद्धा के कारण पितामह कहती है। तुम्हारी अखण्ड प्रतिज्ञा ने तुम्हारी जीवन शली ने, संज्ञा को विशेषण बना दिया।

पर मैं आपसे अपेक्षा नही करता। भीष्म ने कहा।

क्यों नहीं करते ? यह मेरे अंत की श्रद्धा है। क्या परस्पर श्रद्धा का सम्बन्ध नहीं हो सकता। इससे पूर्व की चर्चा में मुझे लगा था कि तुम कहीं बहुत सही थे, मैं गलत दिशा में सोच रहा था। वहाँ, राज्य विस्तार के सम्बन्ध में जो चर्चा हुई थी। मैं राज्य धर्म और क्षत्रिय कर्त्तव्य के साथ राज्य विस्तार को अभिन्न मान रहा था तुमने उसका दूसरा पक्ष भी रखा। मुझे उस विचार में सार लगा। वह नारद के चिंतन से जुड़ा है।

भीष्म को उस चर्चा का ध्यान आया, जो उनके और महर्षि के बीच हुई थी, जब वह इससे पूर्व नगर में आए थे। भीष्म ने देवर्षि नारद के विचार जानने के लिए उत्सुकता प्रकट की।

द्वैपायन की उंगलियां अनायास अपने जनेऊ में फिरने लगीं, जैसे इस क्रिया का अपात में चिंतन प्रक्रिया से सम्बन्ध हो। वह बोले—नारद ऋषि का मत था कि राजा को राज्य विस्तार से पूर्व अपने जनपद की सुदृढ़ता को पहिचान लेना चाहिए। मात्र सैन्य शक्ति की श्रेष्ठता किसी राज के प्रबल होने की साक्ष्य नहीं हो सकती। राज्य की कृषि, व्यापार, निर्माण कला अमात्यों, पुरोहितों की परिषद व कर व्यवस्था सब सुदृढ़ हो। नगर व पुर में सम्पन्नता की दृष्टि से अन्तर नहीं हो। शक्ति का स्रोत तो पुर है। ग्राम व्यवस्था यदि सम्बद्ध व विकसित होगी तो राज्य का बलवर्द्धक रक्त प्राप्त होता रहेगा। राज्य प्राणवंत रहेगा।

कहते कहते महर्षि चुप हो गये, जैसे चिंतन में खो गये।

भीष्म ने इस स्तब्धता को छितराना चाहा। किस चिंतन में हो गये, महर्षि ?

पितामह, मुझे किन्हीं क्षणों में लगता है, मैं कुरुवंश से अंत से बंधता जा रहा हूं। अध्ययन व साधना के अतिरिक्त कुरुवंश को लेकर कल्पनाजीवी होने लगता हूं। यह मोह की दशा है।

मोह नहीं महर्षि जीवन की सार्थकता है। मोक्ष यद्यपि अन्तिम व परम लक्ष्य है, पर माध्यम तो यह देह और प्राण हैं। अर्थ और काम धर्म तथा मोक्ष के बीच के पुरुषार्थ हैं इनसे छूटना कैसे हो सकता है ? धर्म इन्हीं के सुनियमन की तो विधा है।

तुम ने उस दिन मेरी दुविधा के सामने मातृत्व के प्रति कर्तव्य की बात रख दी। मैं आत्म विश्लेषण में खो गया। राजमाता की कामना, उनकी आज्ञा, एक तरफ थी, दूसरी ओर मेरे सामने प्रश्न था—यह सम्बन्ध का आग्रह मेरे साथ क्यों ? सब कुरुवंश का भविष्य कल्पना में खड़ा होने लगा। धृतराष्ट्र नेत्रहीन। पाण्डु, पाण्डु [illegible] प्रश्न। ऐसा प्रतीत हुआ कि राजमाता प्रश्न कर रही हैं—क्या मेरा निवेदन मेरी तृष्णा है ? मात्र कामना कि तीसरी राज संतान और हो ?

यह प्रश्न निरंतर मेरे सामने होता रहा। और अंत में राजमाता का निवेदन मातृ आज्ञा जैसा बन गया। मां शक्ति रूपा हो मस्तिष्क में उपस्थित होने

लगी।

भीष्म के होठों पर मुस्कराहट प्रकट हुई। वह इस भावना के अनुभवी थे। उन्होंने कितनी ही बार राजमाता को अपनी अतद्वद्व की स्थिति म शस्य श्यामला वसुधरा देवी क रूप म देखा है। वह होठन्ही होठ म जस कोई मत्र बुदबुदाने लगे।

मैंने स्वीकृति दे दी पितामह पर इस भय के साथ कि कही अम्बिका का असहयोग फिर कोई दुघटना न घटित कर दे। लकिन उसका छन कुरुवश के लिए वरदान बन गया।

कसा छल ? कसा वरदान ? भीष्म चौंके।

अम्बिका स्वय उपस्थित नही हुई, दासी को अपनी तरह श्रृगार करके भेज दिया। दासी की श्रद्धा व निश्छलता मुझे अभिभूत कर गई। मेरी तटस्थता हट कर आत्म विलय बन गई। बडा अदभुत व अनिवचनीय समपण था, जिसकी मैं स्वय कल्पना नही करता था। कदाचित उस दासी की सतान ही मेरी आत्मा की सतान होगा। उस दासी के समक्ष होने वाली सतान का नाम मेरे मुह स अनायास निकल गया—विदुर।

सयोग भी क्या किसी दवी शक्ति स नियत्रित होता है ? भीष्म न पूछा।

शक्ति का धारक भी तो शुद्ध अत होता है। वही आत्मा का पर्याय है। क्या पता सयोग और आत्म त्रिया म अप्रकट प्रक्रिया हो ? बहुत कुछ हमारे ज्ञानातीत भी है। इतना अवश्य है कि विदुर तुम्हारी तरह कुरुवश का विवेक होगा।

आपकी भी तरह महर्षि ! भीष्म ने कहा।

तुम कुशल वाग्विदग्ध हो, भीष्म !

नही महर्षि यह मेरी श्रद्धा और

रुक क्यो गये ? आगे बोलो।

किसी सम्बन्ध को निरतर अपने अदर पाना अत की विवशता भी हो सकती है।

कसी भावना म हो जाते हो पितामह ! महर्षि जसे उद्वेलित हो उठे।

यह देह धम की अनिवायता है। भीष्म ने नत होते हुए कहा।

मैं जानता ▮ भीष्म। पर यही तो कठोरतम स्थिति है—जुडना उबरना। उबरना जुडना। उसके साथ प्रज्ञा को प्रखर रखना।

महर्षि द्वैपायन हस्तिनापुर मे यन की शुद्ध सुगध मे आये थे, अपने आश्रम म श्वेत जलधर-से पहुच गये।

(३४)

सरक्षण और विशिष्ट सहानुभूति रेखाकित कर सकते है परन्तु दर्जा नही

बन्ल सक्त। रेखांकित शब्द का महत्त्व, उस शब्द तक सीमित रहता है, वाक्य और वाक्य के अन्य शब्द तो सामान्य स्तर पर ही रहते ह।

दासी के पुत्र हुआ। महर्षि के कहे अनुसार उसका नाम विदुर हुआ। भीष्म द्वारा बच्चे को खास सरक्षण प्रदान किया गया। व्यवस्था की गई कि दासी और उसके पति को सम्भ्रात स्तर की सुविधाए उपलब्ध की जाए।

महर्षि ने राजमाता को चलते चलत बताया था कि पुत्र अवश्य तेजस्वी तथा कुरुराज्य का शुभचिंतक होगा पर राजमाता को अपने दो ही पौत्रो स सतुष्ट होना होगा।

ऐसा क्यो, महर्षि ? राजमाता ने पूछा था।

मर्यादा विवशता होती है। वह व्यवस्था भी होती है, यदि श्रद्धापूवक स्वीकार की जाय। परतु इससे भी प्रबल होता है व्यक्ति का अत। उसकी भी स्वतत्रता तथा इच्छा को महत्त्व दिया जाना चाहिए। महर्षि ने उत्तर दिया।

राजमाता महर्षि का सकेत नही समझ सकी थी।

महर्षि न तब बताया था, उनका सगम अम्बिका स नही उसकी दासी से हुआ है, और राजमाता की कामना को वह पुत्र पूरा करेगा।

राजमाता सुनते ही क्षुब्ध हो गई थी। अम्बिका की अवज्ञा और उसके छल रचने ने उन्हें आवेश युक्त भी नही किया। उनका रग धूमिल हो गया था। वह जैसे उस परास्त विहगम की तरह हो गई थी जिसे उडते उडते सामर्थ्य भ्रम अहसास करना पड गया हो।

महर्षि ने उनसे कहा था—राजमाता को किसी भी तरह दुखी नही होना चाहिए। अम्बिका यदि अनिच्छा स नियोग की आज्ञा का स्वीकार करती तो फिर दुघटना घटित हो सकती थी। यह एक पक्षीय सस्कार नही है। वह दासी और उससे होने वाली सतान को अपना स्नेह दें।

महर्षि समझा कर गये, पर क्या मन इतनी सहजता से भग्नाशा को स्वीकार कर लेता है ? राजमाता ने यद्यपि अम्बिका से कुछ नही कहा (शायद नतिक साहस नही था) न दासी पर रोष दिखा सकीं, लेकिन दीर्घ समय तक परिस्थिति से सामजस्य नहीं बठा सकी। वह अम्बिका से उदासीन रही। दासी को महत्त्व नही दे सकी। विदुर के जन्म लेने के बाद भी उन्हें वह दासीपुत्र ही लगा। क्या वह दासीपुत्र नही था ? बीज से धरती की श्रेणी तो नही बन्ल सकती। राजा के क्षेत्र से पदा सतान राजरक्त वाली होगी दास के क्षेत्र की सतान निम्नरक्त की।

राजमाता को ताज्जुब होता कि भीष्म दासी की सतान के लिए विशेष सहानुभूतिपूर्ण होते जा रहे थे। अम्बिका का धतराष्ट्र अम्बालिका का पाडु, दासी का विदुर भीष्म की पूछ-ताछ शिक्षा व्यवस्था के अतगत बढने लगे। लेकिन बालको की भिन्न स्वभाव वाली माताओ का उनका अपना स्नेह, पालन-पोषण, चरित्र

और विचार वृत्त, उनके विकास में महत्त्वपूर्ण योग दे रहा था।

अम्बिका मन से कमजोर धृतराष्ट्र के बलिष्ठ शरीर और उसकी ताकत के कौतुकों को देखकर संतुष्ट होती। धृतराष्ट्र अखाड़े में पहुँच कर चाहे जिसको चुनौती देता था। जीतता तो अट्टहास करता, हारता, तो खीझ उठता। दुबारा चुनौती देकर, नियमों का चालाकी से उल्लंघन कर, सामने वाले को पटखनी मार देता। उसकी आपत्तियों को झूठ बताकर अपनी जीत का ठप्पा रखता।

अम्बिका उसकी बड़प्पन की बातों पर विश्वास करती। वह चाहती थी कि धृतराष्ट्र धर्म, दर्शन और नीति का अध्ययन गम्भीरता से करे, लेकिन वैसा वह नहीं पा रही थी। जब भी सुनती तो इन विषयों को लेकर विदुर की तारीफ सुनती।

वह समझाती—पुत्र तुम्हें आगे चलकर राज्य का उत्तरदायित्व सम्भालना है। कुरुवंश की प्रतिष्ठा धर्म व नीति कुशलता से बढ़ी है। उसमें पारंगत होना चाहिए।

उत्तर सीधा मिलता—धर्म और नीति राजा के लिए नहीं प्रजा के लिए होती है। राजा तो उसका पटुता से उपयोग करता है—कभी तलवार की तरह, कभी ढाल की तरह। फिर दासीपुत्र विदुर मेरा मित्र है जो मात्र इन्हीं विषयों में रुचि लेता है। पितामह का उस पर खास स्नेह है।

पितामह तो तुम्हें भी बहुत चाहते हैं मैंने सुना है। अम्बिका कहती।

हाँ पर पितामह बड़े संयमी और भावशून्य हैं। उनके पक्ष का पता नहीं लगता। फिर मैं कैसे जान सकता हूँ? मैं तो अंधा हूँ। धृतराष्ट्र तनिक उदास-सा कहता।

पक्ष की बात तुम पाण्डु के मुकाबले से करते हो। ऐसा तुम्हें नहीं सोचना चाहिए।

क्या नहीं सोचना चाहिए? पाण्डु को धनुर्विद्या स्वयं पितामह सिखा रहे हैं। व्यायामशाला में उसके अस्त्र शस्त्र संचालन की तारीफ़ सारे भद्र कुल के शिक्षार्थी करते हैं। क्या मुझे छोटापन महसूस नहीं होता? पितामह मेरे अंधेपन पर दया करते हैं। यही उनके स्नेह का कारण है। धृतराष्ट्र के मन की बात लेकर ऊपर आ जाती।

अम्बिका किशोर धृतराष्ट्र को कलेजे से चिपकाकर थपथपाती—पाण्डु तेरा छोटा भाई है। तेरी मौसी का बेटा है। उससे किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं पालनी चाहिए। तुम सिंहासन पर बैठोगे तो वही तुम्हारा दायां हाथ होगा।

मुझे किसी पर विश्वास नहीं है। मेरा भविष्य निशाने के लिए लटकी उस ाठ की गोली के समान है जिसे कोई भी बाण भेद कर धरती पर गिरा सकता । लेकिन तुम्हारी सौगंध माँ जिसने मेरे हक पर हाथ डाला उसको बाहों में भींच

वैर खत्म कर दूगा। वह कोई भी हो। धतराष्ट्र अम्बिका की पकड स अलग होकर अपने लम्बे बलिष्ठ हाथो को प्रदर्शित करता होता। उसका चेहरा गुस्से स तावई वण का हो उठता।

धतराष्ट्र का दूसरा पक्ष विलास का था। जिसपर अम्बिका का भी वस नही था। यह तथ्य भीष्म को भी पता था। किशोर अवस्था म ही वह मदिरा का अभ्यस्त होता जा रहा है। उनकी मनाही प्रताडना के बावजूद धतराष्ट्र ने अपनी आदत नही छोडी।

राजमाता ने समय के साथ अजीब उदासीनता ल ली थी। न उत्साह था, न किसी भी कामना के प्रति विशेष ललक अम्बिका के प्रति स्थाई दरार-सी पड गई थी उनके मन म। अपने दिय धोखे का वह बडे होन का अधिकार मानती थी, पर अम्बिका का छल उनकी दष्टि म स्पष्टत मर्यादा का अतिक्रमण था। अम्बालिका कभी भी जिद्दी हो, पर उसन उन्ह नीचा नही दिखाया। महर्षि परिस्थिति को सम्भाल कर चल गय, उनकी जगह कोई दूसरा होता तो

भीष्म न सदेश भिजवाया कि वह राजमाता स मिलना चाहत हैं। राजमाता का आश्चय हुआ। भीष्म को यकायक राजमाता से मिलन की क्यो आवश्यकता पडी? राज्य सम्बधी कसी भी मत्रणा व राय लन-दने की व्यवस्था को वह पहले ही भीष्म का सौप चुकी थी। उन्होने भीष्म स कहा था—भीष्म, मैंने जो भी किया था चाहे तुम्ह भी पहल से न बताकर, वह कुरुवश और कुरुराज्य के भविष्य के लिए किया था। पर मैंन पाया कि अम्बिका के छल न मुझे हर तरफ से पछाड दिलवा दी। द्वैपायन ने ऐसे स्वीकृति दी, जसे मेरी मगतष्णा को मूतता देने की दया कर रह हो। तुम दूर हुए कि मैंन तुम स पहले क्या नही कहा। अम्बालिका भी यान मुसतक आ गई थी कि वह मेरा ही नहीं तुम्हारा भी विरोध करगी मगर उसको नियोग के लिए कहा गया। और अम्बिका ने मेरे सामन इतनी कठोर सास्कारिक स्थिति सामन ला दी कि मैं दासीपुत्र को राज कुमारों क समकक्ष मानू। मेरे सारे सम्बध कसलापन से गये तथा क्या? क्या मैं इतनी दोषी रही?

भीष्म ने राजमाता को टूटा हुआ और आत्मवचना के घेरे म पाकर साधना चाहा था। पर उन्हें लगा था, राजमाता बहुत बिखर गई हैं। उनके प्रयास स वह सिमटन वाली नही है। और उसी क्रम म राजमाता न कहा था—भीष्म, आप वीर हो, धर्मधन हो जिसपर पुरुष हो। मैं अब राजमाता क उत्तरदायित्व को तुम्ह सौंपना चाहती हू। मै निवत्त होकर ज्ञान ध्यान मे लगना चाहती हू। मुझे स्वतत्र करो इस बोझ से।

कम हो सकेगा? जसी उद्विग्नता और उचाटपन आप अनुभव कर रही है वसा मुझम भी उठता है। लकिन, क्या निस्तार है? राजमाता मैंने मात दवी

की छवि को श्रद्धा तथा आस्था दी है। वही आप है। आप की विरक्ति, मुझे भी मेरे उत्तरदायित्व से हटा सकती है। मेरी क्षणिक कुण्ठता को मेरा स्थाई भाव नहीं मानना चाहिए आपको।

भीष्म, यह दूर होने, पास होने ऊपर ऊपर औपचारिकता निभाने, और अंतर में स्थाई रहने का खेल मन में क्या चलता है? इससे तकलीफ कितनी होती है?

भीष्म ने स्थिति को ज्यादा बोझिल न होने देने के प्रयोजन से सिर्फ इतना कहा था—यह शाप है गृहस्थ्य और कर्मबंधन में बन रहने का, राजमाता।

मैं इस शाप से मुक्ति चाहती हूं। राजमाता ने कहा था।

भीष्म मुस्करा दिये थे। मां भी कभी-कभी कितनी अपरिपक्व, बचना हो जाती है। आप जैसा चाहेंगे वैसा होगा। समय का अंतराल शायद स्थिर कर दे। वह कहकर चले गये थे। राजमाता के मन की उद्विग्नता बनी रही थी। इस तरह का ऊहापोह, आंतरिक खिंचाव, उनकी स्थाई स्थिति बन गई। कितना लम्बा समय खिंच गया! और राजमाता के दर्शन की इच्छा भीष्म ने इतने वर्षों बाद अब अभिव्यक्त की है! क्या? क्या किसी ठहराव को फिर मथना चाहते हैं?

(३५)

परिचारिकाओं और दासियों से राजमाता ने ऐसी व्यवस्था करवाई थी जैसे उनका पुत्र वर्षों की यात्रा के बाद महल में लौटा हो। हां, वर्षों की ही दूरी थी, क्योंकि एक ही क्षेत्र में रहते हुए दोनों दो छोरों पर रहे थे। भीष्म राजकाज में व्यस्त अपनी आध्यात्मिक साधना व अध्ययन में लगे हुए। राजमाता सक्रियता से कटी पूजा-पाठ में संलग्न। भीष्म ने शीघ्रता से बड़े होते हुए धृतराष्ट्र पांडु, विदुर में राज्य का भविष्य देखा था। वह उसी को संवारने में लगे थे। उन्होंने कुरु राज्य की आंतरिक व्यवस्था को सुदृढ़ और श्रेष्ठ बनाने का भरसक प्रयत्न किया था तथा उसे पुरों व ग्रामों तक पहुंचाया था। उनका उद्देश्य था कि राज्य के वासी यज्ञ व देवताओं की आनुष्ठानिक क्रियाओं को मात्र कर्मकांड के रूप में न लें बल्कि उनसे आंतरिक बल ग्रहण करें। इसके लिए उन्होंने आध्यात्मिक प्रचारकों का विभाग बनाया तथा उन्हें राज्यभर में छितराया। एक बार फिर कुरु राज्य की आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक बुनावट, स्थापत्य व अन्य कलाएं दूसरे राज्यों के लिए अनुकरणीय बन गईं। सेना का कौशल व उसकी दक्षता का यश, बिना युद्ध किये उत्तर दक्षिण पूरब-पश्चिम के गणों तक पहुंचता रहा। भीष्म ने जिस तरह उत्पाती वनवासियों और लुटेरों को सेना द्वारा काबू में करवाया उससे आसपास के क्षेत्रों में शांति बनी रही। प्रौढ़ता की आयु में प्रवेश होते भीष्म ने

अपनी दिनचर्या म, अपनी व्यस्तताओ म अपने को भुला दिया। कर्म और स्वप्न मिलकर आयु और देह की क्षमताओ को ऊर्जा का अक्षय कोष बना देते हैं। एक लगन होती है भावनाओ की समपुजता होती है जो छोटी छोटी निराशाओ और अन्दर के क्षयकारी अकेलेपन को पनपने नही देती। भीष्म की आध्यात्मिक साधना अत को शक्ति सम्पन्न रखने का साधन थी। साध्य तो वह कल्याणकारी राज्य व्यवस्था थी जो अह और अहकार से दूर होकर वात्सल्य भाव के प्रसार व विस्तार म थी। इसी म उनकी तेजस्विता का रहस्य था।

वह राजमाता के महल म पहुचे तो राजमाता स्वागत के लिए तयार थी। राजमाता ने दृष्टि उठाकर देखा। सम्भ्रम मे हो गई। इतना मोहक और तेजस्वी रूप! क्या भीष्म ने कायाकल्प प्राप्त किया है?

राजमाता के चरणो म भीष्म का नमस्कार। उन्होने आधा झुककर अभिवादन किया।

शत शत आयुवान हो। सूय देवता सी तेजस्विता दिग दिगन्त म फले। राजमाता ने आशीर्वाद दिया। उनका मन तरगित हो रहा था। दृष्टि अभी भी भीष्म पर मोहित सी ठहरी थी। यह कैसा अपरिचित उद्वेलन था? दासिया न आरती की थाली राजमाता की तरफ बढा दी।

यह क्या राजमाता? भीष्म न आरती करती हुई राजमाता से पूछा।

राजमाता बोली नही। आरती करके उन्होन फूल वारे।

अन्दर चलो!

दासिया आगे-आगे। फिर राजमाता। उनके पीछे भीष्म। राजमाता के इस तरह के स्वागत स भीष्म आश्चय म थ। इतनी औपचारिक व्यवस्था पहल तो नही की राजमाता ने?

अत कक्ष भी सुसज्जित था। छोटा सा सिंहासन भीष्म के लिए था। उसी के सामने राजमाता की चौकी थी।

दासी ने सिंहासन को स्पश कर जसे उसकी कोमलता का अनुमान किया हो! फिर पितामह से बठन का निवेदन किया।

दूसरी दासी ने कक्ष के कोना म रखे धूपदानो म धूप डाली जिसस वातावरण सुगंधित बना रह।

भीष्म अपने उत्तरीय को सम्भालते हुए बठ गए। राजमाता भी बठ गई। तब दासी ने मधु व दूध उपस्थित किया।

भीष्म ने दूध नही लिया। मधु पीकर रख दिया।

फलाहार! राजमाता ने आज्ञा दी।

नही राजमाता! उसकी आवश्यकता नही है। आपने इतनी ओप

वर्षो बाद आए भी तो हो। राजमाता बोली।

भीष्म चुप रहे। वह राजमाता को देख रहे थे।

कुशल तो है? उन्होंने पूछा।

हां। राजमाता ने उत्तर दिया।

स्वास्थ्य क्षीण हुआ है। भीष्म ने राजमाता की कृश-काया को देखकर टिप्पणी की।

अवस्था क्या अपना प्रभाव नहीं दिखायगी? अब तो जाने की अवधि है, कभी भी दैविक निमंत्रण आ जाये।

अभी कैसे आ सकता है। वह तब तक नहीं आ सकता

कदाचित जब तक भीष्म न चाहे। यही ना? अमृत फल तो नहीं उपलब्ध करवाया तुमने, फिर ऐसी आशा कैसे? राजमाता मुस्करायी।

वह तो उपलब्ध है आपको। जीवेष्णा ही अमृत फल है और अमृत रस भी। पौत्रों के पुत्र नहीं देखने हैं? कुरु राज्य का यश विस्तार होने के दिन तो अब आए हैं। राजमाता, राजकुमार धृतराष्ट्र और पाडु युवा होने जा रहे हैं। रिक्त सिंहासन जब स्वामी पाता है तब वह महत्त्वाकांक्षी सपने उगाने लगता है। उसकी सार्थकता इसी में है। महाराज शान्तनु का वरदान अधूरा कैसे रह सकता है?

मोह की मृगतृष्णा भी उतनी ही आकर्षक होती है जितनी राज्य विस्तार की मृगतृष्णा। उदासीनता का भी सुख कम नहीं होता, भीष्म! उसमें न आघात होते हैं न उनसे उत्पन्न तनाव।

लेकिन राजमाता उत्तरदायित्व और कर्म से छुटकारा कैसे ले सकता है मनुष्य? भीष्म ने प्रश्न किया।

दूसरों को स्वतन्त्र करके। उत्तरदायित्व व अधिकार, अहंकार को भी पोषित करता है। उसके निभाव में दूसरों की स्वतन्त्रता और इच्छाएं रुकावट पाती हैं। तब अवज्ञा शुरू होती है। बस नहीं चले तो छिपाव व छल। ऐसी स्थितियों से बचकर अपनी शांति को स्थिर रखा जा सकता है। मैं बहुत सुखी हूं।

भीष्म राजमाता की उदासीनता को जानते थे। लेकिन उन्हें यह नहीं पता था कि आंतरिक रूप से वह इस कदर हटाव ले चुकी हैं। वह बोले नहीं परन्तु राजमाता को स्थिर दृष्टि से देखने लगे।

इतनी दृढ़ दृष्टि से क्या देख रहे हो? इसमें बहुत तेज है जिसे राजमाता अब नहीं सह सकती।

क्यों राजमाता? मुझे तो ऐसा नहीं लगता।

राजमाता के अन्दर से गहरी सांस उठी जो स्वर तोड़ती हुई परास्तता बिखर गई। वह उस कण की तरह सूनी और धुआंई हो गई बाहर से लज्जित व अस्पष्ट सी। राजमाता आपको मेरा आना कदाचित असुविधा में डाल रहा है? भीष्म ने उनको उलझाव से उबारने के लिए प्रश्न किया।

अपने आने का प्रयोजन तो बताए।

वह तो बताना ही है और आपकी राय भी लेनी है। राजमाता से एक प्रश्न करने को मन कर रहा है क्या वह स्वीकृति देंगी?

पूछ लो। लेकिन इतना मत कुरदना कि मैं अशान्त हो उठू।

आपने मेरी स्थिति को कभी ध्यान मे लिया? मैं क्या हू? और इन राजकीय तथा वश सम्बधी जटिलताओ म क्या पडा हू?

राजमाता तत्काल बोली—कक्ष की नीव यह प्रश्न दीवारो से कर तो वे क्या उत्तर देंगी।

राजमाता मैं कमजोर नही हू न उस दष्टि से यह प्रश्न कर रहा हू। लकिन सबलतम व्यक्तित्व का भी शक्ति स्रोत होता है अगर वह उससे विमुख हो जाय तो कभी कभी अत अपने विरुद्ध होकर क्रूर प्रश्न करने लगता है—विचलित करने वाले प्रश्न।

करने लगता है भीष्म, मैं भी इस अनुभव से गुजरती हू। तुम क्या समझते हो कि हस्तक्षेप न करने को अपना लेने से मैं परिस्थितियो से अनभिज्ञ हो गई हू? ऐसा तो हो भी नही सकता यहा रह कर। राजमाता मे जसे साहस बना।

वक्त आ गया है राजमाता कि आप अपने स यास से बाहर आए। धतराष्ट्र और पाडु युवा हो रहे है। विदुर भी अध्ययन तथा विद्वता म परिपक्व हो रहा है। जिस कुरु वश के लिए हमने स्वप्न देखे, वह अब यथाथ होने को है, तो विरक्त कसे हुआ जा सकता है? भीष्म स्वर और श दो म सशक्त हो रहे थे। वह आगे बोले—मुझे राजमाता की शक्ति तथा उनके सम्बल की आवश्यकता है। सिफ मन्त्रि मण्डल के लिए या शासकीय प्रबन्ध म नही, बल्कि अपने लिए भी। मा की शक्ति पाये बगर मुझे कभी कभी सब असतोषप्रद लगता है। जब भी व्यवस्था को लकर कठोर होता हू, एसे विचार सुनने को मिलते हैं जिनसे ध्वनित होता है कि मैं सत्ता अपने हाथ मे रखना चाहता हू। यह दूसरो के द्वारा सधान गये ममभेदी व्यग्य होते हैं।

राजमाता आश्चयचकित हो भीष्म को देखने लगी। क्षणभर के लिए चुप हुइ फिर गम्भीर होती हुई बोली—भीष्म के लिए ऐसा भी कोई कह सकता है? सत्ता ही अगर प्रिय है भीष्म को तो उसके सामने रुकावट कहा है? मैं राजमाता होने के नाते उस सिंहासन पर बठने की आज्ञा दे सकती हू। क्या यह धतराष्ट्र के नेत्रहीन होने के कारण और पाडु के छोटे होने की वजह से यायसगत नही होगा? क्या भीष्म भी ऐसी आधारहीन टिप्पणियों से प्रभावित होता है?

वह प्रभावित नही होता, पर राजमाता का समथन व आशीर्वाद चाहता है। इससे भी ज्यादा वह राजमाता की सक्रियता चाहता है। मैंने पिछली अवधि मे

आपको इसलिए परेशान नहीं किया कि आधारभूत तैयारी करनी थी। महर्षि द्वैपायन की सम्मति के अनुसार मैंने अन्दर-अन्दर संकल्प लिया था राजकुमारों को हर तरह से शक्तिशाली बनाने का। राजकुमारों को श्रेष्ठ शिक्षा दिलाने का। वह बहुत बड़े हिस्से में पूरा हुआ। अब राज्याभिषेक और इनके विवाह की समस्या है। इस सम्बन्ध में सम्मति लेने आया हूं। भीष्म राजमाता की उदासीनता पर अब तक विजय प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने उपयुक्त क्षण जानकर मंतव्य कह दिया।

राजमाता को स्पष्ट अनुभव हुआ कि राजनीतिकुशल भीष्म ने मोह का चक्रव्यूह रच दिया। अब वह क्या उत्तर दें? चिंतन में पड़ गईं।

आप मौन क्यों हैं राजमाता? इतनी समस्याओं में होते हुए आप तटस्थ कैसे रह सकती हैं? भीष्म के प्रश्न लगभग आग्रह थे।

तुम इसी अभिप्राय से आए हो कि मुझे मेरे स्थान से हटाकर, फिर उसी झंझट में ले आओ। तब मैं कब मुक्त हो सकूंगी? राजमाता ने स्नेहिल हो पूछा।

कर्तव्य मुक्ति नहीं देते राजमाता! अपने पौत्रों के विवाह की सोचिए। महाराज शान्तनु के राज्य की सोचिये। धृतराष्ट्र पाण्डु विदुर एक-दूसरे के पूरक हैं। इनको आशीर्वाद दीजिए कि एक बार फिर कुरुवंश की कीर्ति दूर-दूर तक फैले।

राजमाता के सामने अब कोई विकल्प नहीं था। भीष्म के आग्रह के सामने विकल्प हो भी नहीं सकता था।

उन्होंने न हां किया, न 'ना' किया। लेकिन भीष्म आश्वस्त थे कि राजमाता स्थितियों के केन्द्र में आ गयी हैं।

(३६)

विदुर प्रातः की संध्या समाप्त करके बाहर आए और उस दिशा में मुख उठाया जिधर सूर्य अपनी रश्मि प्रकट कर रहे थे। मन्द गति से चलने वाली पवन वृक्षों के बीच से गुजरकर मरमर सरसर की तरंगों को विस्तरित कर रही थी। पक्षी आकाश में चहक भरते उड़ रहे थे—पंक्तिबद्ध, स्वतंत्र, जम भटके हुए। विदुर ने आंख मूंदते हुए पहले सूर्य को नमस्कार किया। उनके चेहरे पर अगाध शांति थी तथा होंठ ध्यानावस्थित अवस्था में मन्त्र बुदबुदा रहे थे।

इसके बाद वह भ्रमण के लिए चल दिए। रास्ते में मिलने वाले पुरजन उनसे नमस्कार करते जिसका उत्तर वह सौम्य स्मित व नम्र भाव से देते। वह नित्य की भांति गंगा दर्शन के लिए जा रहे थे। प्रातः का यह कार्यक्रम उनका पैदल

यात्रा का होना था। इसी बीच जब भी उनकी इच्छा होती वह किसी आश्रम में चले जाते। वहां के ऋषि आचार्यों से दर्शन धर्म पर चर्चा करते। यह सीख उन्हें भीष्म पितामह से मिली थी।

भीष्म जब धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा उन्हें धार्मिक व्याख्यान दे रहे थे तब उनमें प्रेरित हो उनमें एक प्रश्न प्रबलतम रूप में घुमड़ा। वह उसे शामिल करना चाह रहे थे, परन्तु द्वन्द्व चेहरे पर झलक आया था।

भीष्म ने उनकी बेचैनी पहचान ली थी। उन्होंने व्याख्यान रोककर विदुर से पूछा था—विदुर इतने विकल क्यों हो रहे हो? क्या कोई शंका उठ रही है मन में?

विदुर ने सिर नीचे कर लिया और गर्दन से नकार का संकेत किया।

भीष्म हंसे। फिर उनके कंधे को थपथपाते हुए बोले—विदुर मर्यादा को निभाना और मन में उत्पन्न होने वाली शंकाओं का समाधान पाना, अलग अलग स्थिति है। एक को दूसरे का बाधक नहीं होना चाहिए।

विदुर ने दृष्टि उठाई। प्रश्न विषय के सम्बन्ध में नहीं है। जिज्ञासा आपसे सम्बन्धित है पितामह।

मुझसे भी सम्बन्धित होगी तो कहीं नीति के पक्ष से जुड़ेगी। तुम्हारी विचार दृष्टि इसी तरह से निर्मित है।

धृतराष्ट्र ने तुरन्त हस्तक्षेप किया। पितामह क्या हम नीति-दृष्टि विहीन हैं?

मैंने ऐसा नहीं कहा, पर रुचि और रुझान भिन्न होती है। उसी से मन मस्तिष्क तथा व्यक्तित्व सृजन लेता है।

सृजन लेता है। हम तीनों एक ही वातावरण में पलते हुए भी चरित्र में भिन्न हैं। पाण्डु ने सहज भाव से कहा परन्तु धृतराष्ट्र को प्रतीत हुआ जैसे छोटा भाई होते हुए भी पाण्डु उन पर व्यंग्य कर रहा हो।

भीष्म उत्तर दें इससे पूर्व धृतराष्ट्र की अहम्मन्यता तथा कटुता शब्दों में अभिव्यक्त हो आई। विदुर दासीपुत्र है, वह क्षत्रिय संस्कार पा भी कैसे सकता है। और तुम देह से कमजोर हो। इसलिए अखाड़े से मल्लयुद्ध में कतराते हुए, धनुष का अभ्यास करते हो। स्त्रैण लक्षण तुम्हारे रक्त की विशेषता है।

धृतराष्ट्र भाषा का प्रयोग भी व्यक्तित्व की गम्भीरता तथा हल्केपन का द्योतक होता है। विदुर को दासीपुत्र कहकर उसे छोटा करने का अधिकार तुम्हें कैसे प्राप्त हो गया? संतान तो तुम एक ही महर्षि की हो। भीष्म ने कठोर होकर धृतराष्ट्र को प्रताड़ित किया। फिर वह विदुर की तरफ उन्मुख हुए। विदुर तुम धृतराष्ट्र के कहे का बुरा मत मानना। मैं तुम्हारी जिज्ञासा सुनना चाहता था।

विदुर का उत्साह क्षीण हो गया था। वह मौन रहे।

पूछो जो मन में है। आत्मबल और स्थिति अथवा पदबल की तुलना में आत्मबल ही श्रेष्ठ होता है क्योंकि वह हर पक्ष के संयम से प्राप्त होता है। उसका एक गुण निर्भीकता है।

सत्य को स्वीकारने वाला बुरा नहीं मानता, पितामह दासीपुत्र हूं, यह परिचित तथ्य है पर मेरी मां मेरे लिए उतनी ही पूज्य है जैसे राजकुमार के लिए उनकी रानी मां। पूछ मैं यह रहा था कि राजनीतिक व्यस्तता तथा अभाव के प्रपंच के बीच भी आप संयमी व शास्त्रविद् कैसे हो सके? दोहरे रास्तों को कम एक बनाकर चल पाते हैं?

तपस्या का परिणाम है यह। पांडु ने उत्तर दिया।

तपस्या नहीं निरन्तर सीखने की लगन में सीख के अनुकूल आचरण करने की कोशिश करना। राग और विराग अंत के पक्ष हैं। कृष्ण पक्ष शुक्ल पक्ष। यही सत्य को खोजने के उपकरण हैं। जब माह इनसे पूरा होता है। बने मनुष्य राग विराग से। शास्त्र तो मात्र दर्शन देते हैं सत्य जीवन की स्थितियों से मिलता है। इसलिए हरएक के पास होता है। विदुर दूसरों से सहृदयता से मिलो, उनके हृदय को खुलने का अवसर दो उन्हीं में से ऐसे अमूल्य सत्य प्राप्त होंगे जो तुम्हारे लिए पथप्रदर्शक हो सकते हैं।

विदुर ने पितामह की सीख सदा के लिए गांठ बांध ली थी। वह जितना अध्ययन करते उससे ज्यादा उन्मुक्त सत्संग करते। उनकी नम्रता व सहृदयता दिनोदिन उनको लोकप्रिय बना रही थी। लोग उन पर विश्वास करते थे तथा अपनी समस्याओं को बेधड़क उनके पास लाते थे। उनकी सलाह जैसे उनकी उम्र को झुठलाती थी।

गंगा दर्शन कर विदुर लौट आए। दिन चढ़ चुका था। मां प्रतीक्षा कर रही थी कि वह अन्दर आएं ताकि उनको अल्पाहार करवाए।

अन्दर आकर उन्होंने मां के चरण छुए।

आज देर हो गई न? मां ने पूछा।

नहीं तो। मैं सीधा गंगा के दर्शन करके आ रहा हूं। आश्रम में भी नहीं रुका।

रथ है तो उससे क्या नहीं जाया करते? सुबह से कुछ नहीं लेते। देखो सूरज कितना ऊपर हो जाता है। उन्होंने परिचारिका को संकेत किया कि वह अल्पाहार लाए।

विदुर आसन पर बैठ गये। तब वह उन्हीं के सामने बैठ गयी।

मां क्या मैं अभी भी इतना छोटा हूं कि तू सामने बैठकर अल्पाहार करवाए भोजन करवाए। उन्होंने अपना उत्तरीय एक तरफ रख दिया।

क्या बहुत बड़ा हो गया है? अभी तो रेख भी नहीं पकी। परिचारिका

तांबे की थाली में फल, नवनीत और दूध भरा भोजन लेकर आई। मां ने उसके हाथ से लेकर, स्वयं विदुर के सामने रखा। मोही हो पुत्र को निहारने लगी।

विदुर धीरे धीरे अल्पाहार करने लगे। वह किसी विचार में खो गये।

तुम हर समय सोचते ही रहते हो। क्या सोचते हो ? मां ने पूछा।

मैं पितामह बनना चाहता हू। परन्तु उनकी तरह अस्त्र शस्त्र संचालन में कम सिद्ध होऊं, उस तरफ मन नहीं होता।

होना भी नहीं चाहिए। मैं अपने पुत्र को योद्धा नहीं उस महर्षि के तुल्य देखना चाहती हू जो मेरे हृदय में बसा है।

तुम पिता वेदव्यास के संदर्भ में कह रही हो ?

हां। उन्हीं महर्षि द्वैपायन की छाया मैं तुममें देखती हू। मैंने उनसे वरदान स्वरूप मांगा भी यही था।

तब मुझे ज्ञान तथा तपस्या के लिए उन्हीं के पास जाने दो। विदुर ने मां को देखा। फिर इसी इच्छा को स्पष्ट करते हुए बोले—मेरी तीव्र इच्छा होती है मां कि मैं यहां से चला जाऊं। उनकी अनुनय विनय करके, उनका शिष्य बन जाऊं। वह अवश्य गुरु बनना स्वीकार कर लेंगे।

मैंने यह भी मांगा था उनसे कि दासीपन का कलंक मुझ पर से हटकर मेरे आगामी वंश को कुरुवंश की समकक्षता मिले।

नहीं मिल सकती। महल की सुख सुविधा मिल सकती है, पर दासी के स्तर से मुक्ति कैसे मिल सकती है ? वर्ण व्यवस्था का तरह यह भी स्थाई है। पांडु इस भेद को दृष्टि में नहीं लाते। पर धृतराष्ट्र समय समय पर मुझे याद दिलाते रहते हैं। मैं स्वीकार करता हू। करना चाहिए भी।

तुम उनसे श्रेष्ठ हो। व्यवहार में, विद्वता में, चरित्र में। रानी अम्बिका उनसे दुखी हैं। राजमाता उनकी अस्थिरता के कारण उनसे बोलती तक नहीं। पितामह का विश्वास तुम पर अधिक है। महर्षि अब जब आएंगे तब उनसे कहूंगी कि आपकी धारणा भविष्य में मिथ्या साबित हो सकती है। इसका उपाय आपको व्यवस्था देकर करना होगा।

विदुर मां की बात नहीं समझ पाये। कैसी धारणा ? कैसी व्यवस्था ? उन्होंने पूछा—किस धारणा की बात कह रही हो ?

महर्षि ने मुझसे कहा था—कौरवों को तुम्हारे पुत्र को भी वही दर्जा देना होगा जो धृतराष्ट्र और पांडु का होगा। अभी से धृतराष्ट्र का यह सब है तो आगे वह कुछ भी कर सकता है।

परन्तु मैं नहीं चाहता। मैं महर्षि के आश्रम में रहना चाहता [redacted]। विदुर ने आग्रह से कहा।

ऐसी इच्छा मत रखो बेटा, मैंने तुम्हीं पर अपने सपने ठहराए हैं। दासी की

हीनता को मैंने सहा है। तुम्हें मैंने बड़ी रानी के वक्ष में रानी की जगह होकर पूर्ण समर्पण के क्षणों में पाया है। दासी होकर भी उन क्षणों में रानी थी। रानी होकर भी दासी, क्योंकि मैंने महर्षि को छुआ नहीं। संन्यास की तुम सोचोगे तो वंश इसी कड़ी पर समाप्त हो जायगा। यह भी धर्म की दृष्टि से अधूरापन होगा। गृहस्थ में होकर द्वैपायन-से बनो।

कामनाओं की मरीचिका व्यूह होती हैं, मां ?

हां, पर इनका दमन कर संन्यास स्वीकार करना पलायन होता है। मैं अंतःपुर में हूं। रानी अम्बिका की दासी होते हुए भी अब मेरी श्रद्धा छोटी रानी की ओर जाने लगी है। विदुर, तुम्हें गृहस्थ रहकर भी धर्मराज के समान सात्विक होना है। यही समर्पण कराएगा दासी वंश की सीमा से उच्च प्रतिष्ठा के स्तर पर।

विदुर को लगा, मां मात्र अपने इच्छालोक को प्रस्तुत नहीं कर रही है बल्कि उसकी सीमाएं निर्धारित कर आशीर्वाद दे रही है कि वत्स तुम्हें सागर जल-सा अगाध बनना है और लहरों वाली वालुका-सा अवरक्त युक्त।

विदुर अल्पाहार समाप्त करके उठे तथा अध्ययन कक्ष की तरफ अग्रसर होने लगे। मां ने उत्तरीय छूटा हुआ देखा तो पुनः पुकारा—विदुर !

हां मां।

यह उत्तरीय। किस पर कहता है, बड़ा हो गया है।

तुम होने कहां देती हो। मैं कुछ सोचता हूं तुम अपनी कल्पना का उद्यान मेरे सामने उपस्थित कर देती हो।

नहीं कहूंगी। जब तेरा विवाह हो जायगा तब उसका अधिकार होगा अपने रंग महल में तुम रमाने का। मां ने उत्साह से कहा। उसकी आंखें वाछाओं से अनुरक्त थीं।

विदुर मुस्कराये। माया किसे कहते हैं मां ?

पदों की शृंखला, जिनको स्पर्श करते पार करते, मनुष्य को गंतव्य तक पहुंचना होता है।

तुमने कहां प्राप्त की इतनी सारयुक्त व्याख्या।

जीवन से। सुनकर देखकर अनुभव कर। अपने अनुभव से, दूसरों के अनुभव से समझा।

विदुर ने फिर झुककर मां के चरण स्पर्श किए। यही तो उनकी श्रद्धा का आलम्बन है जो उनके ठंडे मन में गति भर देती है।

वह अध्ययन कक्ष की तरफ चल दिए। अंतः से सिक्त वे अपनत्व के पीयूष से सिक्त।

तीन मा और चौथी राजमाता । वे, जो बीते कल तक स्वय युवतिया थी, अब परिपक्व मा थी—युवा पुत्रा की मा । अपने स हटकर केन्द्र पहले पुत्रा की तरफ खिसका अब ममता तीसरी के आने की प्रतीक्षा करने लगी है ।

पितामह और राजमाता म चर्चा हुई कि धतराप्ट और पाडु के लिए योग्य राजकुमारिया की खोज की जानी चाहिए। धतराप्ट्र का राज्याभिषेक पूर प्रचार व भव्यता से मनाया गया था । दूर से राजाओ को आमन्त्रित किया गया था। इसका अथ था कि वह कुछ राज्य की मत्री स्वीकार करें तथा यथा सामथ्य उपहार देकर उसका वचस्व स्वीकार करें । ब्राह्मणा और विशिष्ट भद्र सभा ने व्यवस्था दी थी कि धतराप्ट राजा होग, परन्तु पाडु भीष्म पितामह के सरक्षण मे राज्य की सम्पूण व्यवस्था आयोजित करेंगे। विदुर धतराप्ट के सलाहकार होगे।

वे राज्य जो अब तक भीष्म के शौय तथा कौरवा की सैन्य शक्ति से प्रभावित थे, पाडु की वीरता की गाथाए सुनकर आश्वस्त हो गय थे कि कुरु राज्य ही पुन सत्ता का केन्द्र बनगा। पूरे कुरु राज्य के जन मन म फागुन का उल्लास हिल्लोरित हो उठा था ।

अम्बालिका तथा अम्बिका बठी हुई ह सामने के कक्ष मे । राजसी पोशाक म नारात्व शोभा दे रहा है। अम्बिका तप्त होकर भी चिंतित-सी दीख रही है। अम्बालिका गम्भीरता के बावजूद तजस्वी । आयु का चढाव अम्बिका क मुख पर रखाओ के माध्यम स अधिक भासित है। अम्बालिका के चहरे पर दमक है—यशस्वी पुत्र की मा होन की तजस्विता ।

अम्बालिका हमारे पुत्रा के लिए राजकुमारिया की खोज हो रही है। अम्बिका ने कहा।

यह क्या नही कहती की खोज हो चुकी है । अम्बालिका न टिप्पणी की । तुम्ह पता है फिर रहस्य मे लपटकर क्या कह रही हो ?

सुना है गाधार नरेश की पुत्री, राजमाता तथा भीष्म पितामह की नजर म धतराप्ट्र के लिए उपयुक्त ठहर रही है, और पाडु के लिए कुन्तिभोज की पुत्री कुन्ती। अम्बिका न अपने को खोलना शुरु किया।

अम्बालिका जानती है कि उसकी बडी बहन जब भी उसके पास आयेगी तब वह जरूर किसी उलझन स ग्रस्त होगी। उसकी उलझन का केन्द्र उसी की निराशा से बेहद लिपटा होगा। ढका-ढका परिच्छन्न । अम्बालिका चुप रही ।

अम्बिका जसे अन्दर स घुमड रही है अपने हर कथन पर प्रतिक्रिया चाहती है या हुकारा । तुम्हे कैसा लग रहा है? वह अम्बालिका के मौन से और

उद्विग्न हो जाती।

न अच्छा, न बुरा—उसने संक्षिप्त उत्तर दिया।

क्या, क्या तुम मां नहीं हो? क्या सोचती नहीं अपने पुत्र को लेकर?

अम्बालिका मुस्कराई। तुम जो सब के हिस्से का सोच लेती हो, फिर शेष रहता कहां।

मैं परिहास सहन की स्थिति में नहीं हूं, अम्बालिका।

रहती भी कब हो। चिर दुःखी, शाश्वत सन्देह की आदी हो। बस हीं हैं राजाधिराज धृतराष्ट्र। अम्बालिका ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया।

अम्बिका चौंकी। बोली: तुममें तो उससे कोई उद्दण्डता नहीं की?

जब स्वभाव वैसा हो तो मर्यादा अमर्यादा का प्रश्न कैसा। राजा होने पर भी यही भय, यही ईर्ष्या, कि पाडु इतना वीर क्या है? जनश्रद्धा का पात्र क्या है। विदुर इतना कुशाग्र क्या है?

समझ गई। अवश्य तुम्हारे मस्तिष्क को उस दासी ने विषयुक्त किया है जो मुझसे आखें चुराकर तुम्हारी सहानुभूति पाने के लिए तुम्हारी चाटुकारिता करती है। अम्बिका के चेहरे पर रोष झलक आया।

यह भी कह दो कि विदुर और पाडु दोनों मिलकर तुम्हारे वंश का होन करते हैं।

यह भी आंशिक सत्य है। अम्बिका भाव में कह गई।

यह तुम्हारे सन्देही मन का सत्य है। तुम मेरे पास आई हो मैं कडुवा कुछ नहीं कहना चाहती। परन्तु जानती हो कि मैं हमेशा स्पष्ट कहती हूं।

धृतराष्ट्र के लिए गांधार देश तक क्या पहुंचा जा रहा है? उस देश की कन्याओं का चरित्र कैसा है क्या किसी से छिपा है? अम्बिका ने अपने को प्रकट किया।

यह प्रश्न तो भीष्मपितामह व राजमाता से किया जाना चाहिए। तुममें साहस हो तो अपनी आपत्ति उन तक पहुंचा दो।

राजमाता मुझसे और धृतराष्ट्र से खिन्न हैं। पितामह भी धृतराष्ट्र से भेद रखते हैं। अम्बिका तनाव में हो गई थी। उसके मुख की त्वचा खिंच गई थी। कनपटी और माथे की नसें उभर आई थीं। चेहरा नागफनी के फल-सा चटक लाल हो गया था।

अन्तर का आवेश दुराग्रही तथा अंधा बना देता है। तुम्हें सब अपने विरुद्ध दीखते हैं। उम्र ढलने के बाद भी क्या सही तरीके से सोचना नहीं आया? नहीं सोच सकती तो तटस्थता अपना लो। बस मैं हो चली हूं। अम्बालिका तनिक खरे शब्दों में बोली। स्वर आक्रामकता लिए हुए लगा।

अम्बिका दबक गई। विचलित-सी होकर खड़ी हो गई।

तुम्हारे पास आना निरथक होता जा रहा है। अब तुम बहन नही, बेटे की पक्षधर मा हो गई हो। उस स्वार्थी दासी ने तुम्हे अपने षडय न मे शामिल कर लिया है। वह विदुर को राजाओ का मान व पद दिलाना चाहती है।

अम्बालिका की सहनशीलता की सीमा छिन भिन हो गई। वह तेज स्वर म बोली—बस अब रोक दो। अपने पुत्र की अयोग्यता और अपनी अस्थिरता का दोषी दूसरा का मत बनाओ। मैं दासी के सुझावो पर चलूगी क्या इतनी अविवेकी हू। बेटे युवा हो गये। कुरराज्य क सवधन व विस्तार का दायित्व अब उन पर है और पितामह भीष्म पर। उस राजनीति म मेरी भूमिका नही हो सकती—होनी भी नही चाहिए। मैंने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। तुम चाहो, तो तुम भी स्वीकार कर सकती हो। अपना ध्यान धम की ओर लगाओ। राजमाता का मैं आदर करती हू। मेरे मन मे किसी के प्रति कटुता नही है। धतराष्ट्र को सस्कार तथा सदबुद्धि दो। कपट स्वय को पीछे ढकेलता जाता है यह तुम भी जानो। तुम से कह रही हू हालाकि तुम बडी बहन हो। राजमाता के बाद तुम्ही उनका स्थान लोगी।

अम्बालिका निरतरता म बोल गई। अम्बिका हारी सा, असतुष्ट-सी, अपराध भाव से दबी मुसी सी, कत यविमूढ-सी खडी रही। फिर हताहत-सी चली गई। जिसका अपन पुत्र पर वस न हो वह यू भी दयनीय तथा भविष्य स भीत होने की विवशता भोगती होती है।

(३८)

भीष्म ने पहले राजमाता सत्यवती मे धतराष्ट्र के विवाह की व्यवस्था क सम्ब ध म सविस्तार विचार किया। फिर उन्होंने स्वागत आतिथ्य व्यवस्था, आम त्रणा व उत्सव के ब्यौरे के साथ सम्ब धित व्यक्तियो से बातचीत की तथा उन्ह उत्तरदायित्व सौंपा। तब उन्होने धतराष्ट्र पाडु और विदुर को बुलवाया। निश्चित समय तीना उपस्थित हुए। विवाह का वातावरण पुरजना तक म इस तरह विस्तत हो चुका था जस वसन्त के आगमन का पहला चरण प्रारम्भ हो गया हो।

पितामह अतरग कक्ष म अपन विशिष्ट सिंहासन पर बठ थे। सामने के छोटे सिंहासना पर धतराष्ट्र पाडु तथा विदुर स्थान लिय हुए थे। तीना जानत थे कि पितामह ने उन्हें किस विषय क लिए बुलाया है।

धतराष्ट्र का चौडा, उभरा सीना वस्त्रा स आच्छ न होकर भी चट्टान-सा उभरा हुआ था। चेहरे पर किसी हरियाली शाख की छाल-सी कोमलता थी। आखें बन्द, गाठ-सी स्पष्ट तथा गहरी थीं। अधिराज होने का गर्व उसक सतर

वठन से झांक रहा था।

पाडु गौर वर्ण सुन्दर चेहरे व औसत शरीर वाले आकर्षक युवक में विकसित हुआ देखने में लगता था, जैसे कितना कोमल, रागमय है जिसमें अद्वितीय आभा फूटती हो। उसकी आंखों में तट से जुड़ा सागर तरंगित था।

विदुर धृतराष्ट्र की तुलना में गुरुत्व के आकार के लगते थे। उठान में पाडु की अपेक्षा छोटे। पर उनका व्यक्तित्व किसी श्लोक के अनुबंधित शब्दों की स्वयं-स्फूर्ति लय-सा था। जिससे शांत रस का वातावरण संचारित होता हो।

पितामह वट-वृक्ष-से सघन तथा दृढ़ थे, जिनके परिपक्व चेहरे पर ब्रह्मांड का रहस्य भासित था। वह बोलता हुआ-सा था, लेकिन अगाध शून्य के माध्यम से पारित हुआ। भीष्म ने मन्तव्य की भूमिका रेखित करना शुरू किया।

प्रिय धृतराष्ट्र, पाडु और विदुर! मैंने तुम्हें अगर एकांत में तथा विशिष्ट तौर पर बुलाया है, तो मेरा मंतव्य भी विशेष है। पल्लवन की आशा से सींचे गये पौधे जब फूलों से सुगंध विस्तृत करने के योग्य दीखने लगते हैं तब सुख मिलता है अंतःकरण को। धृतराष्ट्र राजा हो गए हैं और उनकी सहायता के लिए तुम दोनों हो। हम आर्य हैं, क्षत्रिय हैं पर कुरुराज्य का आधार धर्म व सुनीति है। न्याय व आर्थिक सम्पन्नता जनाधिकार है जिसे उपलब्ध कराने के लिए राजा को अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करना होता है। तुमने शास्त्र विद्या सीखी, दर्शन, धर्म व आचरण सीखा और अल्प अंतराल में गृहस्थ धर्म में प्रवेश करोगे। गृहस्थ पालन धर्म है, भोग नहीं है। भोग की अग्नि, देह को क्षीण करती है तथा आत्मा को निर्बल। आत्मा के निर्बल होने से संकल्पशक्ति तथा आत्मविश्वास कम्पित होता रहता है। लक्ष्य भेदन हो नहीं पाता।

तीनों भीष्म के कथन को एकाग्रतापूर्वक सुन रहे थे। विदुर सम्मोहित-से, पाडु श्रद्धापूर्ण। धृतराष्ट्र पलकों को झपका रहे थे जैसे अन्यमनस्क हों।

भीष्म ने बोलना जारी रखा। सूचना प्राप्त हुई है कि गांधार से गांधार नरेश के कुमार शकुनि अपनी बहन गांधारी को लेकर चल दिए हैं। दूसरा निमन्त्रण कुन्तिभोज के यहां से प्राप्त हुआ है। उनकी कन्या कुंती का स्वयंवर होने जा रहा है। पाडु को भोजपुर के उस स्वयंवर में सम्मिलित होना होगा। हमें विश्वास है मथुरा-नरेश शूरसेन की पुत्री कुंतिभोज की पालित सौम्य कन्या, कुंती अवश्य पाडु को वरमाला पहनायेगी।

यदि उसने वरमाला नहीं डाली तब कुरुवंश का अनादर होगा। ऐसी स्थिति में क्या पाडु को आज्ञा है कि वह उपस्थित राजाओं को चुनौती देते हुए कुंती का हरण कर लाए? धृतराष्ट्र ने पितामह से किस अभिप्राय से प्रश्न किया, यह स्पष्ट नहीं था। लगा कि पितामह के द्वारा अतिभोग की वर्जना की बात सुनकर वह सोच रहे थे यह दोषारोपण सीधा उन पर हो रहा है।

इससे पूर्व कि भीष्म उत्तर दें, विदुर बोले—पाडु इद्र के समान सुदर है, वीरता मे अद्वितीय है, हमारी कीर्ति राजराजाओ के लिए आतककारी है। कोई राजा नही चाहगा कि हम स बैर मोल ले।

धतराप्ट ने तुरन्त विदुर को दबकाया—राजाओ के मत्री या बैर का प्रश्न नही है, राजकुमारी कुती की रुचि का प्रश्न है। गाधार नरेश ने हमारी शक्ति से डरकर अपनी पुत्री का विवाह हमसे करना स्वीकार किया है। क्या पाडु को पितामह की तरह कुती को हरण करके लाना होगा? वह भी हमारी माताओ का हरण करके लाए थ।

भीष्म, धतराप्ट की आक्रामकता स तनिक विचलित हुए। उन्होने पाडु को देखा जो बोलने क लिए उत्सुक थे। उसके चेहरे पर रोप झलक आया था। भीष्म सयम रखते हुए धतराष्ट्र की ओर उन्मुख हुए।

वत्स धतराष्ट्र! किसी भी कम को परिस्थितिया तथा तात्कालिक सक्रिय शक्तिया के सन्दभ मे जाचा जाना चाहिए। और इस सन्दभ मे कि उसका निश्चित प्रयोजन क्या था। सन्देह तथा शका, दृष्टि और काय योजना, दोना को यथाथ स इधर उधर भटका देती हैं। यह पाडु पर ही छोडना होगा कि वह वहा, उस अवसर पर, क्या उपयुक्त करत हैं। अगर गाधार नरश अपनी पुत्री का दने क लिए तयार नही होन, तो हमे आक्रमण भी करना पड सकता था।

राज्य का प्रसार दो ही तरह स हो सकता है—मत्री से अपन अधीन करना, या सन्य के बल द्वारा जीतना। आग यह भी करना होगा।

अगर पाडु विजय यात्रा म मृत्यु को प्राप्त हो गया तब कुरुराज्य का भाग्य क्या होगा?

धतराप्ट ने फिर कहा।

अगर की शृखला तो अनन्त है। क्षत्रिय क्या मत्यु स डरते है? महाराज धतराष्ट्र नियति कमठ क हाथ की मिट्टी है। उससे वह अपना भविष्य गढता है। आत्मविश्वास चाहिए और कौशल। पितामह क स्वप्न को साकार करना हमारे जीवन का श्रेय प्रेय है।

पाडु के उत्तर से भीष्म क दाढी मूछा मे गढे मुख पर तेज-सा उद्भूत हुआ। वह आसन बदलते हुए कुछ गदगद-स बोले—मेरा सपना तुम तीनो हो। मैं तो सरक्षक मात्र था अब तुम लोगा पर उत्तरदायित्व सौंप कर निश्चित होना चाहता हू। हा कुरु राज्य की प्रजा सम्पन्न हो, ऐसा कौशलपूर्ण तथा साहसी हो, धर्म म वास्तविक निष्ठा रहे तुम भाई विश्वास तथा प्रेम क सूक्ष्म सूत्रा से बधे रहो, कला का उत्सग हो वश बढे-फले, यही मेरा सपना है।

पितामह भावुक-स हो गए जस अतीत तथा भविष्य को जोडकर उसके पार देख रहे हो। पाडु उठकर धतराष्ट्र क निकट गए और उनस कुछ कहा। उन्होंने

धतराष्ट्र का हाथ पकडा। पितामह के सामने ले आए। दोनो ने झुककर उनके चरण स्पश किए। विदुर उनके बाद उठे तथा उन्होने भी चरण स्पश किया।

भीष्म के दोनो हाथ आशीर्वाद के लिए फैल रहे।

(३६)

दशन दृष्टि है। दृष्टि का अथ देखना भर नही है वरन अनुभवो के सन्दभ म समझना है। और समझने की क्रिया मे बुद्धि का योगदान होता है। यह विशेषता बुद्धि की विकासक्रमता म निहित रही है। जड और चेतन निर्जीव और सजीव का एक पक्ष स्वाभाविक रहा है कृत की क्रियाशीलता म। काल के विस्तृत सीमान्तो म तटवधित एक क्रम उदभव, लय व प्रलय के उतार चढाव का स्वीकार करता हुआ परिशुद्धि को पाता रहा है। जैसे यही शाश्वत यात्रा का गन्तव्य हो। उदभव भी किसी म से घटित होता है, वह लय म बढता है प्रलय म विशृ खलित हो जाता है। पर प्रलय के शेष से ही तो पुन उदभव होता है। प्रज्ञा सम्पन्ना न बाह्य सष्टि को अनुभव के परिप्रेक्ष्य म, अत चक्षुओ स समझने का प्रयास किया। वही दष्टि कहलाई। दशन कहलाया।

पर दशन और दृष्टि तो हर चेतना सम्पन्न प्राणी की थाती होती है क्योकि हर एक के पास सस्कारो का अनुभवो का एक अद्वितीय कोष सचित होता है। उसी के कारण वह अदभुत होता है। हर पात्र अपनी सजनात्मकता को निहित किए अपनी पीठ से सम्पन्न भिन्न होता है। अदभुत है हर पात्र। और वह परिस्थितियो से गुजरता हुआ तीथयात्री होता है, जो अपने-अपने तीथ की खोज म आरोहण करता है। माग के सकटो को झेलता है। कभी उनसे परास्त होता, कभी उन पर विजय पाता है।

गाधार नरेश ने किन्ही राजनीतिक लाभो को ध्यान म रखकर, अधे धतराष्ट्र को जामाता स्वीकार किया तो क्या गाधारी वलि की निरीह पशु थी। नही। गाधारी राजकुमारी थी—यौवन सम्पन्न, सौन्दयवती कामनाओ व आकाक्षाओ से भरपूर रागो, राग आवेशो स किसी छद-बध की तरह अनरणित, झकृत जिस पर यकायक पिता के निणय से हिमपात हो गया। उसे लगा कि यह हिमपात उसे दबाकर, उसकी समाप्ति कर देगा। पर वह उसकी शीत समाधि सिद्ध हुई। प्रखर ऊहा-पोह और असहनीय अतद्व द्व स गुजरकर, उसकी प्राण शक्ति ने आवेशो को नियत्रित किया। तहस-नहस करने पर उतारू उसकी भूत शक्तियो और अमृत शक्तियो म घोर सग्राम हुआ। वह पुनर्व्यवस्थित होकर विजयी हुई। नही कहा जा सकता कि उसने वास्तव म वस्त्र की पट्टी अपने सीपी-से नेत्रो पर बाधी या उस कामनाओ के कोष को परकोटे म बदी बना लिया जो उसे असतुष्टि का आसव पिला, विचलित कर सकता। गाधारी ने

जब हस्तिनापुर के महल मे धतराष्ट्र का पत्नीत्व उत्सवा के बीच स्वीकार किया, तब वह रूपातरित गाधारी थी जिसने अपने आचरण तथा व्यवहार से समस्त परिवार को मोह लिया—गाधारी महाराजा धतराष्ट्र की अर्धांगिनी।

पर कुती के साथ दबाव नही था। उसने स्वयवर म कुरुवश के यशस्वी राजकुमार पाडु को चुना था। वहा उसके हाथ म वरमाला थी। तय उसे करना था कि कौशल, काशी, मगध, मद्र चदि आदि अनेक छोटे वडे राजाओ गणाधिपतिया म से किसे चुने। आशार्थी वे थे। विरदावली और परिचय के अतिशयोक्ति पूर्ण बखानो मे से उसे तटस्थ होकर यह जानना था कि वह किसको वरण करे। मन-बुद्धि को उस सकोच प्रेरक वातावरण म सजग रहना था। ऐसे निर्णायक अवसर म क्या मात्र सामने वाले का सौदय ही प्राथमिक गुण होता है जो उस किसी स बेहतर, या श्रेष्ठ बताता है? और क्या स्वयवर मडप म खडी क्वारी कन्या को यह भी पता होता है कि उपस्थित राजाओ म किसके कितनी रानिया पहले से हैं। यह सूचना तो उस पहले ही अपने पास रखनी होती थी। तभी तो कुन्ती कुरुवश के राजकुमार का पहले से ही मन म बढाए थी। यही हुआ। श्रवण से विरदावली सुनती रही। लज्जालु आखें, आरक्त मुख। वह सक्षिप्त नयनपात करत हुए आगे बढती रही। पाडु के सिंहासन के सामने जाकर रुक गई। विरुदावली समाप्त हुई तो उसन आग कदम नही बढाया। पाडु के लिए हाथ उठे, और नरेशा के देखत देखते वरमाला पाडु के गले मे शोभित हो गई।

उपस्थित राजेश्वरा न परास्त होकर भी खिसियानी करतल ध्वनि की। बाद्यो ने बजकर हप तथा उत्साही वातावरण सर्जित किया। कुती इस तरह विवाहित होकर हस्तिनापुर आई। हस्तिनापुर ने स्वागत म वभव सम्पन्न समारोह किया। पुरवासी धन्य धन्य हुए। काल की अशुभ छाया हटी कुरुवश पर से। खुशिया के अथाह सागर मे तरते हुए सबको उस सूय देवता पर विश्वास होने लगा कि वह कुरुवश के भविष्य को स्वर्णिम करगा। अब वरुण भी कृपा म मुक्त हस्त रहेगा। यम की अग्नि प्रसन्न रहेगी। सुघटनाए ही तो आशाओ को हराभरा करती हैं और भविष्य का आवरण कल्पना क समक्ष खोलन लगती है विपरीत म मन बुझा-बुझा, सिकुड जाता है।

कुती को आश्चय हुआ कि महारानी गाधारी ने उस विशेष दूती द्वारा अपन पास बुलाया है। उन्होने यह भी कहलवाया कि वह उसस गम्भीर बात करनी चाहती हैं—ऐसी बात जो आज उन दोनो के लिए है। यह भी कहलवाया कि उनके आने का समय एसा हो जब पाडु भी अत पुर म नही हो। यानी उनको भी उसक आन का पता न हो।

वह कितनी ही बार उसक निमत्रण पर उनक पास गई है। इस तरह का

गुप्त तथा रहस्यात्मक निमंत्रण उसे कभी नहीं मिला। उसने दूती को दूसरे दिवस मध्याह्न को आने को कहा। परन्तु वह दिन भर तथा रात में, अनुमान लगाती रही कि उसे बुलाने का कारण क्या हो सकता है? गांधारी पर वह श्रद्धा रखती थी और अवसर पाती कि दाम्पत्य सम्बन्ध को निबाहने में वह जो सुझाव देता थी उसके लिए सहायक सिद्ध होता था। आश्चर्य की बात थी कि उसकी अपेक्षा बला की सुन्दर होने हुए भी वह बड़ी अजीब तरह से स्वनियोजित थी। राज महल में यह भी कहा जा रहा था कि उन्होंने पति को बहुत सीमा तक अधिकार में कर लिया है। कि धृतराष्ट्र थोड़े ही समय में व्यसन के अतिरेक को तिलांजलि दे चुके हैं और उनकी निरर्थक उद्दंडता व असंगत आचरण में कमी आई है।

कुंती सोचती रही कि ऐसी क्या बात हो सकती है जिसे उसे पति से भी छिपाना पड़े? वह तो कहनी अनकहनी निष्कपटता से पति को बता देती थी, कि वह किसी भी अपराध बोध से नाहक में ग्रस्त न हो।

दिए हुए समय पर वह जेठानी के पास पहुंची। गांधारी ने यथोचित स्वागत किया। फिर एकांत में हो गई।

केवल वह थी और कुंती।

अवश्य असमंजस में होगी कि तुम्हें इतनी शर्तों के साथ क्या बुलाया?

कुंती ने स्वीकृति में जी कहा। वह रानी गांधारी के मुख को देख रही थी, जिनकी आंखों पर पट्टी बंधी थी।

तुमने सुना, कि तुम्हारे सुख को कीटयुक्त करने की व्यवस्था पितामह भीष्म करने जा रहे हैं।

आपका किस तथ्य की ओर संकेत है? यह तो पता है कि पितामह उत्तर पश्चिम की ओर विजय अभियान के लिए जा रहे हैं?

सिर्फ विजय अभियान के लिए नहीं। महाराज धृतराष्ट्र बता रहे थे कि वाह्लीकों में श्रेष्ठ गणाधिपति मद्रेश्वर को पराजित करना अभियान का मुख्य लक्ष्य नहीं है, वरन वह उनकी बहिन माद्री को लाने जा रहे हैं। वह तुम्हारे पति की दूसरी पत्नी बनेगी।

मुझे ऐसी सूचना नहीं है। कुंती को आघात-सा लगा।

मैं जानती थी, तुम्हें पता नहीं होगा। भीष्म पितामह की महत्त्वाकांक्षा का अंत नहीं है। कहने को ऋषितुल्य दर्शाते हैं अपने को परन्तु घट में सौंदर्य पिपासु अतृप्त ब्रह्मचारी हैं। मेरे पिता को इसी तरह आतंक में लेकर मुझे लाया गया था यहां।

गांधारी का इस तरह आक्रामक कुंती ने कभी नहीं देखा था।

इसमें राजमाता की भी सहमति है। वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुकी है, परन्तु

मन को कुरग बना रखा है।

मुझे दुख है। परन्तु हमार पास उपाय भी क्या है। कुन्ती गाधारी के विचारा म तिक्तता पा रही थी।

उपाय हो सकता है, यदि तुम अपना विरोध अपने पति के समक्ष प्रकट करो। यदि मरे साथ ऐसा हाता तो मैं मूक गाय की तरह नही सहती। गाय इनके यहा श्रद्धा की पात्र होती है, हमारे यहा अश्व पर विश्वास होता है। गाधारी न गवयुक्त स्वर म कहा।

हमारे लिए पति की इच्छा सर्वोपरि है। बडा के निणय का आदर करना कत्तव्य है। नारी का सयम उसकी आत्मा को शुद्ध कर, उसे दाता बनाता है। यदि मेरे पति को इसम सुख मिलता है तो मैं उनकी दूसरी पत्नी को स्वीकार करूगी। आप इतना दुख न मनायें। कुन्ती न धय स प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की।

गाधारी को कुन्ती का समपण सुहाया नही। उस ऐसी अपेक्षा नही थी। वह मौन हा गई। वसी ही रही, तब तक जब तक कुन्ती नही बोली।

आपकी सहानुभूति उचित है। आपन विरोध करने के लिए कहा, वह भी सगत है फिर आप क्या मौन हा गइ?

तुम्हारी आत्मशुद्धि और दाता होन की बात को समझने की काशिश कर रही थी। और उस सयम को भी, जो कत्तव्य की ओट के पीछे अयाय को सहन के लिए तयार है। पुरुप क भोग की प्यास अखूट होती है कुन्ती उसको उ मुक्त छोडना अपने को नष्ट करना है। मैंने आख पर पट्टी बाधी न भी बाधती, तो भी कुछ नही बिगडता। मुझे अपन मन पर काबू है। मैंने सारी उत्तेजक मादक वस्तुआ के सवन का त्याग किया कि मेरी कामच्छा विपथगामी न हो। इसका अथ यह नही है कि मैं अयाय का शिकार बनाई जाऊ। मैंन महाराज से स्पष्ट कह दिया मरी परिभाषा म सयम एक पक्षीय नही है। अतप्त रहकर अपने को दमित करू, यह नही हो सकता। मैंने तुम्हे भी अपनी तरह माना था। गाधारी उत्तजनाहीन, धीर स्वर म बोल रही थी।

कुन्ती उनझन-सी गई। उसे गाधारी के शान्त शब्द उचित लग रह थे। लेकिन विरोध की बात उसे स्वीकाय नहा लग रही थी। तो क्या वास्तव म उसक सुख के दिन समाप्त होने को है? क्या जिस एकाग्रता और अगाध प्रेम को उसन अपने पति स पाया, उसे खोना होगा? आने वाली के अधिकार के दावे यदि अति म हो गये तब? प्रणय के उफाना स भरे तेजस्वी पाडु क्या अपन रुख को मोडकर दूसरी तरफ बह निकलेंगे?

कुन्ती का मन भारी हो गया। उसकी दह निशक्त हान लगी।

कुछ कहो कुन्ती! गाधारी ने अनुमान स जाना कि कुन्ती गहरे सोच म हो गई है।

९

कहने को है क्या ? आसन्न परिस्थिति के लिए तैयार होना होगा। मर्यादाओं का दबाव कितना छीनता है कितना छोड़ता है यह तो आगे पता लगेगा। लेकिन आप सच कहती हैं। यह अधिकार-हनन है।

किस के द्वारा ? गांधारी ने प्रश्न किया।

पति के द्वारा नहीं किया जा रहा है, यह भ्रम भी क्या बुरा है ! कुंती ने उत्तर दिया।

गांधारी जोर से हंसी। हंसती गई।

न जाने किस पर ?

(४०)

चतुरंगनी सेना के साथ भीष्म की पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम की यात्रा बहुप्रयोजनीय थी। इस ओर के राज्यों को कुरुराज्य के अधीन करना था। पूर्ण रूप से प्रशिक्षित सेना का दबदबा इस तरफ के राजाओं पर बठाना था कि वह किसी भी हालत में आक्रमण करने का एकल या सामूहिक रूप में साहस न करें। आर्यों की यज्ञ प्रधान संस्कृति से भिन्न पश्चिम उत्तर के राज्यों में विलास तथा स्वच्छंदता का बोलबाला था। यह राज्य सम्पन्न व अमीर थे। व्यापार में, दूर पश्चिम से जुड़े थे। अतः इनसे मैत्री भी लाभप्रद थी। जब गांधार नरेश से रिश्ता बन चुका था तब उत्तर-पश्चिम के गणराज्य को काबू में करना, कुरु राज्य के लिए हितकर था। विजय का प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत किये बगैर, संभव नहीं था कि पांडु की भोगलिप्तता को जोड़ा जा सके।

तब क्या यह हवन में घृत की मात्रा को बढ़ाकर, अग्नि को शांत करने का उपाय था ?

माद्री अद्वितीय सुन्दर थी। भीष्म जानते थे कि पांडु कुंती में ही मग्न है, फिर माद्री को लाने का उपाय खतरे को दुगुना जैसा करना नहीं था ? तब क्या प्रयोजन था ?

मद्रपति ने भीष्म का स्वागत किया था और जब भीष्म ने माद्री को पांडु के लिए मांगा था, तब मद्रपति ने अपने यहां का रिवाज सामने रख दिया था

शुल्क लेकर हम अपने कुल की कन्या देते हैं। मैं कुल रीति के विरुद्ध काय नहीं कर सकता।

भीष्म ने स्वर्ण, रत्न वस्त्र गज, अश्व आदि मद्रपति शल्य को भेंट किए, तथा उनकी बहन माद्री को ले आए।

पर्वतीय अचल की यह स्वर्ण मृगी धनादि भेंटकर क्या लाये भीष्म ?

गांधारी की चेतावनी कुंती के सन्दर्भ में सत्य निकली। पांडु माद्री के सौंदय,

उसकी देह गंध से आकृष्ट होकर लोलुप मधुप-सा हो गये।

कामपटु, शुचिका, रंभा, घताची तथा उर्वशी-सी वासनामत्त माद्री, पांडु को अपने में डुबाती गई। तीस दिवस तक पांडु अति रति में विस्मृत, देह-नेह में चरम दान प्रतिदान, प्रेरक क्रिया प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया से उत्प्रेरित प्रति प्रतिक्रिया में माद्री के दह रस चक्र से आकंठ उमगित रहे और मानो इन्द्र की अप्सरा सी मोम वितरक बनी रही। कौन किसको अघा रहा था? कौन प्यासा होकर अतृप्त अंजुलि हटा नहीं रहा था? यह चिह्नित नहीं हो सकता था। शायद परस्पर का अखंड सम्प्रदान था।

यह पावस की झिरमिर थी या शरद पूर्णिमा की चंद्रिका की सुखद फुहार?

कुंती सवदनशील द्रष्टा की तरह इस अप्रत्याशित घटित होते हुए यथार्थ को देखती रही। ऐसा उसके साथ तो नहीं हुआ था? उसके पति क्या लोक मर्यादा भी भूल गये? समक्ष कोई स्पष्ट नहीं कहे पर अतःपुर में यह चर्चा है कि नयी रानी ऐन्द्रजालिक है जिन्होंने छोटे राजा को वशीकरण से कब्जे में कर लिया। परिचारिकाएं वाक्चातुर्य का सहारा लेकर कुंती से सहानुभूति दिखाती हैं।

वह अंतर्मुखी रही है इस अवधि में। अपनी आत्मा में पैठकर और अधिक निस्पृही हो गई। गांधारी ने कहा था, यह भीष्म पितामह के कारण है। उसने जब स्वीकार किया था कि यह अधिकार-हनन है तब भी गांधारी ने प्रश्न किया था —किसके द्वारा? उसने जब पति को निर्दोष रखना चाहा था तब गांधारी हँसी थी। हँसती गई थी।

अब भी क्या उसके पति पांडु निर्दोष हैं? उसको बिसार देना क्या संगत रहा? कुंती अपने से इसका उत्तर नहीं पाना चाहती। पा सकती है पर वह उत्तर उसकी काट खाती रही भावनाओं से रंजित होगा। वस्तुतः तो उसके और माद्री के बीच पांडु है। वही उत्तर देंगे तब बात बनेगी। पर क्या उत्तर देंगे? वह बरी कसे हैं?

और इसी बीच दूसरी स्थिति सामने आई। सुना कि पितामह ने किसी विश्वस्त संदेशवाहक से उसके पति को संदेश भिजवाया—क्षत्रिय का धर्म, मात्र भोग और स्व का विस्मरण नहीं है। राजधर्म में कर्तव्यों का पालन उसकी चरित संहिता का मूल बिंदु है।

पितामह का संदेश पाते ही पांडु जैसे निद्रा से जाग गए। श्रद्धास्पद भीष्म पितामह को विवश होकर संदेश भेजना पड़ा? पांडु को अन्दर-ही-अन्दर अपने पर शर्म आई। वह उसी दिन पितामह के सामने उपस्थित हुए लज्जित-से, दोषी से।

चरण स्पर्श कर दृष्टि नीचे किये हुए खड़े रहे। अभिवादन भी शब्दों से नहीं,

भाव प्रकाशन से कर पाए।

पाडु अपने को जाता ? वरना शिक्षा-दीक्षा निरर्थक हो जायगी।

पाडु सुनते रहे। उत्तर दे पाते तब जब प्रश्न किया गया होता भीष्म द्वारा। तब भी क्या उत्तर उपजता ? प्यास और उसकी तृप्ति में रमा व्यक्ति क्या आत्म विश्लेषण की स्थिति में होता है ? वह पथभ्रष्ट कहा रह पाता है। होता है मोहाविष्ट तृष्णा से आवृत्त तथा तृप्ति के छोटे छोटे अंशों में मूछित।

मैंने सेनाध्यक्ष को तैयारी की आज्ञा दे दी है। हमारी सेनाएं विजय-यात्रा के लिए व्यग्र हैं। उनकी क्षमता को मैं उत्तर-पश्चिम की जययात्रा में परख चुका हू। अब तुम्हें पूर्व तथा दक्षिण पूर्व की ओर जाना चाहिए। क्या उचित अवसर लग रहा है ? तुम्हें अपने शौर्य का प्रमाण भी देना है।

पाडु ने अब दृष्टि उठाई। पितामह की तेजस्वी आखों में विश्वास और स्नेह चमक रहा था।

आशा के अनुकूल सफल होने का आशीर्वाद दीजिये, गुरुदेव ! वह पुन चरणों में झुक गये।

अत पुर पुरोहित सभा भद्र सभा सेना के अंगों, तथा नगर, पुर, राज, सहायक राजाओं तक समाचार वायुगति से फैल गया कि महाराज पाडु जययात्रा के लिए जा रहे हैं। कुरु राज्य को अब चक्रवर्ती होना है।

(४१)

अश्व गज रथ, पदाति सेना प्रात सचरण करेगी। अत पुर में महल के परकोटे में तथा नगर में अलग अलग तरह से मागलिक क्रियाएं एवं यज्ञ की व्यवस्था की गई है जिन्हें सूर्योदय के साथ शुरू होना है। महाराजा पाडु की जय यात्रा को धर्मजय यात्रा, अथ विजय यात्रा तथा शत्रु गर्व मर्दन यात्रा, घोषित किया गया है। मार्ग निश्चित हो चुका है। विशिष्ट, गुप्तचर मत्रणा देने वाले, मत्री तथा मांत्रिक व विशिष्ट पुरोहित साथ होंगे। अस्त्र शस्त्र खाद्य-सामग्री के साथ रसोइये एवं रथ तथा अस्त्र शस्त्र सुधारने वाले यात्रिकों का वर्ग अपनी तैयारी में व्यस्त है। प्रचार व्यापक रूप में हुआ है अत ऐसी सम्भावना है कि अधिकतर राज्य स्वय स्वागत का निमत्रण देकर संघर्ष बचाएंगे।

पितामह मध्यरात्रि में जाग गये हैं—नींद नहीं आ रही है। किस तरह के विचार उनके मस्तिष्क में आ रहे हैं ? पाडु को जययात्रा के लिए कहकर क्या उचित किया उन्होंने ? राजमाता ने प्रस्ताव को स्वीकृत किया था परन्तु शका लरज आ रही थी उनके मन में। वह सयम न रख पाकर कह उठी थी—अगर पाडु को कुछ हो गया तब ? धृतराष्ट्र का होना-न होना तो एक-सा है।

भीष्म ने उनको दुविधा मुक्त होने के लिए कहा था, परन्तु वही दुविधा अब

उनके मन में छोटे पंखों वाली चिड़िया-सी, फुर्र कर के उड़ती फिर बैठ जाती किसी स्थान में। यह आश्वस्त होते कि अशुभ कुछ नहीं होता। कि चिड़िया फिर से फुर्र करके उड़ने लगती।

पर वह भी क्या करें? राज्य के विस्तार मात्र का प्रश्न नहीं है यह यदि दीर्घ शान्ति अपना ली गई तो दूसरे किसी राजा अधिपति होने की महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हो सकती है। तब भी तो युद्ध करना पड़ेगा—अपने पर किये आक्रमण की प्रतिक्रिया में, या किसी मित्र राजा की सहायता में।

इस कोण से कदम सही लगता है। पर दूसरा पक्ष भी है। युद्ध करते रहना क्या अनिवार्य है? युद्ध तो दोनों पक्षों की जन हानि, धन हानि, नैतिक हानि करता है। यह दर्शन ही अपने में घातक है—युद्ध का दर्शन।

भीष्म ने जैसे उन्हीं के विवेक का एक अंश प्रश्न करता है—पाण्डु की इस यात्रा को धर्म विजय की यात्रा क्यों घोषित किया? क्या यह राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को सुनहरा पत्र चढ़ाना जैसे कार्य नहीं है। युद्ध में शान्ति स्थापना आज तक हुई है क्या? विस्तार में विग्रह निहित होता है यह तो मान्य सत्य है।

है पर शक्ति का आतंक बहुत से लघु युद्धों की सम्भावना को अंकुरावस्था में ही नष्ट कर देता है। हमारे पास धर्म है। हम उसी के आधार पर राज्य करते हैं। चाहते हैं कि दूसरे राजा भी अनुष्ठान के समान, प्रशासन कार्य संचालित करें ताकि उनकी प्रजा भी सुख, समृद्धि स्वतन्त्रता तथा आत्म विश्वास की प्राप्ति करें।

भीष्म के पास तर्काश्रित यह पक्ष भी मौजूद था।

चिड़िया फुर्र से उड़कर उसी बिन्दु पर आ बैठी—युद्ध से युद्ध है। अगर पाण्डु का कुछ हो गया तब कुरुवंश की समस्या फिर खड़ी हो जायेगी। धृतराष्ट्र अब विदुर के प्रभाव के कारण शील तथा धैर्य वाला हो गया है, पर उसकी दृष्टि कब विपरीत कर ले कहा नहीं जा सकता।

भीष्म ने पाया कि वह विचार की भंवर में अपने को गहरे डालते जा रहे हैं। यूं तो सोचने का अन्त ही नहीं होगा।

तब यही सही है कि जो करना है उसे किया जाए। किये जाने का उत्तरदायित्व कर्ता ले, परिणाम तो कर्म के अनुसार आना ही है।

भीष्म ने अपना ध्यान बदलने के लिए भोज पत्र की गड्डी उठा ली, उस पर मन्त्र लिखने लगे। फिर उसी मन्त्र में मग्न हो गये।

मग्न पाण्डु भी रहे माद्री के साथ रात भर। कदाचित इतने विस्मृत कि जैसे माद्री की देह के सब रस को वह अपने में सोख लेना चाहते हों। और माद्री ने

इस रात्रि को जैसे मदन का वरदान मान कर उत्सव बना लिया अपने लिए। सुख का कोष इतना संचित हो जाये कि वियोग की हर रात्रि मिलन का अमृत बरसाती लगे। वरना सेज भरी भरी सी कम लगेगी? अनुपस्थित जो होगा, उसकी उपस्थिति का भ्रम, सत्य बनकर उसे अनुगुंजित करेगा।

भोर होने के साथ पाडु कुंती के कक्ष में आए। वह स्नान कर चुकी थी तथा आराधना के लिए कुशासन पर बैठने जा रही थी।

उसने पति को उपस्थित पाया तो सहज चरण स्पर्श किये।

पाडु ने उसे बाहों से उठा लिया। पर कुंती अंतराल बनाये रही।

क्या हमने पूजन में व्यवधान उपस्थित किया? उन्होंने पूछा। फिर अपने आप ही आगे बोले—आज हम जय यात्रा के लिए जा रहे हैं, सोचा तुम्हारी शुभ कामना ले लें।

जब भी आते तभी देव से प्रार्थना में यही मांगती कि सफल होकर आए। बैठिये। उसने सिंहासन की तरफ संकेत किया।

पाडु के मन में तीव्र भाव उठ रहे थे कि वह एक बार कुंती को वक्ष से लगा लें लेकिन सामने खड़ी कुंती इतनी निर्भीक और प्रशांत थी कि साहस नहीं हो पाया। तुमने तो साध्वी रूप धारण कर लिया। वह उसे देखते हुए बोले।

नहीं, ऐसा तो नहीं है। पिता के यहां एकांत में रहना होता था। एकाकी होकर वही स्वभाव पुनः जाग्रत हो गया। सुख तो पखुरी का रंग है उसे धूमिल होना ही पड़ता है। बहुत सहज उत्तर था, किसी तरह के रसीलेपन से मुक्त।

कुंती के धीरे शब्द सुनकर पाडु हिल उठे। उन्हें लगा कुंती को संयम के इस घाट पहुंचाने के दोषी वही हैं। उसकी चपलता, जीवंतता पर हिमपात उन्हीं के द्वारा हुआ। कुंती जब पिता के घर से हस्तिनापुर आई थी उस समय भी इसी तरह शान्त थी। पूछने पर उसने मन खोल दिया था—महाराज जिस लड़की को पिता शूरसेन के वचन निभाने के लिए मां को मथुरा को, छोड़कर दूसरे पिता को स्वीकार करना पड़ा हो, उनके यहां एकांत की होकर रहना पड़ा हो उसमें एकाकीपन पत्ता फूलों की तरह फल गया तो आश्चर्य क्या है? पाडु ने कहा था—पर साधु से अधिक गम्भीर होना स्वयं के साथ अन्याय करना है। बसंत में शीत से ठिठुरे हुए सपनों को सहज रखना ऋतु की उपेक्षा है।

आपके सम्पर्क में आकर ठिठुरना दूर हो जाएगी सपनों की। वह उड़ चलेंगे आपके साथ महाराज यदि आपने उनके पंखों को राग रंजित भावों का लाड़ दे दिया।

महाराज पाडु के मस्तिष्क में वह आरम्भिक अवधि कौंध गई जिसमें उनके घबराए हुए भाव मथाने कुंती को शनैः शनैः हरीतिमा की ताजगी और सुहास

दिया था। कुन्ती मुकलित सुमना की गंध भरी क्यारी हो उठी थी।

पति के उत्साह को उदासी में बदलते देखकर कुन्ती बोली—महाराज आपको आज विजय यात्रा के लिए जाना है। मन को उत्साहित रखिये।

क्या मैं अपने को जानता हूं, कुन्ती? पाण्डु ने पूछा।

हां, जानते हैं। अच्छी तरह जानते हैं, जब मोह से आवृत न हों। आत्मा के निकट हों तब। कुन्ती ने आश्वस्त भाव में कहा।

मुझे क्या हो गया? मैं माद्री में इतना विलीन हो गया कि

पर पितामह के संदेश से तत्क्षण अपनी जगह पर आ भी तो गये।

तुमने अपनी उपेक्षा के प्रति सजग क्यों नहीं किया? पाण्डु कुन्ती को इस तरह देख रहे थे जैसे कोई भटका हुआ व्यक्ति मन्दिर में आ गया हो और मूर्ति को सम्मोहित भाव से देख रहा हो।

मुझे होड़ नहीं करनी थी। माद्री को भी उसके पति का वह अंश मिलना था जिसे मैं प्राप्त कर चुकी थी। वह दुर्लभ समर्पण जिसमें आत्मा का सहस्र दल कमल खिल कर चांदनी में स्नात होता है, धवल कलानिधि की किरणों से ओत प्रोत हो।

देह और आत्मा में कितना अन्तर होता है, कुन्ती! तुम मेरी आत्मा हो। पाण्डु के चेहरे पर तेज-सा प्रकट हुआ। पूर्व उदासी गायब हो गई। वह इच्छा भी कहीं खो गई कि वह कुन्ती को अपने वक्ष से लगा लें।

कुन्ती मुस्करा रही थी। उसकी आंखों में महाराज पाण्डु को अद्भुत ज्योति-सी दिखी। यह उनका अपना मनोभाव था। पर कुन्ती कह रही थी—देह और आत्मा पृथक नहीं हैं महाराज संयुक्त हैं। संचरण कभी देह से आत्मा तक होता है कभी आत्मा से देह की ओर।

पता नहीं पाण्डु, उसे सुन रहे थे, या उसकी आंखों की ज्योति प्रभा से अपने को पूरित कर रहे थे, कि वह शक्ति बनी उनकी पराक्रम यात्रा की अटूट प्रेरक बनी रहे।

(४२)

निग्रह संयम, अर्जित भी होता है और जीवन क्रम में, अवस्था सोपान के अवसर अनुसार, स्वतः भी आता है। आकर्षण, आवश्यकता, भोग तृप्ति फिर विरक्ति मनुष्य के इन्द्रिय जगत का स्वभाव है। जैसे-जैसे सांसारिक प्राप्तियां होती हैं मन, अन्तः की गहराइयों में पैठता जाता है। वहां की इच्छाएं सूक्ष्म हैं। भौतिक से पृथक भावात्मक हैं। वस्तु नहीं उसकी श्रेष्ठता तथा सौंदर्य तृप्त करती है। अपने से पद तक की यात्रा याचना व अधिकार प्राप्ति से आशीर्वाद

देने योग्य बनने की यात्रा है। मोह को अपने से हटकर बटने, परिष्कृष्ट होने, तथा विस्तार पाने का नाम ही परिपक्वता है। प्रौन्ता है। आयु भी इस रूपान्तरण का सम्पन्न करती है। इस सदभ म पुरुष की गति धीमी होती है, पर नारी ता प्रकृति स ममता का सरोवर है।

पाडु की विजय यात्रा की अवधि ने राजमाता सत्यवती, अम्बिका, अम्बालिक गाधारी कुती माद्री का एक साथ चिन्ता म डाल दिया। अतराल से विजय की सूचना राज्य तक पहुचती पुरा तक खुशिया का लहर दौड जाती पर अत पुर म क्षणिक प्रसन्नता को तुरन्त दुश्चिता आवृत कर लेती।

पहली सूचना मिली पराक्रमी पाडु न दशाण देश क राजा को परस्त कर दिया। फिर सदेश मिला कि महाराज पाडु न मगध क अहकारी राजा दीघ से घमासान युद्ध किया। उसके सुरक्षित गढ को मना न घेरकर बाध्य कर दिया कि वह अपनी सना को गढ से बाहर निकाल। सना क बाहर आते ही पाडु स्वय योद्धाओ के साथ महल म प्रवेश कर गए तथा राजा का वध किया। राजा दीघ के सम्मुख सदेश पहुचाया गया था कि वह कुरुराज्य की अधीनता स्वीकार कर ले। परतु उसने शक्ति क मद म प्रस्ताव ठुकरा दिया।

पितामह और सभासदस्यो को मगध पर इस काटे की विजय का अतिरिक्त हप हुआ। नगर म उत्सव मनाया गया तथा पाडु के मगल के लिए यज्ञ करवाए गये।

अम्बिका और अम्बालिका राजमाता के महल म गइ। राजमाता पूजा करके निवत्त ही हुई थी। उन्ह देखकर चकित हुइ।

दोना न अभिवादन किया।

बठो।

दाना उनकी चौकी के निकट आसन पर बठ गइ।

कहो कस आई ? राजमाता ने पूछा।

मा पाडु की विजय के समाचार न आपको अवश्य प्रसन्नता दी होगी। अम्बिका बोली।

हम सबके लिए ही सुखद समाचार है। कितनी लम्बी अवधि के बाद देखा कि कुरुवश का कोई उत्तराधिकारी दिग्विजय म सफल हो रहा है। राजमाता के चहरे पर सतोष व्याप्त था।

यह यात्रा कितनी लम्बी होगी मा ? अम्बालिका ने पूछा।

मैं क्या कह सकती हू, बेटी। जीत का मद स्वय म उत्प्रेरक होता है। फिर पाडु को तो एक अति स जाग्रत कर दूसरी क लिए प्रेरित किया गया है। तुम जानती तो हो।

हा, मा ! मैं डरी नही कभी जीवन म। पर बेटे के इस स्वभाव से अब कापने

लगी हू । वह मन म दृढ है । सकल्पवान है पर देह स क्षीण हो रहा है । आपने ध्यान से नही देखा कदाचित । अम्बालिका के मुख पर धुंधलाहट-सी थी । मैंने देखा है । तुम म अधिक मैं शकित हू । लेकिन जो हो रहा था, वह और भी घातक था । मैं अपने बेटे की किसी क्षति को रोक नही सकी थी—उसे खोना पडा था । तुम अल्प आयु थी उस समय तुम म कम रहती कि

राजमाता यकायक रुक गयी । कौन सी स्मृति किनके सामने, क्या कहलाने लगी । विचित्र वीर्य की मत्यु क्या हुई, यह बेचारी क्या जानती थी । उस समय पर अब दोनो समझ रही थी । राजमाता का सकेत । उस सकेत के माध्यम से उस हानि को भी जो माद्री के कतव्य मे घटित हो सकती थी ।

विचार म डूबी सत्यवती स्वय बोल पडी—मैंने ही भीष्म को बुलाया था । उससे कहा था—पाडु को सचेत करो । उसे उसके कत्तव्य की याद दिलाओ, वरना दुघटना हो जाएगी ।

राजमाता की आत्म-स्वीकृति सुन, अम्बिका तथा अम्बालिका दोनो अचम्भित सी उन्ह ताकने लगी । पर प्रौढ़ता न दोनो को सयम और समझ दे दी थी । वह अब राजमाता पर श्रद्धा रखती थी । बेटे राजा हो गये उनकी रानियां आ गइ, फिर उन्ह गृह राजनीति मे क्या सरोकार रखना था । राजमाता की विवशता है और उत्तरदायित्व भी ।

तुम दोना आई तो अवश्य विशेष मतव्य होगा । उसे नही कहा । राजमाता की दृष्टि भी शब्दा के अनुसार प्रश्न कर रही थी ।

महाराज पाडु की चिन्ता यहा ल आई । अम्बिका बोली ।

महाराज पाडु की, या बेटे पाडु की ? राजमाता मुस्कराइ ।

प्रसन्नता तब होती है जब भटका सदेश आता है यहा कुशलता का, पर चिंता तो हर समय घेर रहती है । रात्रि म भयानक स्वर आकर जगा देते है । तब देवा का स्मरण करन लगती हू—रक्षक बनना देव । अम्बालिका विगलित सी हो गई ।

हम यही तो प्राथना कर सकत हैं । राजा को अपना कत्तव्य करना ही होगा, क्षत्रिय धम निभाते है राजा रानियो का पल-क्षण दुश्चिताओ मे बीतता है । फिर हम तो मा हैं ।

तो राजमाता आप पितामह से कहिये, वह सदेश भिजवा दें कि महाराज पाडु जय यात्रा समाप्त कर लौट आए । राज्य विस्तार तो कितना भी हो सकता है । इसकी सीमा कहाँ ? अम्बालिका के मुह म आवेश म मुख्य बात निकल गई। यह मोह था । कमजोरी थी । क्या था ? वह समझ नही सकी ।

कस कह सकती हू भीष्म से । वह स्वय मद्र की ओर विजय यात्रा के लिए गये थे ।

वह इस उम्र मे गये तव यात्रा स्थगित करने के प्रस्ताव को कसे मानेंगे? अगर दुघटना घट गई तब क्या होगा, राजमाता? राजा धष्टराष्ट्र मेरा पुत्र है, पर वह तो नाम का है। सारा भार तो पाडु पर है। अम्बिका ने दूसरी तरह यात्रा स्थगित करने का अनुमोदन किया।

राज्य विस्तार निरथक हो जायगा। यदि अघट घट गया। अम्बालिका बोली।

सत्यवती उसी तरह गम्भीर रही। क्या उन्हे यह सम्भावना नही दीखती? युद्ध म मौत सामन होती है आदमी उसीसे तो खेलता है। लेकिन वह राजमाता है। कमजोर भावनाओ को भी कवच पहना कर सत्त दिखाना होता है। वह दोनो को समझाती हुई बोली।

होनी को कोई नही टाल सकता। पहले भी क्या टल सकी। भाग्य पर और प्राथना पर विश्वास रखो। मैं भी चिंतित रहती हू। पर चिंता को इतनी अवधि के लिए नही ठहरने देती कि वह मर विश्वास को तोड द। उसके बाद सूय स अग्नि से प्राथना करती हू—कि वह मेरे बच्चे को अदम्य शक्ति दे, तेजस बनाए। मन को शात रखो परिणाम को भविष्य पर छोड दो।

अम्बिका और अम्बालिका उद्विग्न मन आई थी लगा कि राजमाता के कथन मे ऐसी शाति है जो उन तक पहुचकर उन्हे सम्पृक्त कर रही है। वह शान्ति उनके कथन मात्र म नही है, उनके व्यक्तित्व से प्रवाहित होती है।

सन से सफेद बाल सिकुडना भरा चहरा, त्वचा का ढीलापन पर फिर भी आखो म गहरा चितन। उसके पीछे जसे ममता की वदना हो।

दोनो किसी आस्था से अभिभूत हो गइ। जिस सुझाव को लेकर आई थी। वह असगत लगने लगा। सादर चरण छू लौट आयी।

समय आगे बढा। सदेश आया महाराज पाडु ने मिथिला व काशी पर विजय प्राप्त कर ली। भद्र सभा न सदेश का स्वागत किया। यज्ञ उपासना, दान का क्रम बढा दिया गया। पुरवासियो की खुशी उत्सव का रूप ले रही थी।

महाराज धतराष्ट्र को बधाई है। आपके भाई की वीरता की तुलना महाराज इन्द्र से की जा रही है। स्वर गाधारी का था।

देवता इन्द्र से। महाराज धतराष्ट न जसे उपाधि म शुद्धिकरण किया?

अन्तर है क्या? गाधारी ने पूछा।

हा जितना मुझमे और पाडु मे। मैं राज राजाओ की दृष्टि म अधिराज होऊगा, पर लोक की दृष्टि म अपनी वीरता के कारण पाडु देवता तुल्य माना जाएगा।

वह आपका कितना आदर करत हैं। उनकी उपलब्धिया आपक और कुरु राज्य क लिए हैं।

हैं। तब तक जब तक वह मुझे मानता है। पर मान्यता तो उसको प्राप्त हो रही है। जब चाहे, अपने को अधिपति घोषित कर सकता है। धृतराष्ट्र चिंतन मे नहीं, चिंता मे थे। पलक झपका कर उस किसी प्रकाश को अनुभूत करना चाह रहे हो, जो मिल नही रहा हो।

गाधारी उनकी अन्यमनस्कता समझ गई। सामान्य करन के उद्देश्य से बोली, सन्देह अविश्वास को स्थाई बनाता है। आप ऐसा क्या सोचते रहत हैं, महाराज ?

परावलम्बी अपनी विवशता पर नही सोचे, तो प्रत्यक्ष की अवहेलना नही होगी क्या ? तुम्ह नही लगता कि मैं सिफ शोभाऊ हू। मेरे हाथ म क्या है ? मेरा अधिकार कितना है ?

आपके पास धम है। धर्माधिकार है। इतने समय मे मैं अच्छी तरह समझ गई हू कि मर्यादाओ को मानना उसके अनुसार व्यवहार करना कुरुवा की विशेपता है। पितामह न छोटे से सदेश न पाडु को विजय यात्रा पर भेज दिया। गाधारी समझा रही थी।

मैं कहा जा सकता हू ? क्या कर सकता हू। क्या करने योग्य हू। दूसरो की सहानुभूति मिलती रहे तब तक ठीक है वह बदल जायें तब ?

नही हो सकता। आपको ऐसा नही सोचना चाहिए।

मुझे तुम्हारे भाई शकुनि की बातें ज्यादा यथाथ लगती ह। उसने तुम्ह यहा पहुचाकर लौटन से पहले कहा था—महाराज धतराष्ट्र, बुद्धि का धम चौकन्नापन है। चौकन्नापन तभी रह सकता है, जब मानत रहो कि तुम्हारे हित को हडपने वाल हर समय ताक मे है। आपको वसे भी दूसरो पर निभर रहना है।

उमकी सीख पर मत जाइये। लुटेरो और आक्रमणकारियो से घिरे राज्यो के नायको का यही दशन हो सकता है। मैं भी एसे ही सदेहो को लेकर आई थी, लेकिन यहा के वातावरण ने, आपके यहा की जीवन विधि न, मुझे बदल दिया, महाराज। गाधारी की स्वीकृति, ईमानदार स्वीकृति थी।

धतराष्ट्र मानते है कि पाडु उन पर श्रद्धा रखता है। विदुर उनके अतरग है, गाधारी विवेकसम्मत सम्बल है उनके लिए। पर आशका, जसे उन्ही की छाया है, जो अलग होन हुए भी उनस जुडी रहती है। वह उजाले अधेरे की नाल है जिसे दाई काटना भूल गई।

(४३)

कुन्ती क्या पूरा नगर, महल, अत पुर, महाराज पाडु की जययात्रा से लौटने पर प्रसन्नता की उछाल भरन लगा। सेना का स्वागत उस सीमा स शुरू हो गया था, जहा से कुरु राज्य शुरू होता है। काशी, सुह्म, पुड्र राज्यो को जीतकर

पांडु ने अपनी यात्रा की इति की थी। विजेता के साथ अस्त्र, मणि, मुक्ता, सुवर्ण चांदी गो, घोड़े, ऊंट भैंसे, भेड़ हाथी आदि अनेक धन आया था। हारे हुए राजाओं ने मूल्यवान उपहार भेंट किये तथा कर के रूप में राशि देना स्वीकार किया था। हस्तिनापुर तोरणों का नगर बन गया था। स्थान-स्थान पर ऋत्विजों की ध्वनि से गुंजरित हो रहे थे। पुरजनों ने तथा श्रेष्ठि वर्ग ने दीनों के लिए भोजन व दान दक्षिणा के लिए हृदय खोल दिया था।

पितामह मंत्रि परिषद पुरोहित वर्ग ने व्यवस्था क्रम के अनुसार भाग को बांटकर स्वागत को भव्य रूप प्रदान किया था। रथों, अश्वों, हाथियों पर शोभित वीर अपनी सफलता से गर्वित स्वागत का उत्तर प्रसन्न मुख से दे रहे थे।

अंतपुर में पांडु ने प्रवेश कर राजमाता सत्यवती माता अम्बिका व अम्बालिका के चरण स्पर्श किये। धनुष चाप, कवच धारे पांडु देवता तुल्य लग रहे थे। भावावेश और प्रसन्नता से पूर्ण, आनन्द के वातावरण ने पांडु को अश्रुपूरित कर दिया।

महाराजा धृतराष्ट्र व विदुर ने विजयी भाई को वक्ष से लगा लिया। महाराज के ज्योतिहीन नेत्र हृदय के भर आने से भरपूर हो उठे थे।

गान्धारी कुन्ती, माद्री परिचारिका वर्ग से घिरी अपूर्व स्वागत को देख देखकर हर्षित हो रही थी। नेत्र दृश्य से धन्य धन्य हो रहे थे या दृश्य नेत्रों के शुद्ध भावों से उपकृत हो रहा था कौन रेखांकित कर सकता था।

उस समय पुष्प ही आशीर्वाद बनते हैं। वह उस उछल उछल कर बिखर रहे थे जैसे बरखा की फुहार की हवा अपनी सरसराहट से लहरा रही हो।

दिन ढल गया। उस दिन सूर्यास्त भी अनोखी लाली के साथ घटित हुआ। सरिता की धारा ने उसी रंग का मोहक परिधान पहिना जिस रंग का परिधान पश्चिम दिशा ने पहिन रखा था।

महाराजा पांडु ने अपने विशिष्ट दूत से कुन्ती के यहां सन्देश भिजवाया कि वह रात्रि उन्हीं के यहां रहेंगे।

कुन्ती के लिए यह अप्रत्याशित संदेश था। इतने माह के अन्तराल के बाद उनका माद्री के महल जाना अपेक्षित था। माद्री ने दिन भर अपने मन को उद्वेलित पाया था, तथा उसने महाराज के अंतरंग स्वागत के लिए पूरी व्यवस्था करवाई थी।

कुन्ती के पास श्रद्धा थी, शांत मन था, उसी को लिये वह महाराज के लिए प्रतीक्षारत थी। मां अम्बालिका ने पुत्र को भोजन के लिए आमंत्रित किया था। आमंत्रण का तो बहाना था वह अपने विजयी पुत्र को जी भरकर निहारना चाहती थी। वह निराले में उसे आशीर्वाद देना चाहती थी कि उसकी और उसके पुत्र की साधना विधाता ने सिद्धि तक पहुंचाई। जीवन में इससे अधिक सुखित प्रदायी क्षण कौन-से हो सकते थे।

सिंह-सा भव्य पुत्र उसके सामने उनके कलात्मक आसन पर बैठा चौकी पर

रखी थाली म सजा भोजन प्राप्त कर रहा था। वह वात्सल्य का बलिहारी रूप हुई उसे एक टक देख रही थी।

पाडु, युद्ध मे तेरे घातक घाव तो नही लगे? उन्होंने पूछा।

पाडु न सिर उठाया, क्सी-सी मुस्कराहट मुख पर प्रकट हुई। बोले—मा युद्ध मे घाव किसी का तो लगने ही है। आहत भी होने है, मरत भी हैं।

मैं तरी देह पर लगे घावो की पूछ रही हू।

मरे सामने जगह-जगह की युद्ध भूमि हैं। उनके विदारक दृश्य हैं। अब युद्ध के लिए कभी नही जाऊगा। पाडु के दीघ सास सी छूटी।

ऐसा क्या कह रहे हो, पुत्र? अम्बालिका जडित सी रह गई। वात्सल्य का सम्मोहन कुटकी खा दूर गया। गम्भीरता हावी हो गई।

दासी अतिरिक्त भोज्य पदाथ लेकर आई। महाराज पाडु ने सकेत स मना किया।

अम्बालिका ने अनुरोध किया, थोडा और ल लो पुत्र, अभी खाया कितना है।

नही मा। पर्याप्त हो गया। उन्होने उत्तर दिया।

तब दासी लौट गई। मा ने अपने मन की कहकर पुत्र के मन की जाननी चाही। चाहती तो थी कि वह यात्रा का वत्तात सुने। वीरता की कथाए सुने। पर पाडु को बहुत शात पाया फिर भी बोली—तुम्हारी लम्बी यात्रा से मैं भी घबरा गई थी। राजमाता से मैंन और अम्बिका न प्राथना की थी कि वह पितामह से कहकर यात्रा का अत करवाए। उ होने क्षत्रिय धम का वास्ता देकर विवशता जाहिर की थी। पर हमे तो तुम्हारी चिंता थी। इकलौते तुम मेरे हो। राज्य का भविष्य तुम्हारे सुरक्षित रहने म ही तो सुरक्षित है। युद्ध म नही तो सुरक्षा मे तो हथियार उठाना पडता ही है। अ यायी या उद्दडी राजा को सजा देना प्रजा को उससे मुक्ति दिलाना अधिपति का क्त य होता है। क्षत्रिय धम स बधे पितामह भी युद्ध कम स कहा छुटकारा पा सके। तुम क्या इसके विपरीत सोचते हो?

पाडु ने भोजन समाप्ति पर अ न देवता को हाथ जोडकर नमस्कार किया। हाथ धोए। वस्त्र स मुह पाछा। मा की उत्सुकता को शान्त करन क लिए सक्षिप्त उत्तर दिया।

मातेश्वरी पितामह की शक्ति, सयम विद्वता, सकल्प का मैं अश भी नही हो सकता हू। उ होंने अलग अलग धर्मो को अपन मे एकीकृत कर अपने व्यक्तित्व को तेज पुज तथा अखडित बना रखा है। वह कम दिग्गज हैं। सासारिक भी अलौकिक भी। मेरी सामथ्य वसी कस हो सकती है? लकिन युद्ध म जिस रक्त पात को मन देखा है, सहा है वह किसी भी तरह मुझे उचित नही लगा। मगध

के राजा दीर्घ की हत्या उसी के महल में मेरे हाथों द्वारा हुई। वह दृश्य भूले नहीं भूलता। जो हमारे अधीन नहीं होना चाहे वह हमारी दृष्टि में दुश्मन हो जाय, यह कैसे संगत हो सकता है ? लूटपाट जनहानि, बस्ती हुआ को उजाड़ना, यह राज्य विस्तार की मदांध तृष्णा के तहत, नैतिक व धर्म सम्मत हो सकता है, पर यह भी अनाचार का रूप है। मैं नहीं जानता मां कि मैं क्या चाहता हूं। परन्तु राज्य नहीं चाहता। महाराज धृतराष्ट्र सम्भालें राज्य को मैं सतत अशांति और संशय को नहीं जी सकता। मैंने लौटते हुए तय कर लिया था हस्तिनापुर से दूर, उत्तर की ओर वनों में शान्तिपूर्वक वास करूंगा। मृगया पर जीऊंगा। अपने अशांत हुए मन की शान्ति ढूंढूंगा। मां अम्बालिका घबरा सी गई। वह हंसता हुआ, वह स्वागत स्वीकार करता हुआ वह विजयी इन्द्र-सा लगता हुआ, उसका पुत्र क्या औपचारिक अभिनय कर रहा था ?

पुत्र ! तुम्हारा निर्णय विचित्र है। कौन स्वीकार करेगा इसे ? पितामह हर्गिज अनुमति नहीं दे सकते। मैं भी क्या चाह सकती हूं कि तुम वन में रहो मैं राज महलों का सुख भोगूं। त्यागने की आयु हमारी है या तुम्हारी ? यहां तो दान-दक्षिणा अश्वमेध यज्ञ की योजनाएं पहले से बनी हैं। तुम्हारे प्रिय विदुर का विवाह राजा देवक द्वारा दासी से जन्मी कन्या पारसवी से होने जा रहा है। हां शायद यही नाम है उस कन्या का। क्या यह सब तुम्हारी अनुपस्थिति में होगा ? तुम्हीं तो अर्जित करने वाले हो यश कीर्ति धन तथा सम्पन्नता।

मैं नहीं मां, हमारा सैन्यबल। उसका कौशल और संकल्प। लेकिन मुझे मेरी अशान्ति के सामने यह सब निरर्थक लगता है। मेरा निर्णय अटल है। मैं पितामह से निवेदन करूंगा। वह मुझे यहां बंदी बनाकर नहीं रखना चाहेंगे। वह उदार हैं। मेरे शुभ चिन्तक हैं।

दासी कब चौकी उठा ले गई, पता नहीं चला। कब बैठने का स्थान परिवर्तन हो गया, पता नहीं लगा। कितना समय बीत गया पता नहीं चला। खिचड़ी-से बालों वाली प्रौढ़ मां युवा पुत्र के वीतराग को अनुभव कर ठगी-सी रह गई। क्या वह आज्ञा देकर पांडु को रोक नहीं सकती ? पांडु की मानसिकता विजय की मात्र प्रतिक्रिया है थकान से, या ऊब से अपनी अस्थाई प्रतिक्रिया है, या यह वास्तविक निर्णय है, वह कैसे जान पाती। उसने सोचा कुन्ती से, माद्री से मिलेगा, जरा सामान्य होगा, अपने आप केन्द्र पर आ जाएगा।

पांडु ने चरण स्पर्श किये और उदास हुई मां से क्षमा मांगकर कुन्ती के कक्ष की ओर चल दिये। अपेक्षा से अधिक समय हो गया था।

कुन्ती ने दासियों को सतर्क कर रखा था पर बढ़ती हुई रात के कारण उनमें शिथिलता आ गई थी। आपस में बातें करने के बाद, वह इस निष्कर्ष पर पहुंची थीं कि महाराज कदाचित छोटी रानी माद्री के यहां पहुंच गये।

अरे हमारी स्वामिनि तो सीधी गाय है, छोटी रानी बड़ी चालाक है। उन्होंने सी बहाने से महाराज को बुलवा लिया होगा। फिर वाक्लता से उन्हें उलझा या होगा। एक दासी ने कहा।

दूसरी ने उसे तुरंत आगाह किया बावली हो गई है क्या? किसी ने सुन या, और पहुंचा दिया महाराज तक, या छोटी रानी तक, तो ऐसा दंड मिलेगा र अगले जनम तक याद करेगी।

मैंने सच कहा है। मुझे स्वामिनी के सीधेपन पर तरस आता है।

अपने पर तरस खा। रनिवासों की माया जानवर, जबान सिली रखना चाहिए।

लेकिन जैसे ही सूचना आई कि महाराज पाडु आ रहे हैं, दासों के होश गुम हो गये। शिथिलता हवा हो गई।

छोटों की अकल, छोटी होती है, समझी। दूसरी दासी ने व्यंग्य किया।

महाराज पहुंचे तब तक अंतःकक्ष में हलचल मच चुकी थी। कुंती, जो विश्वास और निराशा की मानसिकता के बीच झूल रही थी, प्रफुल्लित हो उठी। महाराज पांडु सामान्य कक्ष में पहुंचे तो कुंती स्वागत करने को उपस्थित थी।

हम देर हो गई, कुंती। हम मां के दर्शन के लिए गये थे।

स्थान ग्रहण करिये, महाराज। दासियां भोजन की पुनः व्यवस्था कर शीघ्र ले आएंगी।

पांडु सिंहासननुमा चौकी पर बैठ गये। भोजन हमने मां के यहां किया है। भोजनालय में मना करवा दीजिये।

स्वामिनी का संकेत पाकर उपस्थित दासी मना की सूचना देने चली गई।

महाराज थके हुए हैं? कुंती ने देखते हुए प्रश्न किया।

हां, विश्राम की तीव्र इच्छा है। तुम से मिलने के लिए बेचैन थे। कितनी कितनी बार यात्रा में तुम्हारा स्मरण आया। पांडु स्वयं कुंती को अजीब-सी दृष्टि से देख रहे थे, जैसे दर्शनाभिलाषी अपने अभीप्सित को सामने पाकर दर्शन की तृप्ति ले रहा हो।

कुंती महाराज को आदरसहित अंतरंग कक्ष में ले गई, जो हल्के प्रकाश से प्रकाशित था। मिश्रित सुगंध से कक्ष सुवासित था। कुंती ने शय्या के निकट पहुंचकर महाराज से उत्तरीय लेने के लिए हाथ बढ़ाया। महाराज ने उत्तरीय उसे दे दिया तथा स्वयं सेज पर बैठ गये।

तुम भी बैठ जाओ, कुंती।

आप सुविधा से विश्राम करें, मैं क्षण भर में आ रही हूं।

शृंगार को सवारने जा रही हो? तुम वैसे ही अद्वितीय सम्मोहक लग रही

हो। महाराज ने परिहास किया।

अपने को क्या सवारूगी महाराज ? तन मन से आपकी हू फिर कृत्रिमता क्या अपनाऊ ? मैं अपन आराधना स्थल पर जाकर तनिक मन को एकाग्र करने जा रही थी जो हर्षातिरेक स असामान्य हो रहा है।

उस वसी ही दशा म रहने दो। हम भी तो उतने शान्त नही है, जितना होना चाहिए। बल्कि हम वेदना की अत धारा से खिन्न है। तुमस शक्ति और विवेक क आकाक्षी हैं। महाराज पाडु ने लगभग रोक-सा लिया कुन्ती को।

कुन्ती ने आग्रह स्वीकार कर लिया पर बोली—मैं आपकी अर्धांगिनी हू महाराज अपना दु ख मुझे द दीजिए, सुख अपने तई रख लीजिए।

वह शया के पायतें बठ गई।

कुन्ती हम तुमस अपनी समस्या का हल पूछना चाहते हैं। जो प्राप्त नही है, वह हम आकर्षित क्यो करता है ? जब प्राप्त करत हैं तो हम उसी के क्यो हो जाते हैं ? अघात है ता रिक्तता क्या अनुभव होती है ? फिर, दिग्भ्रातता। तुमस अधिक हम कौन समझता है।

पाडु ने जम अपने को उलीच दिया।

कुन्ती क्या बोले ? अपने अनुभव स बोन या महाराज पाडु के प्रवाही स्वभाव क सम्बन्ध मे बताए जिसस वह परिचित है। उससे उत्पन्न प्रभावो को उसन सहा है। वह उत्तर नही बना पाई।

हम अभी मा अम्बालिका के पास स आ रहे हैं। हमन जब उन्हे अपना निणय बताया कि भविष्य म युद्ध कभी नही करेंगे हस्तिनापुर छोडकर वनो मे उन्मुक्त वास करेंगे आखेट करेंगे, कदमूल फल पर गुजारा करेंगे, तब उन्होंने हम क्षत्रिय धम तथा राजा क कत्तव्य याद दिलाए। हम पर उनकी सीख का असर नहीं पडा। जस वह वही रह गई उनक पास। पाडु एकटक कुन्ती को देखे जा रहे थे। उत्तर की अपक्षा करत हुए भी स्वय बोलने स रुक नही पा रहे थे।

कुन्ती का हृष बठ गया। क्या महाराज इसी अप्रत्याशित निणय को सुनाने आये हैं ? वह सचमुच उलझे हुए हैं मा

यह निणय तो सच म असगत है। आपके मस्तिष्क मे आया क्या कर ? कुन्ती ने उल्टे महाराज स प्रश्न कर लिया। उस यही उचित लगा एसी अजीब स्थिति म।

रक्तपात देखकर। निरथक रक्तपात देखकर। राज्य विस्तार तथा अधिपति होने की महत्वाकाक्षा का परिणाम प्रत्यक्ष देखकर। इसकी सीमा है क्या ? क्षत्रिय धम, या आयधम या कोई भी धम मनुष्य का रक्षक है या हत्याओ का प्रसारक ? हमने भाग क तल को देखा। माद्री क सौन्य उसकी देह सम्पदा म विस्तृत होकर दखा। पाया तृप्ति क बाद प्यास तृप्ति क साथ और प्यास। यहा तक

कि शारीरिक निर्बलता और अधकार से ग्रसित हो गये। प्रसन्नता आनन्द ऊर्जा, क्षणिक भावावेश से लगे। हम जितने भरे, उससे अधिक रिक्त रहे। तब लगा तुम्हारा सयमित समर्पण ही देह धर्म का सतुलन है।

महाराज आप अतिरेक म बडाई कर रहे है। मैं सामान्य नारी हू। कुन्ती ने धय के साथ कहा।

पर हम असामान्य है। अति से विवश है। जबकि सयम चाहत हैं। अपनी पूर्णता के आकाक्षी है। हम तुम्हारा सहारा चाहिए, कुन्ती। हमारी रिक्तता क्या चाहती है? क्या तलाश कर रही है? हम पता नहो।

कुन्ती ने देखा महाराज पाडु के चेहरे पर विकलता झलक आई। वह नादान और निरीह से हो गय हैं। कुन्ती के अत की सवेदना, उसकी श्रद्धा उसकी ममता, तरगित होने लगी। वह लज्जा से दृष्टि झुकाये रही।

निकट आ जाओ, कुन्ती।

कुन्ती ने कह का पालन किया।

महाराज पाडु ने उसे बाह फलाकर अपने चौडे वक्ष स लगा लिया और भावा वेश मे बुदबुदाने लगे—कुन्ती तुम तो मुझे समझती हो। मेरी रिक्तता को मरी आतुरता को। मैं दिग्विजयी पाडु नही प्राप्तियो से घबराया हुआ अशात अस्तित्व हू। मुझे दूर ले चलो—ऐसे धर्मों स अलग जो सग्रह सघष, रक्तपात की कडियो को जोडकर ऐसी शृखला बना रह है जो मुझे लपटती जा रही है।

कुन्ती महाराज पाडु के वक्ष से लगी रही। वह अब स्वरहीनता म कुछ बुद बुदा रहे थे। वह क्या कहती? क्या समझाती? महाराज का निर्णय, निर्णय मात्र कहा था वह तो वह तो उनके अशात मन की कराह थी। कोई तलाश थी। कदाचित अपने ही द्वारा अपने की खोज।

महाराज आप विश्राम करिये, बहुत क्षुब्ध हैं। कुन्ती ने धीरे से अपने को हटाया। महाराज को सहारा देकर लिटा दिया।

वह सिरहाने बठी पति के सिर को धीरे धीरे दबा रही थी कि उनको नींद आ जाए। उनको या उनके विकल स्तर को।

(४४)

हस्तिनापुर म खलबली मच गई थी जब वहा के वासियो न सुना था—महाराज पाडु उत्तर की ओर अरण्यवास के लिए जा रहे हैं। सत्यवती, अम्बिका अम्बालिका भीष्म पितामह महाराज धतराष्ट्र नीतिज्ञ विदुर भद्र सभा पुरोहित सभा, क्या कोई भी उन्ह समझाकर रोक नही सका? दिग्विजय के उत्सव स उत्पन्न प्रसन्नता और उत्साह अभी सामान्य स्थिति म हो भी नहीं पाया

था कि यह कैसा विशेष पदा हुआ ! महाराज पाडु ने ऐसा अप्रत्याशित निणय क्यो लिया ?

सामा य पुरवासी के लिए यह अबूझ था, तो रा य तथा प्रशासक वग के लिए भी पहेली के समान था। सत्यवती, अम्बिका व अम्बालिका को आशा थी कि पितामह उ ह रोक पाएगे पर तु उ ह पता लगा पितामह न पाडु स रुकन का आग्रह नही किया। धतराष्ट्र न रोकना चाहा था, यह कहकर कि तुम्हारे बिना रा य असुरक्षित हो जायेगा। पर पाडु न विनम्रता से उत्तर दिया था पितामह के रहते हुए राज्य कभी असुरक्षित नही हो सकता। सकट हुआ तो मैं अवश्य कतव्य पालन करन आऊगा। कदाचित धतराष्ट्र भी औपचारिक थे, तथा पाडु का उत्तर भी अवसर को देखत हुए टालना मात्र था। वचनबद्धता के स्वर म दूसरी तरह का सकल्प झलकता है।

भीष्म पितामह के समक्ष जब महाराज पाडु स्वीकृति पाने गये थे तब उ ह तणमात्र भी सदेह नहा था कि उ हें स्वीकृति दने म पितामह दुविधा म पड़ेंगे। हा उ ह यह पता था कि उ ह प्रश्नो का उत्तर अवश्य देना पडेगा। वसा ही हुआ था। पितामह विशिष्ट व्यक्तियो स मिलन के पश्चात अपन एकान्त कक्ष म आकर अध्ययन के लिए तत्पर हो रहे थे।

सवक के माध्यम से पाडु न सूचना भिजवाई—पितामह, छोटे महाराज आपके दशन के लिए उपस्थित हुए हैं।

बुला लाओ। पितामह ने कहा। उ ह प्रसग का अनुमान था अत बिछ हुए स्थान पर अपनी निश्चित जगह बठ गये।

पाडु ने प्रवेश किया तथा चरण-स्पश किया।

पितामह के हाथ आशीर्वाद के लिए उन पर उठे फिर बठन का सकेत दिया।

कुशल है ? उ होंने पूछा।

आपका आशीर्वाद है। पाडु न उत्तर दिया।

सुना है तुम अरण्यवास क लिए उत्सुक हो ?

आपकी स्वीकृति पाने आया हू। नम्रता से पाडु ने कहा।

मगया क लिए जा रह हो, अथवा इतर प्रयोजन भी है ?

इतर प्रयोजन ही है गुरुदेव ! मन अतिरिक्त मे अशात है। वन श्री की सौम्यता, प्रकृति का नक्टय, कदाचित शाति व सतुलन दे सके।

राज्य धम से पलायन, कम से विरक्ति नही है यह ? शाति तो सयम व सकल्प स प्राप्त होती है। पितामह ने भेदक दष्टि स देखा।

पाडु उस दृष्टि की प्रखरता स काप गय। उनकी दृष्टि नीच हा गई। श न का स्रोत जस सूख गया।

पितामह ही आगे बोले। अशांति का कारण अपने से ही असतोष मे निहित है। पर असतोष को पहचानना भी होता है। किसी भी अतप्ति की प्रतिक्रिया मे दूसरा सबल ढूढने से पहली अतप्ति निर्मूल नही होती। यह तो समझते हो न, पाडु ?

अनुभव करता हू, पितामह। यह भी मानता हू कि मैं अत से दुबल हू, सकल्प मे क्षीण हू। मेरे पास नान नही है पहचान नही है। मैं शुद्र हू जिसे जाग्रत करने की आवश्यकता पडती है। कामनाओ के अधकार से ढका हुआ हू, इसीलिए अरण्य म रहकर अपने अत का साक्षात्कार करना चाहता हू। पाडु इस प्रकार की आत्मभत्सना अभिव्यक्त कर रहे थे कि भीष्म स्वय चकित रह गये। वह सभले। सयत भाषा म गम्भीरता से बोले—क्षयकारी आत्मक्लेश से आत्मा स्फीत होती है वत्स! तुम्हारी दिग्विजय सकल्परहित व्यक्तित्व की साक्षी नही है, एक निश्चय सम्पन्न योद्धा की कौशल का प्रमाण है। तुम दुबल नही हो कदाचित उद्देश्य तथा जीवन दृष्टि म अस्पष्ट हो। अभी आवेश हो प्रतिक्रिया हो पर अपने को शोध करने के लिए विकल हो। यह भी एक माग हो सकता है। मेरी स्वीकृति है तुम्हे।

पाडु को पितामह की स्वीकृति से प्रसन्नता हुई, लेकिन उनके टिप्पणीस्वरूप वाक्यो ने वन म भी घेर रखा। महाराज के साथ कुन्ती और माद्री दोनो रानिया थी। धतराष्ट्र की आना के अनुसार अनुज के लिए सुविधापूण व्यवस्था थी। कदाचित इसलिए कि अल्प अवधि के बाद पाडु इस जीवन से भी उकताएगे, राज्य वभव उन्हे पुन खीच लाएगा हस्तिनापुर। परन्तु कुछ समय बाद महाराज पाडु ऊपर की ओर बढने लग। उन्होने महाराज धतराष्ट्र को निवेदन भेजा कि अब उनकी व्यवस्था नही की जाये। वनवासियो एव ऋषियो का पर्याप्त सहयोग है।

कुन्ती ने आश्रम जीवन को स्वीकार करते हुए तामसी भोजन का त्याग कर दिया। माद्री प्रयत्न करत हुए भी अपन स्वाद एव दहिक कामनाओ को नियन्त्रण म नही रख पाती। वन की हरियाली, पक्षियो की उन्मुक्त उडान, वन्य जन्तुओ की विविधता, फूलो का दूर-दूर तक फला विस्तार उसकी भावनाओ तथा इच्छाओ को उत्प्रेरित करता। सरोवर म स्नान करती तो देह का रोम रोम अद्भुत रागात्मकता अनुभव करता।

माद्री आश्रम का जीवन पवित्रता तथा उदात्तता की अपेक्षा करता है। तुम्हे आश्रमवासिनी मुनि पत्नियो से अभिन्नता बनानी चाहिए। कुन्ती माद्री को शिक्षा देती।

माद्री शिष्टता स उत्तर देती—क्षमा करना बडी रानी मुझे कन्द-मूल एकत्रित करती पशु चराती कृषि काय म सलग्न वनवासी नारिया आकर्षित करती हैं। कितनी सुन्दर तथा जीवन्त हैं वह! आश्रमवासिनी दुःखी-दुखी-सी जीवन का भार वहन करती [illegible]

महाराज को खोना नही चाहती।

कुती स अदर की बात रोकी नहा जा सकी वह वोली—महाराज को तुमन ध्यान से देखा कभी ?

नित्य देखती हू। माद्री ने गव से उत्तर दिया।

नही दखता मानी। तुम अपना अनुरक्तता की तष्णा स रगी हुई यह नहा दख पा रही कि महाराज निरन्तर अपनी तेजस्विता खान जा रहे हैं। वह पीले पडत जा रहे हैं, जस पाडुर रोग स ग्रस्त हो। क्या तुम नही जानती कि इसका क्या कारण है ?

आपका भ्रम हो सकता है या काल्पनिक दुश्चिता। मुझ ऐसा नही लगता। माद्री ने जस कुती पर दोषारोपण किया हो। चाहे उसने भालपन स ही कहा हो परतु कुन्ती को एसा ही लगा।

मैं तुम्हे समझा नहा सकती माद्री। महाराज विवश हैं अपन स्वभाव से। वह न तुम्हे स्पष्ट पहुचाना चाहत हैं न मुझे। तुम दह स अलग सोच ही नही पाती। इस मेरी ईर्ष्या तो नही समझ रही हो ? कुती हिचक रही थी।

ईर्ष्या नही मानती। पर तुम भी तो मानो कि यह मेरी देह तथा अत की विवशता है। मैं इसी तरह म महाराज को पाती हू और अपनी सम्पूणता को देती हू।

माद्री की स्पष्टोक्ति के सामने कुती निरुत्तर हो गई। वह उसको कस बताये कि महाराज का एक अश और एक स्वरूप उसक साथ भी प्रकट होता है जो देह के माध्यम स उसको पार करता हुआ किसी प्रकाश का स्पश करता है और स्वय आलोक स्फुलिंग-सा बन जाता है। उस अनुभूति को वह आज तक शब्द नही दे पाई। और उन क्षणो की महाराज पाडु की स्थिति का वह व्याख्यायित नही कर पाई।

वह मात्र अनुभूति है अलौकिक आनद की।

माद्री भी तो एसी ही किसी आनद की बात करती है। विधि विधान का ही पक है, या

और महाराज स्वय क्या है ? अरण्यवासी होकर क्या नवीन कुछ पा रहे हैं ?

महाराज की दिनचर्या को प्राकृतिक वातावरण ने विभाजित किया है। वह प्रात उठकर सूर्योदय के साथ भ्रमण को निकल जाते हैं। पहाडी धरातल की कभी ऊपर जाती कभी ढलुवा पगडडी पर चलत हुए मद-मद बहती पवन को सास म लते है। शरीर स्फूत हा उठता है। मन जाग्रत तथा मस्तिष्क ग्राहक। शाल वक्षा की पक्तिया तथा छोटे कद के फूला स लदे पेड-पौधे, हष का भाव उत्पन्न करत हैं। वक्षो की छाया म कही ढकी कही उजागर जलधारा आख मिचौली-सी खेलन लगती है। कही यह जल लघु सरोवर-सा बना देता है।

वनस्पति की मनोहारी सुन्दरता के बीच विभिन्न रंगो के परिंदे और स्वतन्त्रता से विचरते जानवर, मुक्तता और निर्बंधता का विचार प्रेरित करते हैं।

वनवासी पुण्य महाराज का अभिवादन करते हैं। पांडु कभी एकांतित होकर किसी भी स्थान पर विश्राम करते हुए प्रकृति को पूर्णता में, अंश-अंश में, निहारते हैं। देखते जाते हैं कि जैसे वह अपनाने का निमंत्रण दे रही हो।

यह निमंत्रण हस्तिनापुर में कहां उपलब्ध था? जिस विजय-यात्रा ने उन्हें वितृष्णा तथा ग्लानि से भरा था, उसमें अहं तथा अहम्मन्यता का ही तो पोषण था। वह कैसा गर्व था जो पत की तरह चढ़ता जाता था और उससे ध्वनि गूंजती थी सर्वशक्तिमान होने की। चक्रवर्ती महाराज की जय! जय!! एक इन्द्रधनुषी मायाजाल।

महाराज लौटते तो धूप चढ़ने लगती। आश्रम दीखता, तो उसमें चले जाते। ब्रह्मचारी मुनियों से संवाद करते। ऋषि-आचार्य के सम्मुख उपस्थित होते। उनसे उपदेश सुनते।

महाराज की उपस्थिति से आश्रमवासी अपने को महत्त्वपूर्ण मानते। पर महाराज तो स्वयं उपकृत होते जाते थे।

दिनचर्या में विभाजित, परन्तु दिन की एकाग्रता को बनाता हुआ, सहज जीवन अपने प्रवाह में बीत रहा था कि एक दिन असामान्य घटना घटित हुई जिसने पांडु के जीवन पर कड़कड़ाकर बिजली गिरा दी। उन्हें लगा कि कोई बृहद चट्टान दरार खाकर टूटा है, जिसके भार के नीचे दबे हुए वह तड़प रहे हैं।

(४५)

महाराज कितने ही दिन से आखेट के लिए नहीं गये थे। इच्छा हुई वह मृगया के लिए जाएंगे। वह अल्पाहार लेकर पुनः वस्त्र पहनने लगे।

महाराज, अभी तो भ्रमण करके आए थे अब कहां जाने को तत्पर हैं? कुन्ती ने पूछा।

आज आखेट की इच्छा हो आई। उन्होंने उत्तर दिया।

मृगया का खेल निरीह पशुओं की हत्या से सम्पन्न होता है। रक्त उनका भी बहता है। इसे त्याग दीजिये।

अवश्य त्याग दूंगा जब इसमें मन टूट जाएगा। यह तो जांचना है कि संधान करना भूला नहीं हूं। धनुष कितने दिन से अनुपयोगी टंगा है।

माद्री, जो कार्य में व्यस्त थी, परस्पर के सम्वाद सुनकर सस्वर हंस पड़ी।

क्यों? हंसी क्या माद्री? महाराज ने उसकी ओर देखते हुए पूछा।

भूला हुआ वीरत्व जो याद आया आपको। मैं तो समझ रही थी कि आप

किसी दिन केसरिया वस्त्र धारण कर लेंगे और हम भी संन्यासी बनायेंगे। माद्री ने चंचलतावश कहा या व्यंग्य किया, महाराज समझ नहीं सके।

तुम्हारा मन महल के सुख का शायद अभी भी इच्छुक है।

हमेशा रहेगा। विवशता की स्थिति हृदय की कामनाओं को मिटाती नहीं है उन्हें तीव्र करती है। धनुष हाथ में लिये, बाण से संधान करते हुए महाराज का रूप देखने के लिए आँखें तरस गई। माद्री निकट आ गई। उसने धनुष महाराज के हाथ में दे दिया।

कुंती को आघात लगा, जिसे वह कौशल से छिपा गई। पांडु अपनी ही धुन में तूणीर डालकर पर्ण-कुटी से निकल गये।

माद्री अपना महत्त्व तथा अधिकार जतलाकर फिर काम में व्यस्त हो गई। कुंती बाहर आई। वह महाराज को जाता देख रही थी। फिर उसने सूर्य को देखा जो पहाड़ियों से बहुत ऊपर उठकर आकाश में किसी प्रकाशवान वृत्त की तरह घूम रहा था।

वह जब भी सूर्य को देखती है—तब उसमें उन सुंदर आँखें दीखती हैं। नाक दीखती है। होंठ दीखते हैं।

तब वही चेहरा छोटा हो जाता है। किसी शिशु का चेहरा।

फिर उसे दुर्वासा ऋषि याद आते हैं जिनकी सेवा उसने की थी और उन्होंने उसे वरदान दिया था कि

कुंती ने सूर्य की ओर से दृष्टि हटा ली। घने वृक्षों को देखने लगी। मन संतुलित होते हुए भी माद्री के व्यवहार से कभी-कभी क्या दुखी हो जाता है!

उसने सदा से ही किसी-न-किसी को अपनी श्रद्धा का आलम्बन बनाया है। पिता शूरसेन के बाद, दूसरे पिता कुंती भोज को। उसने दुर्वासा ऋषि को श्रद्धा दी, सूर्य का श्रद्धा से स्मरण किया। महाराजा पांडु को पति ही नहीं अपना आराध्य माना। हर एक से स्नेह पाते हुए अगाध स्नेह पाते हुए भी वह शापित क्या रही है! माद्री क्यों उसके साथ हल्केपन का व्यवहार करती है जबकि उसने हमेशा उसे स्नेह दिया, ममत्व दिया।

कुन्ती का कैसा मत है कि ऊपर तक भरा हुआ होकर किन्हीं क्षणों में बिल्कुल रिक्त हो जाता है। वह अपने से ही पृथक होकर एकाकिन हो जाती है।

मध्याह्न हो गया परंतु महाराज को शिकार नहीं मिला। खरगोश रीछ अथवा पक्षी का शिकार करने की इच्छा नहीं थी। वह हिरण का शिकार करता थे। हिरण जैसे जंगल से अनुपस्थित हो गये थे। कहाँ चले गये आज? यूँ तलाश नहीं हो तो कैसे चार चार, पाँच छः के समूह में घूमते फिरते हैं। , हिरणी उसके छौने। झाड़ियों की हरी पत्तियाँ, लम्बी-लम्बी घास चरते । कभी-कभी तो चरने वाली गायों के साथ बेधड़क चरते हैं

चरवाहा जरा-सा डंडा घुमाकर खट-खट करता कि कुलाचें भरते हुए ओझल हो जाते।

महाराज को प्यास लग आई थी। उन्हें नहीं ज्ञान था कि वह कितनी दूर आ गये थे। वह जल धारा खोज रहे थे कि भर जी, पानी पी सकें तथा घड़ी भर विश्राम कर सकें। शिकार के बजाय जलधारा मिलना आवश्यक था।

वह पगडंडी के सहारे ऊंचाई की ओर चले कि वहां से दृश्य अधिक स्पष्ट हो सकेगा और वह सरोवर, अथवा धारा अथवा कोई उटज, देख सकेंगे।

महाराज निराश हो चुके थे। श्रुती के शब्द याद आ रहे थे—मृगया में भी तो हत्या होती है। त्याग क्या नहीं देते।

महाराज के मस्तिष्क में विचार आया—त्यागना तो उनसे हो ही नहीं पाया कभी। जो भी हुआ मन की प्रतिक्रिया से हुआ। ज्ञान को उन्होंने श्रुति के आधार पर अपनाया नहीं ध्यान में केंद्रित नहीं हुआ मन।

कहां भटक रहे हो पांडु? विचारों से प्यास नहीं बुझती। जल खोजो जल! वह फिर आतुरता से दृष्टि घुमाने लगे—चतुर्दिक।

खिन्नता तथा दैहिक कष्ट में कुछ भी तो सुन्दर नहीं लगता। सौंदर्य भी जैसे तृप्ति के बाद की मानसिक प्यास हो—जैसे ध्यान, धर्म, यज्ञ।

तभी महाराज पांडु को पेड़ों के बीच धारा लहराती दीखी। ठीक विपरीत में। ऐसी जैसे ऊंची-ऊंची घास में अजगर रेंग रहा हो। नीचे उतरना होगा। और फासला बढ़ेगा लौटने के लिए।

किस प्रपंच में फंस गये! नहीं ही आते तो क्या बिगड़ रहा था या छूट रहा था?

महाराज धारा की तरफ सर सर चले। ढलान में श्रम नहीं था, यह सुविधा थी, वरना पस्त तो पूरी तरह से हो चुके थे।

अनुमान सही था धारा ही थी। पहुंचकर जल पिया। वृक्ष की छांह में धनुष तथा तूणीर को एक ओर रखकर लेट गये। लगा कि पलकें भारी हो रही हैं। थकान की शिथिलता और जल की तृप्ति से झपकी-सी आने लगी।

झपकी में ही सरसर की ध्वनि उठी और देखा—सुनहरी हिरण चौकड़ी भरता भाग रहा है। वह धनुष पर तीखा बाण चढ़ाए उसके पीछे भाग रहे हैं।

सरसर की निरंतरता ने चौंका कर उन्हें बैठा दिया।

वह ध्वनि स्वप्न नहीं थी, वास्तविकता में हो रही थी।

ध्वनि का अनुसरण उनकी दृष्टि ने किया तो अचानक खड़े हो गये। धनुष हाथ में उठाकर प्रत्यंचा पर तुरन्त बाण चढ़ाया।

एक मृग का सिर व सींग झाड़ी के पीछे से स्पष्ट दीख रहे थे।

महाराज ने अवसर नहीं चूकाया तथा प्रत्यंचा को कान तक खींचकर बाण

छोड दिया।

मृग की आवाज हुई तो उन्होंने बिना अंतराल के झाडी पर तीन बाण और छोड़े।

कराह दोहरी आवाज म थी। पूरी-की-पूरी झाडी हिल रही थी। हिरण कदाचित वही था—कदाचित वही ढेर हो गया था।

पाडु झाडी के निकट पहुचे। एक साथ दो ! मथुन स्थिति म !!

आखेटक का चहरा प्रसन्नता म चमक उठा। उसन झुककर स्पश करना चाहा।

रुको ! बाण खीचन का प्रयत्न नही करना।

यह पुरुष की आवाज थी जो हिरण के मुह स निकल रही थी। हिरणी निष्प्राण हो चुकी थी। रक्त न धरती को लाल कर दिया। था।

तात्रिकता प्रत सिद्धि एन्द्रजालिकता ऋषियो की सिद्धि प्राप्ति मृतक देह म अन्य जीव का प्रवेश, काया कल्प आदि के बारे म पाडु सुन चुके थ, परन्तु प्रत्यक्ष कभी नही देखा था। योग-साधना स दूर सवेदना के माध्यम स अन्य तक पहुचना उसको जानना या अपनी बात उसके मुह स कहना आदि को उन्होंने स्वय देखा था। पर सामन जो आवाज हिरण के मुख स निकल रही थी, उसने आकस्मिता के कारण पाडु को तत्काल सोचन का अवसर नही दिया। वह हिरण की गोल-गोल आखो को देखने लग जिसम पीडा तथा निरीहता झलक रही थी।

कौन हो तुम ? पाडु ने पूछा।

किमिन्दम ऋषि ! मैं मग का रूप धारण कर सतान उत्पत्ति क लिए मिथुन रत था तुमने मुझे और मृगी को क्या मारा ? यह अन्याय नही अनतिक तथा पापयुक्त कम हुआ है तुमम। मैं जान सकता हू कि तुम हस्तिनापुर महाराज पाडु हो। इसलिए यह काय और भी घोर अनतिक है।

पाडु का अहम तथा तक बुद्धि एक साथ सक्रिय हुए। उत्तर देते हुए बोले—मैंन अनुचित नही किया। मृगया करना क्षत्रिय धम है। इसी के माध्यम से हम अपनी युद्ध कौशल का अभ्यास करते है, तथा अपनी क्षमता को परीक्षण की कसौटी पर चलाते है।

किमिन्दम हिरण मध्यम स्वर म बोला—तुम आय नरेश हो। आय, ऋषि पूजक यज्ञ दान दक्षिणा विश्वासी हैं। वह प्राणी रक्षक होते हैं, जीवहन्ता नही। मैं वशवृद्धि क लिए मिथुन म था, तुमने आनन्द और सृजन के क्षण को व्याघातित करके महापाप किया है।

यदि आप ऋषि हैं तो पाप तथा महापाप की भाषा म मुझे अपराधी नही ठहराना चाहिए। मैंन कब जाना था आप युग्म अवस्था मे है ? पाडु नम्र हुए।

तुम्हें कदाचित् उस अलौकिक आनन्द का भी पता नही है जिसम दो देह,

देह की सीमा का अतिक्रमण कर एक आत्मा होते हैं। सजन उन्हीं क्षणों मे सम्पन्न होता है। वह सृष्टि का सजन हो, जीव का सजन हो आत्मा से निसत छन्द हो। महाराज पाडु क्या तुम नही जानते जिसको दो रानिया का भोग प्राप्त है? सजन क्षण तक पहुचे ही नहीं तो जानोगे कसे? कदाचित इसीलिए नि सतान हो अब तक।

पाडु खड़े-खड़े लता की तरह काप गये। उन्ह लगा कि इस ऋषि ने उनके पुरुषत्व को बिद्ध नही किया है सीधे अस्त पर सधान किया है। अस्तित्व पारे की तरह खण्डित होता बिखर बिखरकर अशो मे छितराता लगा।

क्षमा करें ऋषिवर, मैं दोषी हू। पाडु धरती पर बैठ गए। अपराध भाव, ग्लानि भाव, ने उनके मुख को छाया की तरह निस्तेज कर दिया—धुधला।

तब बाणो को निकालो, मुझे मुक्त करो। जिस क्षण और अनुभूति का तुमने वध किया है वह तुम भी नही पाओगे। प्राप्त करने की कोशिश जब भी करोगे, अतप्ति म तुम्हारी मत्यु होगी। जसी मेरी हो रही है। बाण निकालो, मुझे मुक्त करो शीघ्र।

पाडु किंकर्तव्यविमूढ़ स बाण निकालते रहे।

अन्तिम शब्द फिर सुनाई दिये—तुम अपूर्ण, असिद्ध, कालकवलित होगे जसा मैं जा रहा हू, निर्दोष होते हुए। जिस नारी से तुम्हारा ससग होगा, वह भी मत्यु प्राप्त करेगी।

पाडु जड हुए बठे रह। उन्हे हिरण हिरणी की देह से छाया-सी निकलकर प्रस्थान करती हुई दीखी।

(४६)

तुम दुबल नहा हो, कदाचित उद्देश्य तथा जीवन दृष्टि म अस्पष्ट हो। अभी आवेश हो, प्रतिक्रिया हो। पर अपन को शोध करने के लिए विकल हो। पितामह के शब्द पाडु को रह रहकर परेशान करने लग।

वह अपन स प्रश्न करते—क्या मैं वास्तव म अपनी शोध कर रहा हू? क्या इस दिशा म गम्भीर हू?

नही रहा। उत्तर मिलता। घटनाए मरे साथ बीत रही हैं मैं जस उन्ही से निर्देशित हू। पितामह न ठीक कहा था—मैं प्रतिक्रिया हू। मन की इच्छाओ का रथ हू। मैं ही सारथी हू, मैं ही रथ हू। न सारथी को पता है उसका गतव्य किस ओर है, न रथ का पता है कि वह क्यो है। बस दोनो हैं—सारथी और रथ हैं इसलिए गति है।

ऋषि ने प्राण त्यागते-त्यागते भी शाप द दिया—जसे ही किसी स्त्री स समग करोग तुम्हारी मृत्यु होगी, वह भी कालकवलित होगी जिसस भोग करोगे।

क्या यह आयु विरक्त होने की है, जबकि कुंती, माद्री जसी पत्नी साथ हैं? क्या मैंने अनीति में मृगया की? हिरण हिरणी के प्राण हरे तो क्या जानकर?

यह घटना घटी और वह सारे कपाट बन्द करता हुए मुझे अधर गुफा की कोठरी में डाल गई। जियो आयु को तथा देह का भार ढोते हुए? राजा होना, पराक्रमी राजा तुम्हें सब उपलब्ध है—प्रकृति भोग्य वस्तुएँ नारी इच्छाओं-कामनाओं को तृप्त हुआ आग्रह लेकिन वर्जित है। सरोवर के पास किनारे पर बैठे तरसते रहो। उसमें उतरकर जल में रहो पर प्यास कितनी भी हलक तड़पाने वाली हो जल पीना तुम्हारे लिए वर्जित है।

सिर्फ मेरे लिए क्या?

क्यों का उत्तर नहीं होता। न किसी घटना का जो तुम्हारे साथ होती है। आगे-पीछे कारण खोज लो—ऐसा न करता, तो वैसा न होता। मृगया की इच्छा न करता तो सारी इच्छाओं के कपाट बंद नहीं होते। पश्चात्ताप की ओर! अकेले हो जाओ! जीव अकेला ही तो आता है। उसकी यात्रा भी अकेली होती है। क्या अकेली होती है? धर्म कर्म यात्रा मार्ग और लक्ष्य क्या अकेले के लिए है? लेना ही लेना। देना कुछ भी नहीं। सबकुछ अगर अपने में ही पूर्ण है तो यह सृष्टि क्या? प्राणी क्या? गति क्या? घटनाएं क्या?

विचार अनंत हैं जीवन यात्राएं अनंत, और फिर समाप्ति। मृत्यु! दुख सुख, नर मादा की तरह युग्म हैं। फिर पृथकता का धर्म कौन-सा?

महाराज पांडु अपने से ही कहते हैं। मानो अपने को ही कोसते हैं। निर्देश देते हैं—तुम अब न महाराज हो न कुंती, माद्री के पति न पिता हो सकते हो, न किसी के पुत्र भाई, शिष्य। सिर्फ पांडु हो। जीना चाहो जी सकते हो। दूसरा भी विकल्प है। अपनी मृत्यु वर सकते हो। कामनाओं का भोग करके मर सकते हो। अतृप्त भी मर सकते हो। तुम हो सिर्फ पांडु। जी सकते हो। मर सकते हो।

लेकिन जब पांडु ने कुंती तथा माद्री के सामने अपना मन खोला तब परिस्थिति सर्वथा विपरीत बनी।

उद्विग्न पांडु कुशा के आसन पर बैठे हैं। सामने कुंती और माद्री हैं। पांडु बोले—अब कोई विकल्प नहीं है मेरे सामने। मैंने तुम दोनों को अपनी तरफ से अगाध प्रेम दिया। कुंती तुम्हें तुम्हारी तरह माद्री तुम्हें तुम्हारी तरह। अब मैं तुम्हारे योग्य नहीं रहा। अच्छा यही होगा कि तुम दोनों हस्तिनापुर लौट जाओ। मैं उत्तर कुरु की यात्रा पर जाऊंगा। जीवन को यदि संन्यास ग्रहण करना ही है तो तुम क्या कष्टप्रद मार्ग स्वीकार करो।

कुंती पांडु की निराशा तथा हताशा को पहिचानती है। वह आदर अभिव्यक्त करते हुए बोली—महाराज!

पाडु ने बीच म ही हस्तक्षेप किया—महाराज नही, मात्र पाडु। इसी नाम से सम्बोधन करो।

यह कैसे हो सकता है। सबध एक तरफ म नही, दूसरी तरफ स भी होता है। आप मेरे पति हैं आराध्य हैं। मेरे लिए तो वही हैं जो पूव म थे। इसी की साक्षी देकर कहती हू, आपके साथ चलूगी। आपके बिना मैं अधूरी हू। अथ इति आप ही है मेरे। माद्री यदि चाह तो हस्तिनापुर भेज दीजिए। इसके लिए सन्यास का माग कठिन होगा।

हैं कठिन है, मैं स्वीकार करती हू। बडी रानी, मेरी बडी बहन, जीवन की नयी विधि स्वीकार करनी अनिवाय हो गई है तो उससे भागना नही चाहती। सबध मेरा भी वही है जो आपका। महाराज, आप से जो प्राप्त हुआ उससे मैं भी सम्पन्न हुई हू। आपके बगर मैं अपने जीवित रहने की कल्पना नही कर सकती। मैं उस मोह रा छोड दूगी, जो मेरे आपके बीच स्वाभाविक है। वह सुख नही सही, पर क्या नकटय और दशन लाभ से भी वचित कर लू अपने को?

तुम्हारी दोना की उपस्थिति मेरे लिए बाधक होगी। यदि कभी भी मैं अपने से टूट गया, तब अत भयानक होगा। अग्नि और धत का योग हमारी छवि ले लेगा। पाडु ने समझाया।

नही, महाराज, यन्त तो अब अन्त म होना है! भोग के सारे आकपणा से विरक्त होकर कामनाओ को समिधा बनाना होगा। प्रेम का दूसरा रूप है ममता। उसी को व्याप्त करना होगा आत्मा मे दृष्टि म। वह हमारे म है, उसी को व्यापक करना होगा। कुन्ती जस अमृत वचन बोल रही थी।

माद्री ने सुना वह उठी, पहली बार उसने कुन्ती के चरण स्पश किए। फिर महाराज पाडु से। आपको मुझसे आशका है ना? मुझे भी जीवन प्यारा है। लेकिन साथ भी प्यारा है। मैं आप दानो की शपथ लेकर सकल्प करती हू, इस मन को कामनाओ क कोप को परिशुद्ध करूगी। मेरी ओर से ऐसा अवसर कभी नही आएगा। अपना अह, अपना गव को, समर्पित करती हू आपके अचल म। यह कहते हुए माद्री ने कुन्ती क अक मे सिर रख दिया। वह बालिका की तरह रो रही थी।

कुन्ती का हृदय उमड आया। वह माद्री को थपथपाने लगी, जसे मा पखेरू परेवे को पखा स स्नेह दे रही हो।

पाडु की स्वय की सवेदना जो जड हाकर निष्क्रिय-सी हो गई थी, रुई-सी खुल गई।

वह अकेले नहा हैं। यात्रा अकेली नही। वण से शब्द, शब्द से पद, पद से वाक्य, छद, यही तो ध्वनि, घात-प्रत्याघात, गति तथा लय है। भावो की एक तानता ही तो प्राप्त करनी होगी, जो करुणा तथा ममता बन सके।

वह कुन्ती की गोद में माद्री को देख रहे थे और कुन्ती उन्हें। जैसे कह रही हो—धर्म यहीं से तो शुरू होता है, इसी तरह से। बिन्दु के सहज समर्पण से।

हस्तिनापुर सन्देश भेज दिया गया कि पाडु कुन्ती तथा माद्री सहित उत्तर कुरु की यात्रा को अग्रसर हो गए हैं। विदा के समय आश्रमवासी तथा वनवासी परिवार दुखी हो गये। जो भी धन आभूषण, सुविधा की वस्तुएं थीं, महाराज ने उनको दान दक्षिणा स्वरूप वितरित कर दिया। पाडु अब संन्यासी वस्त्र में थे। कुन्ती एवं माद्री ने आश्रम निवासिनियों की तरह श्वेत वस्त्र धारण कर लिये थे, पहले वह नागशत पर्वत पहुंचे। आहार सात्विक हो चुका था। पाडु अब गहन साधना तथा चिन्तन करने लगे थे। कुन्ती व माद्री प्रात तथा सध्या पूजा पाठ में व्यस्त रहने लगी थीं। प्राकृति अब मात्र वातावरण नहीं रह गई थी उसमें मनोरमता अनुभव होने लगी थी। जब मन की भावनाएं ध्यान में केंद्रित होने लगीं, अन्तर्मुखता जाग्रत होने लगी। अन्तर्मुखता ने सहज शान्ति की स्थापना की। ममता एकात्मकता, अन्दर से बाहर की ओर प्रसार होने लगी। अहंकार पद का, जाति का, श्रेष्ठता का उच्चता का, विलुप्त होने लगा।

पाडु जहां भी ठहरते लोग उनकी सुन्दरता तथा कुन्ती व माद्री के सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाते। भोजन की व्यवस्था में वे सहयोग देते। कुन्ती तथा माद्री के स्नेहिल स्वभाव में उन्हें अपनत्व झलकता।

उन्होंने नागशत से आगे चत्ररथ पर्वत पर विश्राम लिया। इसके पश्चात कालकूट पर्वत से होते गधमादन पहुंचे।

यात्रा की थकान देह पर प्रभाव डालने लगी थी। पाडु कष्टकर साधना कर रहे थे। ऋषियों से साधना सीखते, उसे अभ्यास में लाते।

हम कितने ऊपर जाना होगा? कुन्ती ने एक दिन पूछा।

कैसा अनुभव करती हो? विश्राम की अवधि बढ़ानी चाहो तो कुछ दिन और रुक जाएंगे।

आपका स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा है। माद्री ने कहा।

स्वास्थ्य तो अंत का होता है—बुद्धि का मन का, आत्मा का।

कुन्ती, क्या मानी देह और आत्मा से और सौम्य नहीं लगने लगी? तुम तो साक्षात श्री प्रतीत होती हो।

प्रशंसा सात्विक है न महाराज? मोह मिश्रित हो तो हम दोनों हठयोगी साधना करने लगें। शरीर को विकृत कर लें, केशों को काट कर धारा में प्रवाहित कर दें। कुन्ती ने व्यग्य किया।

माद्री ने साथ दिया—पुरुष मन अश्व होता है। जितना चाबुक मारो। बांध कर रखो उतना ही उछलता है। यह तो नारी है जो सहजता से संयमशीलता अपना लेती है।

त्रिगुणात्मक भी नही होती हैं—सत्व, रज, तम की धात्री प्रकृति। माया का उत्स। पुरुष, तो पुरुष है। शुद्ध। पाडु ने उत्तर दिया।

ऋषि श्रेष्ठ कहते हैं—पुरुष की छाया ही प्रकृति को जाग्रत करती है। माया का कारण तो वही हुआ ना? कुती वह उठती है। पाडु उन्मुक्तता म हसते हैं।

शीत ऋतु की ठड बना, पवत शृ गा को हिम स ढकने लगी। शीत लहर कम्बला को पार कर देह को ठिठुरा देती। सूय हिम की पर्तों-पर्दों से दबा-दुबका ऐसा प्रतीत होता जसे गुरु से प्रताडित भयभीत शिष्य। पण कुटीर, दरवाजे, आश्रम, पगडण्डिया श्वेत दूध सी दीखती थी। रोमिल पशु अपनी सुरक्षा साधे कभी-कभी दृष्टिगोचर होते थे। किसी चट्टान को काट कर बनाई गई गुफा मे तपस्वी मिलत तो पाडु दडवत कर उनके दशन का क्रम बना लेते। उनकी सवा करते, कि वह प्रसन्न होकर आध्यात्मिक उपलब्धि की कोई विधि अथवा मत्र दें।

गधमादन को छोडकर इन्द्र द्युम्न ताल के क्षेत्र मे ठहरते हुए हसकूट पहुचे। यहा से यात्री ऋषियो के साथ तीनो शतशृ ग पवत पर पहुचे।

पाडु की इच्छा ऋषियो के समूह के साथ आगे जाने की थी। सहयात्रा करते हुए ऋषियो के साथ विशेष आत्मीयता हो गई थी।

पाडु की तपस्या निरतर कठोरतम होती जा रही थी। समाधि की स्थिति मे कई बार उन्हे एसा प्रतीत हुआ जसे कोई ज्योति उनसे दूरी पर कम्पित होकर स्थिर हो गई है तथा उनकी तरफ बढ रहा है। कभी सागर मे तरती चादी की मछली दीखती जो उछल कर हवा मे तरने लगती। कभी मुदी आखा मे सर सराती आधी तथा तूफान का दृश्य सामन आता, जिसमे कोई छाया सी आकृति हाथ मे ब्रह्माण्ड उठाए अडिग खडी हुई दीखती। प्राणायाम की दीघ अवधि के बाद उन्ह लगता प्रफुल्लता की लहरें उठ रही है। हृदय के पास। धीरे धीरे आनन्द-सा व्याप्त हो जाता देह म आत्मा की गहराई मे।

क्या इसी अनुभूति को ब्रह्मानन्द कहत है?

वह ऐसे अनुभव कुन्ती तथा माद्री को बतात? दोनो को आश्चय होता। वह भी तल्लीन होकर ध्यान तथा मत्र जाप करती हैं पर उन्हें तो ऐसे अनुभव नही होते।

पाडु शतशृ ग पवत श्रेणी से आगे जाने को तैयार थे कि ऋषियो ने टोका। तपस्वी श्रेष्ठ आपकी साधना तथा आध्यात्मिक लगन को हमने देखा है वह निश्चय ही सराहनीय है। आपकी सुकुमार देह रानियो की कष्ट सहिष्णुता तथा पति निष्ठा आदश है। उनका सात्विक व्यवहार ममतामय है। हमारी सलाह है कि इस स्थान से आगे की यात्रा पर आपको नही चलना चाहिए।

क्या ऋषि व द ? पाडु ने हाथ जोड़कर पूछा ।

ऋषियो म स वद्धतम श्वेत जटा व दाढ़ी वाले कृपकाय ऋषि ने कहा—आगे दुगम पथ है। श्रेणियो की ऊचाई हिम विस्तार, प्रकृति का परीक्षक रूप प्रस्तुत करता है। उसके पार स्वग लोक की कल्पना है जहा देव, गधव, अप्सराए व इन्द्र तथा कुबेर का सम्मान साम्राज्य है। वहा वन भी है मरुस्थल भी है वहा ऋतुओ का अगाभाय वितरण है। देह का यह वहा पहुचने म सहायक नही होता आत्म बल ही सफलता दिलाता है। आप तपस्वी होकर भी गृहस्थ हैं, अत उधर जाना तीनो क लिए आत्मघात क समान होगा।

देह नश्वर है इसका क्या मोह महात्मा ? पाडु नम्रतापूर्वक बोले।

देह के साथ कामना सलग्न है। उसका अश यदि शमित अथवा परिमार्जित नही होता तो तपस्या के खण्डित होने की सम्भावना रहती है। तब पतन भी त्वरित और विस्फोटक होता है। वृद्ध ऋषि ने उत्तर दिया। उनकी तेजस्वी आखें जसे पाडु को आर-पार देख रही थी। वह होठो पर स्थिरता लाते हुए बोले—अभी भी तुम्हारी तपस्या द्वद्व रहित नही है ? सदिग्धता को मेरे समक्ष रखो कदाचित मैं समाधान दे सकू।

पाडु ने श्रद्धापूर्ण स्वर मे प्रश्न किया—महात्मा आपने सत्य कहा है। मैं सदा से अपने को क्षीण सकल्पी विवेकहीन मानता आया हू।

ऐसा कोई पुरुष-नारी नही होता। महत्ता का बोध होना और अहकार ग्रस्तता म अन्तर अवश्य होता है। ऋषि ने हस्तक्षेप किया।

ज्ञान मुझे गुरुओ से प्राप्त हुआ है परतु

आचरण तथा अभ्यास के बगर ज्ञान वस हा है जसे जल की लहरो पर लिखा गया श्लोक, अथवा भोज पत्र म सकलित अध्यात्म वभव। महात्मा ने फिर व्यवधान दिया।

पाडु को धक्का-सा लगा। उसने सयत होकर आगे कहा—मैंने पूरा ब्रह्मचय भी पालन नही किया कि गृहस्थ आयोजित कर दिया गया मेरे लिए

और तुम भोग के तल म पहुच गये— ऋषि ने फिर बात म विघ्न दिया।

हा, उसी का पश्चाताप है कि मैं इस साधना म

वह अभी अधूरी है। देव ऋण ऋषि ऋण तुमने चुका दिया पर पितृऋण का भार ही तुम्हारी अपूर्ण कामना है। सतान की इच्छा हमारे गुह्य अतर मे ज्यो की त्यो उपस्थित है।

पाडु चमत्कृत हो गये ऋषि की वाणी सुनकर।

हा महात्मा। मगर मैं शापित तथा निर्वीय हू।

पर उसके बिना उद्धार भी नही है। निष्काम हो नही सकते हो। और कामना के साथ व्यवधान अनिवाय है। पर तुम प्राप्त करोगे, वश भी करोगे यह

योग है। बस मैं इतना ही सकेत देना चाहता हू। यही तुम्हारी अपूणता है, विक्षेप है। इस से आग प्रश्न मत करना। बोध और विवेक और मुक्ति मनुष्य म स्वय जाग्रत होती है, वह किसी से ली नही जा सकती।

पाडु ठगे-से रह गये।

अन तर ऋषि व द अपनी यात्रा म आग चल दिये।

(४७)

कु ती और माद्री की उलझन बढती ही जा रही है हिम प्रदेश की बीहडता, अत्यधिक ठड, समाज का नगण्य होना असुविधा की आत्यतिकता ने जसे उनके हौसल व क्षमताओ को चुनौती देना शुरू कर दिया। माद्री तो सहनशीलता की कगार पर पहुच गई है। वह अधीर होती हुई कुन्ती म बोली—बहिन, क्या समाज तथा अल्पतम सुविधाओ से भागना ही अध्यात्म है?

एसा विचार क्या कर आया मस्तिष्क म, माद्री? कु ती ने पूछा।

प्रत्यक्ष देख रही हू ना। इस यात्रा का अत क्या इही बर्फीले प्रदेशो म शरीर त्यागने मे होगा? महाराज को शाति प्राप्त होनी थी इसकी बजाय वह और अधिक अशात रहने लगे हैं।

मैं भी देख रही हू, परन्तु वह कारण नहा बताते। ध्यान तथा साधना म भी जी हट गया है। सोचते रहते हैं—सिफ सोचते रहते हैं। कु ती ने माद्री का जसे समथन किया हो।

क्या हम अपने अधिकार का प्रयोग नही करना चाहिए? माद्री ने दृढता से कहा। फिर अपने म तव्य को स्पष्ट करते हुए बोली—स्वास्थ्य बस ही क्षीण हो चुका है। चिंता म निर तर रहना और घुटना, घातक भी हो सकता है—तब हम क्या कर सकेंगी?

अमगल सोचती हो?

यथाथ स्थिति पर सोचता हू। अवना नही, निष्ठा है इसका के द्र माद्री अप्रत्याशित रूप से दृढ दीख रही थी।

वह जसी भी स्थिति म रखें—रह हमारा धम है उसको स्वीकार करना। कुती ने मधुर रहते हुए कहा।

धम का अथ विवक का अनुपस्थित होना नहा है। आप स्मरण करिए, जब महाराज हताशा की स्थिति म हम त्याग कर स यास अपनाने को कह रहे थे तब आपने कहा था धम एकतरफा नही होता। महाराज का स्वभाव यही है। जब किसी निराशा क प्रभाव म होन ह अपन म व्यस्त हो जाते हैं। यह भी नही सोचते कि हमारी उपक्षा हो रही है। सगिनी, साथी या अर्धांगिनी की क्या यही स्थिति होनी चाहिए? उन्ह एसी आत्म-पूणता की अवस्था मे रहने देना उनके

लिए अहितकर होगा—हमारे पक्ष म भी। माद्री कहकर चुप हो गई। कुन्ती विचारों में खो गई, माद्री का कहना सगत है पर ऐसी मानसिक स्थिति म साधारण बात भी बुरी लग सकती है। इतर अर्थ भी लिया जा सकता है। वह यह भी सोच सकते हैं कि हमारी इच्छा शक्ति टूट गई।

मैं आपसे कह रही हूँ बड़ी रानी, आप म मेरी अपेक्षा अधिक सयम है। आप उनसे पूछिये। मुझे उनका स्नेह प्रेम, अवश्य प्राप्त है लेकिन श्रद्धा वह आप पर ही रखते हैं।

कुन्ती को लगा समस्या अपने आप हल हो गई। वह नहीं चाहती थी कि माद्री उनसे पूछे। माद्री म सराहनीय परिवर्तन आया है, पर मूलत वह आवेशमयी तथा भावुक है। असगत आरोपण म कठोर व्यवहार अपना सकती है, तब दूसरे असतुलन को और सहना होगा।

मैं प्रयास करूगी, माद्री। जिसे अपनी मानसिक स्थिति ही ग्रस्त किए हो, उस पर उपेक्षा करने का दोष लगाना अनुचित है। जब से ऋषिक द का साथ छूटा है वह अधिक विचलित हुए हैं। तभी से स्वकेन्द्रित हुए हैं।

कदाचित उनके साथ जाने का आग्रह कर रहे थे। माद्री ने कहा।

हा। यही था।

हमारे लिए सम्भव होता? हम बीच म गल कर समाप्त हो जाते। जो जीवित समाधि बन जाती।

वह अभी भी बन सकती है। यहा क्या प्रकृति भयानक नहीं है? हिम का अघड बर्फ के जमाव का दरक कर पिघलना कभी भी जीवन का अन्त कर सकता है। उसके लिए तयार होना ही चाहिए। कुन्ती ने शात भाव से कहा।

बड़ी रानी आपके सान्निध्य ने मुझे प्रेरित किया। मैंने प्रयत्न किया है कि आप-सा सयम तथा धैर्य अपने म विकसित कर सकू। आशिक रूप म सफल हो पाई हू। परन्तु जीवन की जीवन्तता मेरी धमनियो म इस तरह प्रवाहित रहती है कि मृत्यु की कल्पना ठहरती नहीं। अनिवार्य है, तो है। आयेगी तो उसे भी खेल की तरह स्वीकार कर लूगी। अनावश्यक चिंता क्यो करू? पर सतर्क होकर स्वहनन से बचना ही चाहिए। माद्री गम्भीर थी, पर यथार्थ म उसके मुख पर ताजी पत्तियो, परिपक्व फलो जसी चिकनाई थी। अन्दर धारा की कुलकुल कलकल।

कुन्ती ने उसे देर तक देखा। उसे अपने में भी ताजगी फूटती अनुभव हुई। हम एक-दूसरे को प्रेरित करते रहें, यही सकट काटता रहेगा। मैं उनसे अवश्य पूछूगी इनकी चिंता का कारण। जानने पर तुम्हें बताऊगी।

वह तुम्हें बता देंगे। मुझे अभी भी इस योग्य नहीं समझते हैं, माद्री आश्वस्त हो गई।

दूसरे दिन प्रात हिमपात निरन्तर होता रहा। पवत चोटियाँ श्वेत वस्त्र से आच्छादित होती रहीं। सूय का अवरुद्ध प्रकाश हिम के पर्दों को पार करता हुआ जसे यवनिका तक आते-आते क्षीण हो जाता था। एक धुध, एक घुटा हुआ अधकार, इस तरफ ठहरा हुआ था। सारी प्रकृति मौन साधे जसे शीत की बाला का तन्मय नृत्य देख रही थी। अदभुत सौन्दय का सन्नाटायुक्त विस्तार, जैसे किसी रहस्य के अदश्य, अगोचर धागों से बुना जा रहा था। मारुत छोटे छोटे कदमों से जसे हिम क्षेत्र मे दौड लगा रहा था—हल्की-हल्की सास भरता।

पाडु ध्यान म बठे पर्याप्त समय मे साधना रत थे, पर समीप बैठी कुन्ती देख रही थी, उनके मुख पर उभरने वाले भाव जो पल-पल उठते थे। तुरन्त विलीन हो जाते थे।

स्थिरता तथा एकाग्रता का प्रयास पर अत द्वद्व, जसे बार-बार केन्द्र से विचलित कर रहा हो।

वह भी दुविधा म है। परन्तु माद्री को आश्वस्त किया है कि वह पति के एकात घूणन का कारण अवश्य जानेगी।

उसने और ध्यान स देखा—पाडु निश्चित रूप स स्वास्थ्य खोते जा रहे है। त्वचा का पीलापन बढता जा रहा है। काया इकहरी हो गई है। कदाचित वह अपनी क्षमता को भी एकाग्र कर रही थी कि माद्री के कहे अनुसार समानता की स्थिति का साहस बटोर सके। समानता, पति से।

पाडु न हाथ जोडकर साधना समाप्त की। मुदी हुई आखें खुलीं। पाया कि कुन्ती स्वय आसन लिये ऐसी बठी है, जसे आराधना की हो।

माद्री आई फल रखकर लौट गई—नित्य क्रम के अनुसार।

कुन्ती ने धारदार लोह की पट्टी मे फल तराश कर दिये।

तुम भी तो आराधना मे थी। लो सहभागी बनो। पाडु ने कहा।

आप सेवन करिए। मैं माद्री के साथ ले लूगी। पाडु ने टुकडा उठा लिया। मौन ठहरा रहा।

तुम्हारे भाव स प्रतीत होता है किसी दुविधा मे हो पाडु ने कुन्ती को देखत हुए कहा।

हा, हू महाराज। ऐसा लगता है जैसे आप स दूर हो गई हू। कुन्ती ने सम्भल कर उत्तर दिया।

दूर कहा हुई हो? बल्कि तुम और माद्री केन्द्र मे आ गई हो। ध्यान अमूत से मूत बिम्ब प्रस्तुत करने लगा है। यह बाधा तत्व है साधना का।

हमारी भी तपस्या हस्तक्षेपित हो रही है। मन अशात रह रहा है। कुन्ती ने प्रस्तावना साधी।

एसा क्यो?

क्षमा करें महाराज हम एक दूसरे पर आलम्बित, अपनी-अपनी तरह स

आत्मिक स्तर पर आरोहण कर रहे हैं। एक यात्रा स्थानगत पर्वतारोहण के रूप में हो रही है—दूसरी आतरिक। उसमें अगर विघ्न पड़े तो अशान्ति स्वाभाविक है। कुन्ती ने फल तराश कर हाथ में दिया।

पाडु उस फाक को देखने लग जसे।

तार फिर जसे छूट कर सिमटने लगा। कुन्ती न तुरत पकडा। मैं यही पूछना चाहती हू, महाराज आप किस चिंता म हैं कि हम भी अजान म उपेक्षित हो रहे है?

उपेक्षा नहीं कुन्ती ऐसा कसे हो सकता है पर मैं साधना करत हुए भी, हरा सा गया हू एक स्तर पर आकर। कामना की प्रबलता ने मुझे अव्यवस्थित कर दिया है।

पाडु गम्भीर थे, और गम्भीर हो गये।

देह के होते हुए मनुष्य कामना रिक्त कम हो सकता है महाराज! मुक्ति की कामना भी तो कामना ही है। जस हमारी कामना कि आप अपने लक्ष्य मे सफल हो। कुन्ती न मानो धीरे-से किसी पत पर नख फेरे। मानो हिम का तह को किसी पात्र से हटाया हो। फल की फाक पुन देनी चाही तो पाडु ने सकेत स मना कर दिया। एक दीघ सास अन्दर की तरफ सूती, फिर परास्तता म उसे बाहर कर दिया। बोले—कुन्ती मैं तुम्हारे हाथ की फाक की तरह अधूरा रह गया। मुझ ऋषियो का व द छोडकर चला गया। मेरे साथ तुम और माद्री हो, मेरे सतान नही है इसलिए मैं इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक के लिए अयोग्य हू। ऐसा ऋषि श्रेष्ठ कहकर, उच्च यात्रा को चल गये।

ब्रह्मचारियो म और गहस्थ जीवन का स्वीकार लोगो के प्रयोजन तथा प्राप्ति म अन्तर रहेगा, महाराज। कुन्ती न मधुरता से कहा।

मैंने तो उसकी सीमाओ को पार कर लिया था कुन्ती पर मुझे पूवजो के ऋण का स्मरण कराया गया। सतान की कामना मुझम तीव्र हो उठी है। पर अभिशाप का कसे अतिक्रमण करू? दहिक असमथता को समथता म कस बदलू? उपाय है, लकिन

कामना असगत है महाराज। हम उस जीवन को छोडकर वानप्रस्थ स्वीकार कर चुके।

परन्तु यह मन द्वारा स्वीकार कहा हो पा रहा है। मेरी साधना म पुन-पुन ऐसे बिम्ब उठत हैं जस कोई कामधेनु बछडे को जन्म देने के लिए रम्भा रही हो। कभी जेर की सुनहरी कोथली म शिशु घूमत, हाथ फलाते दीखत हैं। यह अत के किस पाताल क बिम्ब हैं? पाडु जसे सम्मोहन म बिखर गये।

कुन्ती अब लगभग चौंक चुकी थी। वह महाराज की दशा देखकर आकुलता म होती जा रही थी। उसे अदृश्य भय-सा लगने लगा था। महाराज को क्षण-क्षण

मे क्या हो जाता है ?

महाराज ! महाराज !! उसने हस्तक्षेप किया।

हा, कुन्ती ! अब सतान के बिना मुक्ति सम्भव नही। हम उत्तर कुरुक्षेत्र के धर्म को जानते हैं। यहा नारिया सगम के लिए स्वतन्त्र रहती हैं। तिर्यग प्रजा मे क्या यह प्रथा तुमने नही देखी। शरदण्डायन की कन्या ने पुसवन यज्ञ कर रास्ता चलते ब्राह्मण को आमन्त्रित किया। उससे दुर्जय उत्पन्न हुआ। सौदास की पत्नी, पति की आज्ञा से ऋषि वसिष्ठ के पास गई। उस मदयन्ती नामक स्त्री के अश्मक ऋषि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सतान प्राप्ति के लिए क्या मेरी विधवा मा, व आदरणीय अम्बिका बुआ महर्षि कृष्ण द्वैपायन से गर्भवती नही हुई ? मैं पति की उपाधि से युक्त तुम दोनो को नियुक्त करता हू कि

कुन्ती ने बीच मे टोका—रुकिए, महाराज ! आज्ञा देने से पूर्व यह सोच लीजिए कि अन्याय न हो जाय। आप मेरे इष्ट हैं। पर इष्ट क्या इतना एक पक्षीय होता है ? हम सहधर्मिणी हैं। ममत्व हममे है पर वह विस्तार पा चुका है। सतान का बधन कितना मोहपूर्ण होता है क्या आप इससे अनभिज्ञ है ? जिस सयम को हमने—हम दोनो ने, मैंने और माद्री ने तपस्या से अर्जित किया है—उसको छिटकना पुन नीचे गिरना होगा। किसी दूसरे पुरुष से सतान प्राप्ति मेरे धर्म की कल्पना मे नही है। मैंने वियुषिताश्व राजा की पत्नी कक्षिवान की कन्या भद्रा की कथा सुनी है। अपने मृतक पति के निकट शयन कर उसने अपनी कामना शक्ति से तीन शाल्व तथा चार मद्र सतान प्राप्त की। यदि सतान को जन्म देना अनिवार्य कर दिया आपने तब भी मैं इस शरीर को किसी भी सिद्ध अथवा ऋषि से दूषित नहीं होने दूगी।

पाडु कुन्ती के निश्चय तथा आवेश को देखकर अचम्भे मे हो गये। बल्कि, निराशाग्रस्त हो गये। अब उन्हे न तक सूझ रहा था न नियुक्त होने की पति आज्ञा उनके मुह से निकल रही थी।

अगर तुम्हे नही रुचता तो रहने दो। नि सतान मरना भाग्य मे लिखा है तब उसमे क्या कर सकती हो। हारा हुआ स्वर था। ऐसी दशा को कुन्ती अनेक बार देख चुकी थी। ऐसी अवस्था मे वह इतने निरीह और द्रवित करने वाले हो जाते थे कि करुणा जाग्रत हो आती थी। कुन्ती सोच रही थी मैं इतनी आवश मे हो गई तो माद्री तो मध्य मे धिक्कारने लगेगी महाराज को। स्थाई क्लेश ठहर जाएगा। महाराज अपने से और घिर जाएगे। माद्री सतान की बात कतई नही स्वीकारेगी।

पल भर मे विचार अग्नि की तरह आए उन झकझोरा उसने अपनी सपूर्ण शक्ति एकत्रित करके अपने को सयमित किया। उसने देखा नि शक्त से महाराज वहा लेट गए। वह उस पुरुष की तरह लग रहे थे जिसने मन-ही मन किसी

सजीवनी कल्पना को पोषित कर रखा हो, वह यथार्थ से टकराकर खिर गई हो।

कुन्ती वर्तमान, अतीत और भविष्य के बीच म जकड-सी गई। सतान की कामना, फिर जन्म देना, उसके बाद पालना। मातत्व की माया म फसना। क्या धारा के उदगम की ओर बढते-बढते प्रवाह की तरफ चलना होगा?

पाडु सामने आखें मूदे लेटे थे। वह उस सतान की स्मृति म खो गई थी, जिसके मोह को त्यागकर उसे बहाना पडा था। वह तो सूय थे, देवता गिने जाने वाले, उन्होंने क्वारी कन्या की अनुनय विनय को कब माना। दुर्वासा के वरदान की सत्यता भर तो जाननी चाही थी उसने।

वही वरदान क्या फिर उपयोग म लाना होगा?

महाराज मुझे क्षमा करें। मैंने आपको क्लेश दिया। कुन्ती ने धीरे से स्पश किया महाराज का सिर। बढे हुए केशो पर हाथ फिरने लगा। हाथ की गति के साथ ममता-सी जागत होने लगी।

पाडु की मुदी आखो से कदाचित उनके अनजाने म अश्रु बह रहे थे।

महाराज आपकी कामना पूरी होगी। उसने अपेक्षतया गहरे शब्दो म कहा। उठिये, मुझे क्षमा कर दीजिये। आपकी ऐसी हताश दशा नहीं देख सकती। उसने आचल से अश्रु साझे।

पाडु ने उसी तरह लेटे रहने देने का सकेत किया। कदाचित एकाकीपन के आत्मसघष से उत्पन्न हुई रिक्तता को ममता की शक्ति से पूरित कर रहे थे। ममता कुन्ती के स्पश से उनमे सचारित हो रही थी।

(४६)

धम अथ, काम मोक्ष—मनुष्य जीवन के पुरुषाथ। सत्त्व, रज, तम उसकी प्रकृति म निहित त्रिगुण। कब कौन सा गुण अन्य दो को दबाकर प्रधान हो जाता है, स्वय मनुष्य को ज्ञात नही रहता। ज्ञात होता भी है तो वह प्रधान गुण इतना प्रबल होता है कि मनुष्य की नियत्रण शक्ति को शिथिल कर देता है।

पाडु मोक्ष की साधना की तरफ बढ रहे थे, रजो गुणग्रस्त हो गये। सतान की उत्कट कामना ने जस उन्हे आच्छादित कर लिया। तीव्र इच्छा जब अवरोध पाती है, तब मन प्रसादयुक्त हो जाता है—चचल अति का अशात नि शक्त।

नारी म सहज सवेदना होती है सहज ममता, सहज करुणा।

पति के विक्षोभ का कारण जान माद्री भी आश्चय म हुई थी। यह क्या बडी बहिन! फिर वह भावावेश म हुई थी—पहले हमसे सयम चाहा गया। हर प्रकार के ऐश्वय को त्यागकर हमने अपनी इच्छाओ के पर कतरकर पिंजडे म डाल दिया अब चाहा जा रहा है कि हम फिर उन्मुक्त हो। आशक्तियो के जगल म फस जाए।

कुन्ती प्रतिक्रिया का पूर्व अनुमान किये हुए थी। वह कई रात्रि औचक रही थी। उसने समाधान सोचना चाहा था। परन्तु इसी निष्कर्ष पर पहुंची थी कि यदि पति को जीवित रखना है तो उसे संतान देनी होगी। कामना का स्मरण उसी में रहना, उसी की चिन्ता से ग्रस्त रहना अकल्याणकारी हो सकता है महाराज के लिए।

उसने माद्री को समझाया था—माद्री महाराज विचलित हैं। उनकी साधना रुक गई है।

सहज थी कब बडी रानी। प्रतिक्रिया तथा निराशा से उठी वैराग्य भावना, फिर अपने केन्द्र पर लौट आई है।

तर्क, समस्या का हल नहीं है। कुन्ती ने धीरज से कहा।

तब क्या हम संतान के लिए नियुक्त होना होगा? किसी ऋषि, किसी सिद्ध से? नहीं, बडी रानी, मैंने उन्हीं के माध्यम से तृप्ति पाई, उन्हीं के मोह में अपना संकल्प पूरा करने की ओर बढी। मैंने संयम पाया। अब क्या नहीं बडी बहन। मेरे लिए सम्भव नहीं हो सकेगा। माद्री लगभग पस्त हो गई थी।

कुन्ती ने उसे इस तरह थपथपाया था जैसे हिरणी को लाड कर रही हो। उसने मात्र इतना कहा था—तुम उद्विग्न मत होओ। मुझ पर छोडो।

कुन्ती ने पांडु को बताया था कि कन्या अवस्था में उसने अपने पिता के यहां आए हुए दुर्वासा ऋषि की सेवा की थी। उसकी व्यवस्था तथा श्रद्धाभाव से प्रसन्न होकर ऋषि ने मन्त्र दिया था। इस मन्त्र के द्वारा वह किसी भी देवता का आह्वान कर सकती है। वह देवता उसके वश में होगा। उसकी मनोकामना पूरी करेगा।

पांडु की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। उसने कहा था—मैं जानता था, कुन्ती तुम ही मेरी कामना को पूरा कर मुक्ति का मार्ग सिद्ध करोगी।

कुन्ती रहस्यमयता से मुस्कराई थी। मुस्कराहट क्या इसलिए थी कि उसने कन्या काल के पुत्र जन्म के तथ्य को छिपा लिया था? या इसलिए रहस्ययुक्त थी कि वह जानती थी यह कामना आसक्ति का बीज होगी।

कई दिनों की तपस्या के बाद कुन्ती ने हर प्रकार से पवित्र होकर तन्मयता व एकाग्रता के साथ मन्त्र को सिद्ध किया। प्रथम तः धर्म का आवाहन किया।

धर्म से पहली संतान प्राप्त हुई—नामकरण हुआ युधिष्ठिर।

पांडु ने हर्षित हो कहा—मुझे दूसरा पुत्र चाहिए।

कुन्ती ने फिर अनुष्ठान साधा। मारुत का आवाहन किया।

वायु देव से द्वितीय संतान प्राप्त हुई। नाम भीम रखा गया।

पांडु के कामना कोष का मुंह खुल गया था। कुन्ती मुझे तीसरी संतान चाहिए।

कुन्ती की वही रहस्यमय मुस्कान फिर प्रकट हुई थी। अधरों पर उसने फिर

मत्र का जाप किया। इद्र का आवाहन किया।

इद्र से तीसरी सतान प्राप्त हुई। नाम अर्जुन रखा गया।

पाडु जसे कामना के फलीभूत होने से बौरा गए थे। कुती मुझे चौथी सतान चाहिए।

महाराज चाह का अन्त कहाँ है? मुक्ति के लिए और पितर ऋण को चुकाने के लिए एक सतान पर्याप्त थी।

पर पाडु की आखो के सामने मरीचिका का विस्तार था। मरीचिका सत्य रूप हो रही थी।

कुन्ती मुझे इतनी सतानें चाहिए

कुती ने हस्तक्षेप किया—बस, महाराज किसी ऋषि के वरदान का दुरुपयोग होगा। तीन सतान के बाद भी यदि मैं कामना करूगी तो स्वरणी कहलाऊगी सतान के पालन का उत्तरदायित्व इतना सरल होता है क्या?

पाडु को आघात-सा लगा। जसे तृष्णा की बहती नदी के सामने चट्टान ठहर गई।

परन्तु कुती के साथ दूसरी भावना जाग्रत हुई। सताना का रूप देखते ही सुप्त मातृत्व उमड पडा। वह उन्हीं के मोह म खोने लगी। अवधि बीतती जा रही थी। तीनो बच्चो का सौदर्य उनकी शिशुवत किलकारी रुदन, आश्रम को चहका रहा था—मा को भी।

माद्री को आश्चय हो रहा था, कुती म इस परिवतन को पाकर। इतनी शात, पूव की कुती एसी चचल हो गई थी, जसे पुनजन्म लिया हो यह भी भूल गई कि उससे छोटी अधिक सुन्दर अभी भी अपने सयम तथा सकल्प पर स्थिर है।

लेकिन माद्री को जसे माद्री ही प्रश्ना के वत्त म हाल नगी।

क्या सच म तू सयम म स्थिर है?

हा। वह बठे-बठे अपने प्रतिरूप को उत्तर देती।

झूठ बोलती हो। तुम म स्वय म मा बनन की इच्छा जाग्रत है। तुम अपने को सरोवर के जल मे निहार कर अपने पर मोहितहोन लगी हो। केशो को सवारने तथा आचल को झाकने लगी हो। तुम महाराज पाडु को भी ललचाई दृष्टि स देखने लगी हो। क्या उनकी सेवा किसी दूसरे लक्ष्य से बढाई है? गाधारी और कुती के सतान हो जाने म क्या तुम वाझत्व की हीनता से मुक्त नही होना चाहती?

वह प्रतिरूप को डपटती। मैं क्या अनभिज्ञ हू उस यथाथ स कि पाडु महाराज असमथ हैं।

रहन दे, अपने मन के गहरे म उतर, तुझे वहा सदेह का कनखजूरा चिपका

मिलेगा। मन्त्र की शक्ति दिखावा थी। देवा का ध्यान छल प्रसारण था। अगर दवा का आशीर्वाद प्राप्त किया भी होगा तो महाराज का पुंसत्व मांगा होगा। ऐसा नहीं सोचती ?

महाराज का पुंसत्व ! तब क्या मेरे साथ अन्याय नहीं हो रहा है ? मैंने बड़ी रानी को मातवत, श्रेष्ठा भगिनी के समान माना अपनी श्रद्धा दी वह पुत्रों को पाकर अपने में बिसर गई। यही होता है न माया का रूप ! स्वार्थ ! व्यक्ति का निजी स्वार्थ।

प्रतिरूप चुप होकर अंतर्धान हो जाता।

माद्री ने प्रयत्न कर के महाराज पाण्डु को भ्रमण करते समय एक दिवस एकांत में पा लिया। शीत के कम होने के कारण धूप अब सुहानी लगने लगी थी। वन वृक्ष हरियाने लगे थे। प्रकृति निखर कर सौम्य तथा चंचल मन प्रतीत होने लगी थी। पशु पुनः दृष्टिगोचर होने लगे थे। पक्षी, जो हिमपात के कारण प्रवास करके मैदानी क्षेत्र में चले गये थे पुनः लौट आये थे। दूर-दूर छितरे हुए गृह एवं आश्रम में पर्वतवासी तथा संन्यासी झलकने लगे थे।

आज बहुत प्रसन्न लग रही हो माद्री। पाण्डु ने कहा।

हां, आप भी प्रसन्न हैं। आपके सुख से प्रेरित मेरा सुख रहता आया है। वह है।

देखो, प्रकृति कितनी शोभायुक्त हो चली है।

जैसे संतानवती हो। माद्री ने उत्तर दिया।

हां शीत की कड़ी यन्त्रणा सह कर प्रकृति प्रसवा ही तो होती है।

आपकी माद्री तो कमी है। निःसंतान होने के कलंक को वहन करती हुई। आप जब मेरी ओर पूर्णतः उत्तरदायित्व खो चुके। मुझसे मेरी जान में तो कोई त्रुटि नहीं हुई।

पाण्डु मुस्कराए। बोले। तुम ने हम पर दोष थोप दिया।

सत्य नहीं हो तो क्षमा करें। माद्री व्यवहारकुशलता से अपने प्रयोजन तक आने का प्रयास कर रही थी।

पाण्डु ने अनुराग से देखा तो वह अत्यंत आकर्षक तथा सम्मोहक लगी। उसके अंग अंग से सौंदर्य फूटता-सा लगा।

माद्री अनुरक्तता की झलक महाराज की आंखों में देखकर चौंक गई। यह क्या ! जैसे पर्वत पर चढ़ती वह खुद रपट गई हो। सतर्क हुई।

महाराज मैं आप से निवेदन करना चाह रही थी।

कहो ! पाण्डु उसी तरह सम्मोहित-से एकटक देख रहे थे।

आप अभिशप्त हैं महाराज। पर मैं भी संतान प्राप्ति कर आपको सुख पहुंचाना चाहती हूं। मेरा साहस नहीं होता बड़ी रानी से कहने का। आप उनसे

मत्र का जाप किया। इन्द्र का आवाहन किया।

इन्द्र से तीसरी संतान प्राप्त हुई। नाम अर्जुन रखा गया।

पांडु जैसे कामना के फलीभूत होने से बौरा गए थे। कुन्ती मुझे चौथी संतान चाहिए।

महाराज चाह का अन्त कहीं है? मुक्ति के लिए और पितर ऋण को चुकाने के लिए एक संतान पर्याप्त थी।

पर पांडु की आंखों के सामने मरीचिका का विस्तार था। मरीचिका सत्य रूप हो रही थी।

कुन्ती मुझे इतनी संतानें चाहिए

कुन्ती ने हस्तक्षेप किया—बस महाराज किसी ऋषि के वरदान का दुरुपयोग होगा। तीन संतान के बाद भी यदि मैं कामना करूंगी तो स्वैरिणी कहलाऊंगी संतान के पालन का उत्तरदायित्व इतना सरल होता है क्या?

पांडु को आघात-सा लगा। जैसे तृष्णा की बहती नदी के सामने चट्टानें ठहर गईं।

परन्तु कुन्ती के साथ दूसरी भावना जाग्रत हुई। संतानों का रूप देखते ही सुप्त मातृत्व उमड़ पड़ा। वह उन्हीं के मोह में खोने लगी। अवधि बीतती जा रही थी। तीनों बच्चों का सौंदर्य उनकी शिशुवत किलकारी रुदन आश्रम को महका रहा था—मां को भी।

माद्री को आश्चर्य हो रहा था कुन्ती में इस परिवर्तन को पाकर। इतनी शांत पूर्व की कुन्ती ऐसी चंचल हो गई थी जैसे पुनर्जन्म लिया हो यह भी भूल गई कि उससे छोटी, अधिक सुन्दर अभी भी अपने संयम तथा संकल्प पर स्थिर है।

लेकिन माद्री को जैसे माद्री ही प्रश्नों के वृत्त में डालने लगी।

क्या सच में तू संयम में स्थिर है?

हां। वह बैठे-बैठे अपने प्रतिरूप को उत्तर देती।

झूठ बोलती हो। तुम में स्वयं में मां बनने की इच्छा जाग्रत है। तुम अपने को सरोवर के जल में निहार कर अपने पर मोहित होने लगी हो। केशों को संवारने तथा आंचल को झलने लगी हो। तुम महाराज पांडु को भी ललचाई दृष्टि से देखने लगी हो। क्या उनकी सेवा किसी दूसरे लक्ष्य से बन्धाई है? गांधारी और कुन्ती के संतानें हो जाने से क्या तुम बांझत्व की हीनता से मुक्त नहीं होना चाहती?

वह प्रतिरूप को डपटती। मैं क्या अनभिज्ञ हूं उस यथार्थ से कि पांडु महाराज असमर्थ हैं।

रहने दे अपने मन के गहरे में उतर, तुझे वहां सन्देह का कनखजूरा चिपका

मिलेगा। मन्त्र की शक्ति दिखावा थी। देवा का ध्यान छल प्रसारण था। अगर देवो का आशीर्वाद प्राप्त किया भी होगा तो महाराज का पुंसत्व मांगा होगा। ऐसा नही सोचती ?

महाराज का पुंसत्व ! तब क्या मेरे साथ अन्याय नहीं हो रहा है ? मैंने बडी रानी को मातवत श्रेष्ठा भगिनी के समान माना, अपनी श्रद्धा दी वह पुत्रो को पाकर अपने मे बिसर गई। यही होता है न माया का रूप ! स्वार्थ ! व्यक्ति का निजी स्वार्थ।

प्रतिरूप चुप होकर अतर्धान हो जाता।

माद्री ने प्रयत्न कर के महाराज पाडु को भ्रमण करते समय एक दिवस एकात मे पा लिया। शीत के कम होने के कारण धूप अब सुहानी लगने लगी थी। वन वृक्ष हरियाने लगे थे। प्रकृति निखर कर सौम्य तथा चचल मन प्रतीत होने लगी थी। पशु पुन दृष्टिगोचर होने लगे थे। पक्षी जो हिमपात के कारण प्रवास करने मैदानी क्षेत्र मे चले गये थे, पुन लौट आये थे। दूर-दूर छितरे हुए गृह एव आश्रम मे पर्वतवासी तथा सन्यासी झलकने लगे थे।

आज बहुत प्रसन्न लग रही हो माद्री। पाडु ने कहा।

हा, आप भी प्रसन्न हैं। आपके सुख से प्रेरित मेरा सुख रहता आया है। वह है।

देखो, प्रकृति कितनी शोभायुक्त हो चली है।

जैसे सतानवती हो। माद्री ने उत्तर दिया।

हा शीत की कडी यत्रणा सह कर प्रकृति प्रस्वा ही तो होती है।

आपकी माद्री तो वसी है। नि सतान होने के कलक को वहन करती हुई। आप जैसे मेरी ओर पूर्णत उत्तरदायित्व खो चुके। मुझसे मेरी जान मे तो कोई त्रुटि नही हुई।

पाडु मुस्कराए। बोले। तुम ने हम पर दोष थोप दिया।

सत्य नहीं हो तो क्षमा करें। माद्री व्यवहारकुशलता से अपने प्रयोजन तक आने का प्रयास कर रही थी।

पाडु ने अनुराग मे देखा तो वह अत्यत आकर्षक तथा सम्मोहक लगी। उसके अग-अग से सौंदर्य फूटता-सा लगा।

माद्री अनुरक्तता की झलक महाराज की आखो मे देखकर चौंक गई। यह क्या ! जैसे पर्वत पर चढती वह खुद रपट गई हो। सतर्क हुई।

महाराज मैं आप से निवेदन करना चाह रही थी।

कहो ! पाडु उसी तरह सम्मोहित से एकटक देख रहे थे।

आप अभिशप्त हैं महाराज। पर मैं भी सतान प्राप्ति कर आपको सुख पहुचाना चाहती हू। मेरा साहस नही होता बडी रानी से कहने का। आप उनसे

कहिए, वह मुझे उस मंत्र को सिद्ध करने की विधि बताए मैं भी संतानवती हो जाऊं। माद्री ने बहुत ही नम्र होकर कहा।

अभिशप्त होने का स्मरण होते ही महाराज की जाग्रत अनुरक्तता कच्ची डाल-सी टूट कर नम गई। मुख पर उदासी उभर आई। उसको छिपाते हुए-से बोले—मैं अवश्य कहूंगा। कुंती निश्चय ही मेरा कहा मानेगी। वह तुम्हें भी अपनी तरह आनंदित देखना चाहेगी।

माद्री का उद्देश्य पूरा हो गया। पर उसने महाराज में जो अपने प्रति वासना की झलक देखी थी। उससे भयभीत हो गई थी।

अवसर देखकर महाराज ने कुंती से माद्री की इच्छा कही थी। कुंती तैयार हो गई थी। एक क्षण को उसे अपने पर भी आश्चर्य हुआ था। वह ऐसी कैसी तन्मय हो गई। शिशुओं में कि माद्री का ध्यान नहीं रहा! वह अपनी तरफ से हुई माद्री की उपेक्षा से उपजी मंद भावना को अपने में ही दबा गई। उससे मुक्त होने का उपाय था माद्री को मंत्र बताना। उसकी सिद्धि के विधान से उसे अवगत कराना।

माद्री ने कुंती के निर्देश अनुसार अनुष्ठान को सम्पन्न किया। अश्विनी कुमारों का स्मरण किया। उनसे दो पुत्र प्राप्त हुए। नाम रखे गये—नकुल और सहदेव। जुड़वा भाई।

शतशृंग पर्वत पर महाराज पांडु की पांचों संतानें, तीनों का वात्सल्य पाकर बढ़ने लगीं।

पांडु पूर्ण गृहस्थ हो गये गौण साधक।

(५०)

कुंती पूछ रही थी—ऐसे कैसे हुआ? क्या हुआ? माद्री क्या वासना इतनी अन्धी और विवेक शून्य हो सकती है कि अपने पति को निगल लें?

माद्री सघन अवस्था में पांडु की देह के नीचे बिसूर रही थी। मेरा दोष नहीं है रानी। प्रकृति का दोष है। ऋतु का दोष है। महाराज के चपल मन का दोष है, जो काम से ग्रस्त होकर अपना हंता बन गया।

काम से ग्रस्त महाराज हुए थे, तुम तो जानती थीं कि उनकी मृत्यु इसी मिस, उन्हीं क्षणों में होनी थी। क्यों प्रस्ताव माना? क्यों समर्पण किया? कुंती आवेश में थी। उसकी आंखों से चिनगारियां चिटक रही थीं।

बड़ी रानी, मेरे आंसू देखो! मेरी विवशता अनुभव करो। आवेश त्यागो, कि मुझे भी बताने का अवसर दो। मैं परित्यागी सिद्ध होने जा रही हूं जबकि मैं निर्दोष हूं। प्रसी तो मैं गई। मेरा निवेदन मेरा लांछन देना मेरा वर्जित करना सब अप्रभावी हो गये। महाराज की बुद्धि में जैसे मद चढ़ गया था। वह याचना

भी कर रहे थे और पुरुष बल से मुझ पर काबू कर रहे थे। मैं क्या करती बड़ी रानी? शक्ति में वह अजय वृषभ, विकट सिंह हो गये थे। माद्री हिचकियाँ में रोने लगी।

कुंती पर उन हिचकियों का प्रभाव पड़ा। वह अल्प संयम में आई।

माद्री आगे बोली—मैं दोषी हूँ। उन्हीं क्षणों की जब मैं विवश हो गई, और उत्तेजना में दह रह गई। तब मैंने भी उनका साथ दिया जब वह अर्ध चेतनता में बुदबुदा रहे थे—माद्री मुझे तृप्ति दो! मुझे पूर्णता दो! वह स्वर मेरे कानों में गुहार-से पड़ रहे थे। मैं यथाशक्ति आत्मा खोल रही थी कि अपनी देह के कण-कण, रोम रोम से, लहर-लहर से, उन्हें तृप्त कर सकूँ। मैं अपराधी हूँ उन क्षणों की। मैं उन्हें तृप्त नहीं कर पाई। वह अधूरे विसर्जित हो गये।

हिचकियाँ क्रम बाँधे रहीं। कुन्ती का आवेश शान्त हो गया।

होनी हो गई। शायद तुम्हीं सुभागी हो, माद्री। कुंती के हृदय से हूक-सी निकली। अब छोड़ दो इस देह को। मैं इनको लेकर चिता पर चढ़ूँगी। तुमने उनके प्राण की अन्तिम लय तक साथ दिया, मैं आगे जाऊँगी उनके साथ।

कुंती माद्री तथा पांडु के शव के निकट होकर बैठ गई। जाओ! अन्य ऋषियों-मुनियों, पर्वतवासियों को समाचार दिलवा दो कि महाराज पांडु काल कवलित हो गये।

कुछ क्षणों के लिए स्तब्धता छा गई। विषाद ने भारी होकर उस वातावरण को दबा लिया।

माद्री ने स्तब्धता को दरकाया।

बड़ी बहन तुम सती नहीं होओगी। मैं होऊँगी। इसी अवस्था में होऊँगी। हमारे पति पूर्णता की कामना में, अपूर्ण अवस्था में अवसान को प्राप्त हुए हैं—मेरे साथ। मैं ही इनके साथ रहूँगी कि राख और अस्थियाँ एक-सी होकर शेष रह जाएँ। और अगर कोई अनन्तर यात्रा है तो

कुंती विचलित हो गई। नहीं माद्री। तुम्हारा आग्रह बहुत भयानक है। असम्भव है। इस अवस्था में

हाँ, इसी अवस्था में। तुम ममतामयी हो ना! मुझे भी ममता की छाँव में रखो। मेरी संतानों के साथ तुम्हीं निश्छल हो सकती हो। इतना भर अनुग्रह करना। मैं जीना चाहती भी नहीं। ऋतुराज की वैभव श्री ने उद्दीपक बन महाराज को मन्मथ बनाया, मुझे रति रूपा। मैं प्रकृति के सम्पन्न वैभव में ही उनकी देह के साथ अग्नि को समर्पित होऊँगी। ममतामयी कुंती माँ क्या मुझे सूर्य की धूप, वन की हरियाली, फूलों की गंध भृंगों के आशीर्वाद के बीच, अपना स्वाभाविक अंत नहीं लेने दोगी?

प्रश्न का उत्तर कुती के पास कहा था ? वह तो हर तरह से हार रही थी। ममता की यत्रणा क्या इतनी अभिशप्त होती है।

उसे हा ही करना पडा।

और ऋषियो मुनियो के मत्र उच्चारण के बीच माद्री उसी अवस्था म पति के शव के साथ अग्नि को समर्पित हो गई। पाचो पुत्रो से घिरी कुती उस चिता को देखती रही। अश्रु जो वह के आपा नही थे भाव थे। मात्र आशीर्वाद।

प्राण-सयुक्त, पच तत्त्वो-से पाच पुत्र अपनी बाहो मे रक्षित किये कुती (पृथा) चिता के पास खडी, पच तत्त्वो के शुन्य होने का यज्ञ देख रही थी।

प्रश्न का उत्तर कुंती के पास कहा था ? वह तो हर तरह स हार रही थी। ममता की य त्रणा क्या इतनी अभिशप्त होती है !

उसे 'हा' ही करना पडा।

और ऋषियो मुनियो क मत्र उच्चारण के बीच, माद्री उसी अवस्था म पति के शव क साथ अग्नि को समर्पित हो गई। पाचो पुत्रो स घिरी कुन्ती उस चिता को देखती रही। अश्रु जो बहे न आपा नही थ भाव थ। मात्र आशीर्वाद।

प्राण-सयुक्त, पच तत्त्वो-स पाच पुत्र अपनी बाहो म रक्षित किये कुन्ती (पृथा) चिता के पास खडी पच तत्त्वो के शेष होने का यत्न देख रही थी।

● ●